प्रोफेसर रामदरश मिश्र

(सरस्वती सम्मान से सम्मानित व्यक्तित्व)
(संरक्षक)

INTERNATIONAL PEER- REVIEWED(REFEREED) JOURNAL

RNI (UPHIN/2021/80567)

साहित्य मेघ

ISSN: 2583 - 5750

(साहित्यिक हिंदी मासिक)
प्रकाशन का आरंभिक माह /वर्ष : अप्रैल 2021

सम्पादक मण्डल

भारत

प्रोफेसर ओमप्रकाश सिंह
भारतीय भाषा केन्द्र,जे.एन.यू.
नई दिल्ली
opsingh@mail.jnu.ac.in
M:(९८९९४४६८६१)

प्रोफेसर चन्द्रदेव यादव
विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया,नई दिल्ली
cyadav@jmi.ac.in
M: (९८१८१५८७४५)

प्रोफेसर जितेंद्र श्रीवास्तव
विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,
इंदिरा गांधी ओपन विश्वविद्यालय (इग्नू),
नई दिल्ली
jksrivastava@ignou.ac.in
M:9818913798

प्रोफेसर राज कुमार
M:09415201281
drrajkumar@bhu.ac.in
हिंदी विभाग,काशी हिंदू विश्वविद्यालय ,वाराणसी

प्रोफेसर प्रभाकर सिंह
(9450623078)
prabhakarhindi@bhu.ac.in
प्रोफेसर,हिंदी विभाग,काशी
हिंदू विश्वविद्यालय,वाराणसी

प्रोफेसर श्रद्धा सिंह ९४१५५३०५८७
प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
shraddha.singh@bhu.ac.in

डॉ.आभा गुप्ता ठाकुर
प्रोफेसर, हिंदी विभाग,काशी हिंदू
विश्वविद्यालय,वाराणसी
(9450960955)
abhag.hindi@bhu.ac.in

डॉ.गाजुला राजू
सहायक प्राध्यापक,हिन्दी एवं आधुनिक
भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय,प्रयागराज २११००२
(9059379268)
raju.g@allduniv.ac.in

डॉ.जर्नादन
(सहायक प्राध्यापक)
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
9026258686
janardan@allduniv.ac.in

डॉ. बिजय कुमार रबिदास
bkrabidas@allduniv.ac.in
9432345604
सहायक आचार्य हिन्दी एवं आधुनिक
भारतीय भाषा विभाग,इलाहाबाद
विश्वविद्यालय,प्रयागराज २११००२

विदेश

प्रोफ़ेसर उल्फत मुखीबोवा
ulpatxon_muxibova@tsuos.uz
M:998946443037
Tashkand State
University of
Oriental Studies,
Tashkand,Uzbekistan

प्रोफेसरग्युज़ेल स्त्रेलकोवा
str@iaas.msu.ru.
M: +79199933635
एशिया और अफ्रीकी देश
अध्ययन संस्थान,मास्को राजकीय
विश्वविद्यालय,मास्को

Farzaneh Azam Lotfi
f.azamlotfi@ut.ac.ir
Associate Professor
Department of foreign
languages
University of Tehran,Iran

परामर्श मण्डल

भारत

डॉ. प्रताप सहगल
(९८१०६३८५६३)
प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह
(९८११३०६३३१)
डॉ.शशि सहगल
(९८९९१६६१२९)
प्रो. कृपाशंकर पाण्डेय
(९९८४५२३७०६)
प्रो. मोहन
(९८७१११५५००)
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
प्रो.लालचंद राम
९९९००७०८९५
विभागाध्यक्ष,एन सी ई आर टी
प्रो.राम आहलाद चौधरी
(९४३२०५१५००)
(विभागाध्यक्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय)
प्रोफेसर (पूर्व) शत्रुघ्न कुमार
shatrughnakumar@ignou.ac.in
प्रो.चंदा देवी
(८००४९२८४४१)(इला. यू.)
प्रो. रामकली सराफ
(९३८९४३२१६५)
डॉ० प्रभा पंत
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,
एम०बी०रा०स्ना०महाविद्यालय,हल्द्वानी
dr.prabhapant@gmail.com
प्रो. रूबी जुत्शी
कश्मीर यूनिवर्सिटी
९४१९०५८५८५

विदेश

प्रो. सरन घई
(±१ (६४७) ९९३-०३३०)
कनाडा
तेजेन्द्र शर्मा
(४४ ७४००३१३४३३)
(Ùet.kesâ.)
प्रो. पुष्पिता अवस्थी
(±९१ ७०५८४-६२९५१)
(www.pushpitaawasthi.com)
नीदरलैंड
डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ल
'शरद आलोक'
(±४७ ९००७०३१८)
(speil.nett@gmail.com)
नॉर्वे
अनुराग शर्मा
(±१ (४१२) ६९२-१३६२)
(indiasmart@gmail.com)
अमेरिका
रेखा राजवंशी
(±61 403116301)
ऑस्ट्रेलिया

प्रकाशक, मुद्रक और मालिक डॉ. मो. सलीम ने अज़ीम इंडिया प्रिंटर्स, अटाला, प्रयागराज (इलाहाबाद) में छपवा कर ४८३ अटाला, प्रयागराज (इलाहाबाद) से प्रकाशित किया।सम्पादक डॉ.मो.सलीम,४८३अटाला,प्रयागराज (इलाहाबाद)सभी मामले प्रयागराज (इलाहाबाद) की ही अदालत में होंगे।

साहित्य मेघ

sahityamegh.com
sahityamegh@gmail.com

मार्च 2024
वर्षः4, अंकः3

डॉ. दानिश
9919142411
प्रधान संपादक

डॉ.राजविंदर कौर
9759912434
सह-संपादक (अवैतनिक)

डॉ.तबस्सुम जहां
9873104110
उप-संपादक (अवैतनिक)

कृष्ण कुमार जायसवाल
9450827797
प्रूफ रीडर

‘निराला’ के उत्तर-काव्य का पाठ	प्रो.राजेन्द्र गौतम	4
स्वाधीनता आंदोलन और भारतीय साहित्य	प्रो.शिवप्रसाद शुक्ल	17
मन्नू भंडारी का सृजनात्मक संसारः स्त्री विमर्श के आईने में (कहानियों के संदर्भ में)	रामकली सराफ	23
२१वीं सदी में हिन्दी कविता की अर्थभूमि	प्रो.डॉ.राम आह्लाद चौधरी	30
राष्ट्रीय एकता एवं अनुवाद	डॉ.पूरनचंद टंडन	40
‘भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यासः एक विवेचनात्मक अध्ययन’	1.प्रो.अशोक सिंह 2.डॉ. अपराजिता मिश्रा	51
समकालीन कविता की युगीन चेतना और संवेदनशीलता के पारस स्पर्श से झिलमिलाता आकाश : कराहता मुक्तिपथ	डॉ.ममता पंत	55
स्वच्छता एवं पर्यावरण संरक्षण का महत्वः एक विश्लेषण	डॉ.दीपा त्यागी	70
गोपाल सिंह नेपाली के फिल्मी गीतों के विविध आयाम	ऋचा पुष्कर	73
सिंह सेनापति उपन्यास में नारी-चित्रण	कु.सुषमा	77
भारत की बहुभाषिक बौद्धिकता और डॉ.राममनोहर लोहिया (हिंदी के संदर्भ में)	अनुराग भारती	80
डॉ.भगवतशरण अग्रवाल और स्नेहरश्मि के हाइकु - काव्य की मूल संवेदना : तुलनात्मक दृष्टि से	मोरावाला साईनबानुं आई.	84
इक्कीसवीं सदी की हिन्दी ग़ज़ल	इति शिवहरे	89
विकास की अवधारणा और पर्यावरणीय चिंतन	देवाशीष कुमार	94
समाचार		99
सूचना		100

‘निराला’ के उत्तर-काव्य का पाठ

प्रो.राजेन्द्र गौतम

सम्पर्कः ९०६, झेलम अपार्टमेंट, प्लॉट-८,
सेक्टर-५, द्वारका, नई दिल्ली-११००७५.
मोः ९८६८१४०४६९

निराला निश्चित रूप से बीसवीं शताब्दी के श्रेष्ठतम कवि हैं परन्तु उनके काव्य का सर्वांग, एवं तटस्थ मूल्यांकन हो चुका है, यह निश्चित नहीं है। महान् कवियों के पाठ की ओर हमें बार-बार जाना पड़ता है। निराला की रचनाओं में ’तुलसीदास’, ’सरोज-स्मृति’ और ’राम की शक्ति-पूजा’ का विशिष्टतम स्थान हैं। ये क्रमशः १९३४,१९३५ और १९३६ की रचनाएँ हैं। ’गीतिका’ के गीतों का रचनाकाल भी सन् १९२९ और १९३६ के बीच का ही है। उनके काव्य के इस स्वर्णयुग का मूल धर्म ’क्लासिक’ है। विशेष यह है कि यदि श्रेष्ठता का यह शिखर निराला के काव्य का अन्तिम सोपान होता तो अन्य छायावादी कवियों की भाँति उनकी भूमिका भी १९३६ में समाप्त हो जाती किन्तु तब उनके प्रचण्ड प्रगतिशील व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा नहीं हो पाती। प्रसाद के देहावसान, पन्त की स्वर्णानुसन्धान में अनुरक्ति और महादेवी वर्मा के काव्य-रचना से संन्यास ने हिन्दी कविता के छायावादी अध्याय के समुचित उपसंहार की अपेक्षा उसके आकस्मिक अन्त की स्थिति पैदा कर दी थी किन्तु सन् १९३७ और १९६१ के बीच निराला ने प्रगति और परम्परा का जो अदभुत अध्याय रचा है, न तो उसकी महत्ता उनके काव्य के पूर्वकथित स्वर्णयुग से न्यून है और न ही उसे अनदेखा कर इस युग की हिन्दी कविता का इतिहास लिखा जा सकता है। गत शताब्दी में निराला के इस अवधि के काव्य का स्वतन्त्र मूल्यांकन तो किया गया पर यह हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की विडम्बना है कि समकालीन कविता की प्रवृत्तियों के निर्धारण में उसकी भूमिका क्या है, इस पर विचार नहीं किया गया। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता के दौर में कुछ विशेष प्रवृत्तियों के आकलन के द्वारा उत्तरशती की कविता का जो इतिहास लिखा गया है, वह निराला जैसे समर्थ कवि की कृतियों को उपेक्षित तो करता ही है, उन नवीन क्षितिजों को अनदेखा करता है, जिसे निराला की कविता ने खोला था। प्रत्येक इतिहास-लेखक ने यह तो स्वीकार किया कि बीसवीं शताब्दी को कविता की सभी प्रवृत्तियों का उत्स निराला में विद्यमान है पर छायावादोत्तर काव्य के इतिहास लेखन में उनकी कृतियों का मूल्यांकन विवेचन उन्होंने नहीं किया, यहाँ तक कि इस शताब्दी के गीत का इतिहास लिखने वाले आलोचको ने भी ’अणिमा’, ’अर्चना’, ’आराधना’, ’गीतगुंज’ और ’सान्ध्यकाकली’ की भूमिका का सही आकलन नहीं किया है। उत्तर-आधुनिकता दौर में जब ‘पाठ’ के पुनर्विश्लेषण की प्रासंगिकता विशेष रूप से बढ़ी है तब निराला जैसे महाकवि के उत्तरकाव्य का पाठ विशेष रूप से पुनर्विचार की अपेक्षा रखता है।

निराला के काव्य का मूल सूत्र ‘राम की शक्तिपूजा’ की इस पंक्ति में मिलता हैः ‘धिक जीवन को जो पाता ही आया विरोध।’ परिस्थिति, समाज एवं संसर्गागत जनों से उन्हें नित्य विरोध ही मिला। परवर्ती काल में उन्हें ख्याति

भी असीम मिली पर विरोध उन्हें सतत मिला। उनके काव्य में विद्रोह की प्रखरता या स्वतन्त्रता का उद्घोष यदि विरोध का प्रतिकार है तो वसन्त के इस अग्रदूत का प्रकृति, प्रेम और भक्ति का काव्य अपने चतुर्दिक परिवेश में उन्मुक्त अभिव्यक्ति के माध्यम से भी इसी विरोध की सर्जनात्मक, धनात्मक एवं रचना के उल्लास से विषाद के दमन की सक्रियता है। परवर्ती काव्य का व्यंग्य जीवन में पाए विरोध की तिलमिलाहट का ही परिणाम है पर यह जीवन व्यक्ति निराला का ही जीवन नहीं, वरन् यह समष्टि से समन्वित उनके व्यक्तित्व का प्रतिनिधि है।

रीतिकाव्य और ब्रजभाषा के विरोध के साथ जन्म लेने वाले छायावादी काव्य में विचारधाराओं की टकराहट और जीवन-दृष्टियों का संघर्ष है। प्रगति की ऐतिहासिक प्रक्रिया के अन्तर्गत रोमान और रूपवाद के बावजूद इस कविता की इतिहास में एक क्रान्तिकारी एवं प्रगतिशील भूमिका है। छायावादी काव्य में भाषा, काव्यरूप, अभिव्यंजना-शिल्प एवं छन्द के क्षेत्र में भी गहरी टकराहट एवं प्रयोगशीलता दिखलाई देती है। निराला आरम्भ में इसी क्रान्तिकारी काव्य के साथ जुड़े। वे बीसवीं शताब्दी की हिन्दी कविता के प्रथम छह दशकों में घटित होने वाले विचार और शिल्प के संघर्ष के योद्धा हैं। काव्य-यात्रा के आरम्भ में ही मुक्तछन्द के प्रभावपूर्ण प्रयोग के द्वारा उन्होंने पारम्परिक काव्य-शैली के प्रति विद्रोह का शंख फूँक दिया था, तथापि इस शताब्दी में श्रेष्ठ छान्दसिक रचनाएँ भी निराला ने ही दीं। उनके काव्य में सन् १९३७ के आसपास आने वाले नए दौर को प्रमुखतः यथार्थवादी चेतना के उन्मेष से जोड़ा जाता रहा है जबकि सामाजिक सरोकार का स्वर तो उनकी कविता में तब भी स्पष्ट सुना जा सकता था, जब छायावाद अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच रहा था और जब उस काव्य को पलायन का पर्याय माना जा रहा था। 'विधवा', 'भिक्षुक', 'खण्डहर के प्रति', 'गरीबों की पुकार और 'बादल राग' जैसी कविताएँ इसी स्वर का प्रतिनिधित्व करती हैं। आलोचक कुकुरमुत्ता-काल की उनकी रचनाओं को विशेष रूप से यथार्थवादी मानते हैं। लेकिन उनमें यथार्थ का यह आवेग एक आक्रोशजनित प्रतिक्रिया का परिणाम है। 'निराला रचनावली' के दूसरे खण्ड की भूमिका में सम्पादक ने लिखा हैः 'निराला काव्य के दूसरे चरण की सबसे बड़ी विशेषता उसका यथार्थवाद है। 'कुकुरमुत्ता' (प्रथम संस्करण) 'अणिमा' और 'नये पत्ते' की कविताओं में हास्य के तत्त्व देखे गये हैं लेकिन वे शुद्ध हास्य के तत्त्व नहीं क्योंकि उनके भीतर निराला का सामाजिक यथार्थ का गहरा बोध छिपा हुआ है। 'कुकुरमुत्ता' उनकी ऐसी कविता है, जिसमें व्यंग्य की धार दोहरी है। उसमें एक तरफ वे पूँजीपति वर्ग पर व्यंग्य करते हैं और दूसरी तरफ संकीर्णतावादी प्रगतिशील दृष्टि पर। 'खजोहरा' जैसी कविताओं में उन्होंने रूमानी सौन्दर्य-स्वप्न को पूरी तरह मिटा देना चाहा है। इसी काल में यथार्थ के तीखे बोध से तिलमिलाकर उन्होंने आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्रीजी को लिखा था कि एक रोज दिल में आया जो कुछ पद्य साहित्य में लिखा है, उसका उल्टा लिख डालूँ।' (निराला के पत्र में २६ मई, १९४३ का पत्र) जैसा कि संकेत किया जा चुका है, निराला का यथार्थवाद नये पत्ते की 'कुत्ता भौंकने लगा', 'झींगूर डट कर बोला', 'छंलाग मारता चला गया', 'डिप्टी साहब आए और 'महगू महगा रहा' जैसी कविताओं में बुलन्दी पर पहुँचता है। बेला के गीतों और गजलों में यदि उनका रहस्यवाद है तो यथार्थवाद भी है। यहाँ स्मरणीय है कि बेला की ही एक ग़ज़ल में निराला ने सत्य को पा लेने की घोषणा की है-- 'खुला भेद विजयी कहाये हुए जो/लहू दूसरे का पिये जा रहे हैं।' (निराला रचनावली-२ पृ. १५) इससे स्पष्ट होता है कि निराला के काव्य का इस युग का यथार्थवाद साहित्य और परिवेश के प्रति प्रतिक्रिया में रचा गया है परन्तु इस दौर में वे गीत की अपनी प्रकृत भूमि से कटे नहीं हैं। 'अणिमा', 'बेला' और नये पत्ते' में गीतों की उपस्थिति है। निराला के उत्तर-काव्य का पाठ-विश्लेषण उपर्युक्त उद्धरण और समकालीन आलोचकों की कुछ टिप्पणियों के सन्दर्भ में थोड़ा जटिल हो जाता है। पहले कहा गया है कि निराला के इस युग के काव्य को समकालीन कविता के इतिहास के साथ जोड़ कर नहीं देखा गया। दूसरे, कई आलोचक उपर्युक्त उद्धरण की रचनाओं को ही निराला की कविता का अन्तिम सोपान, उनका अन्त और उनका प्रतिनिधि काव्य मानते है। (सन्दर्भः २४ जनवरी १९९६ को जलसं द्वारा आयोजित निराला जयंती समारोह में डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी और डॉ. केदारनाथ सिंह के वक्तव्य।) जबकि

'कृति ओर' पत्रिका में डॉ. नामवर सिंह का लेख निराला की 'अर्चना', 'आराधना', गीत गुंज' और 'सान्ध्य काकली' को इस दौर की प्रतिनिधि रचनाएँ स्वीकार कर उनके विशिष्ट महत्त्व पर बल देता है।

निराला का ऊर्ध्वमुखी विराट् व्यक्तित्व वर्गीकरण के साँचे को अस्वीकार करता है पर सुविधा के लिए उनके परवर्ती काव्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वर्ग में उनकी सन् १९३७ से १९४९ तक 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'बेला और 'नये पत्ते' में संकलित रचनाएँ आती हैं। दूसरे वर्ग का प्रतिनिधित्व मुख्यतः अर्चना', 'आराधना', 'गीत गुंज' और 'सान्ध्य काकली' की सन् १९४९ से १९६१ तक की रचनाएँ करती हैं। दूसरे दौर की रचनाओ में एक-दो रचनाएँ अपवाद स्वरूप ही ऐसी आई हैं जो गीतेतर विधा में है जबकि प्रथम वर्ग की रचनाओं में विषय एवं शिल्प की अभूतपूर्व विविधता है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे यह एक दशक निराला की घोर बेचैनी का युग है। मुक्त छन्द, गीत, गजल, कजली–कितने ही नए प्रयोग! क्या इस काल में निराला केवल प्रयोग के लिए प्रयोग कर रहे थे? नहीं, वे अपने युग के काव्य पर गहरी नजर रखे थे और घटित होने वाले परिवर्तनों के प्रति सचेत थे इसलिए उनकी इस युग की कविता न केवल अपनी पूर्ववर्ती शैलियों को नई दिशा देती है, बल्कि विश्रृंखल एवं अपकेन्द्रित होती समकालीन हिन्दी कविता के समक्ष एक प्रतिमान भी प्रस्तुत करती है। यह प्रतिमान तत्कालीन प्रगतिवादी और प्रयोगवादी–दोनों धाराओं के कवियों के लिए चुनौती बना। उनके परवर्ती काव्य थोड़ा विस्तृत वर्गीकरण यों सकता हैः (क)व्यंग्य-प्रधान सामाजिक यथार्थ की कविताएँ, जो प्रायः मुक्तछन्द में है, (ख)व्यक्ति विशेष से सम्बंधित कविताएँ (ग)नए ढंग की ग़ज़लें (घ)लोकपरक काव्य-रूप और (ङ)गीत।

सामाजिक यथार्थ का चित्रण निराला ने जिन कविताओं में किया है, उनमें आघात की प्रमुखता है। विद्रूप के महल को कठोर घनाघातों से ही ध्वस्त किया जा सकता था। आरम्भ में उन्होंने व्यंग्य के जो छोटे-छोटे तीर छोड़े हैं, उनकी मार भी कम पैनी नहीं है-- 'प्रेम संगीत' और 'गर्म पकौड़ी, निराला द्वारा प्रक्षिप्त वे आरम्भिक बाण हैं जो उन्होंने विषमता की ताड़का के संहार के लिए छोड़े हैं। बाद में इस शैली को नवगीत ने अपनाया है। 'प्रेम संगीत' (२२-२-१९३९) में वे लिखते हैं :

बम्हन का लड़का
मैं उसको प्यार करता हूँ।
जात की कहारिन यह,
मेरे घर की पनिहारिन वह,
आती है होते तड़का
उसके पीछे में मरता हूँ।
कोयल-सी काली, अरे,
चाल नहीं उसकी मतवाली,
ब्याह नहीं हुआ, तभी भड़का,
दिल मेरा, मैं आहें भरता हूँ।
रोज आकर जगाती है सब को,
मैं ही समझता हूँ इस ढब को,
ले जाती है मटका बड़का,
मैं देख-देख कर धीरज धरता हूँ।

'गर्म पकौड़ी' (१९४०) भी मूलतः गीतधर्मी रचना है लेकिन यह गीत के 'स्वानुभूति की विवृति' के भावुकताप्रधान घेरे को तोड़ती हैः

गर्म पकौड़ी--
ऐ गर्म पकौड़ी,
तेल की भुनी
नमक-मिर्च की मिली,
ऐ गर्म पकौड़ी।
मेरी जीभ जल गयी,
सिसकियाँ निकल रहीं,
लार की बूँदें कितनी टपकीं,
पर दाढ़ तले दबा ही रखा मैंने
कंजूस ने ज्यों कौड़ी!
पहले तूने मुझको खींचा,
दिल लेकर कपड़े-सा फींचा,
अरी तेरे लिए छोड़ी
बम्हन की पकायी
मैंने घी की कचौड़ी।

भारतीय सन्दर्भों में वर्ग-भेद के आर्थिक स्तर तो हैं ही, सामाजिक स्तर भी हैं। प्रेमचन्द इन स्तरों को समतल करना आरम्भ कर चुके थे। निराला जानते थे कि

अभी मंजिल मिली नहीं है। उपर्युक्त दोनों रचनाओं का व्यंग्य जिस वर्ग-भेद पर केन्द्रित है, उसके संहारार्थ वे लघु बाणों की अपेक्षा ब्रह्मास्त्र छोड़ने की तैयारी कर चुके थे। जाति, धन, सत्ता और अधिकार-- आभिजात्य के अनेक रूप होते हैं। इसी प्रकार निर्धनता, दासता, शोषितावस्था सर्वहारा की भी विभिन्न स्थितियाँ है लेकिन आभिजात्य की पर-पोषितता उसके जीवन की दृढ़ता का आधार खिसका देती है। उसका पाटल-सौन्दर्य साधारण कुकुरमुत्ते के सामने हेठा पड़ जाता है। कुकुरमुत्ता निराला का वह व्यंग्य-ब्रह्मास्त्र है, जिससे वे एक साथ एक पूरी व्यवस्था को ध्वस्त करने का प्रयास करते है। यहाँ वर्ग सापेक्ष प्रतीकात्मकता जहाँ बहुत दूर तक तर्काश्रित रही है, वहाँ अनेक स्थलों पर पुख्ता तर्क-वितर्क की अपेक्षा कुकुरमुत्ता लट्ठमार हेकड़ी दिखाने पर आ गया है और जिस एब्सर्ड अथवा विसंगत का प्रयोग कविता और कुछ परवर्ती नाटकों में हुआ है, उसका सार्थक और संगत प्रयोग निराला ने 'कुकुरमुत्ता' में किया है। स्वप्निल फन्तासियों का प्रयोग तो और भी कवियों ने किया है पर निराला ने 'कुकुरमुत्ता' को यथार्थ एवं व्यंग्यात्मक फन्तासी की बुनावट प्रदान की है। देश-विदेश, ज्ञान-विज्ञान, अतीत-वर्तमान, इतिहास-भूगोल और शिक्षित-अशिक्षित समाज की जो सैर 'कुकुरमुत्ता' पाठक को कराता है, उसके सन्दर्भ में इसकी भाषा का क्षिप्र प्रवाह ध्यातव्य है। वृत्तान्त की यह क्षिप्रता पाटलवृति पर किए गए दनादन प्रहार को व्यंजित करती है। कुकुरमुत्ता जिस व्यवस्था को ललकारता है, उससे तर्काश्रित लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। उसे तो शक्ति प्रदर्शन से ही नेस्तानाबूद किया जा सकता है। यह शक्ति सर्जनात्मक भी हो, इसकी स्थापना भी अनिवार्य है। इसी लिए समस्त सर्जनाओं का आधार कुकुरमुत्ता स्वयं को प्रमाणित करता हैः

मुझी में गोते लगाये वाल्मीकि-व्यास ने
मुझी से पोथे निकाले भास-कालिदास ने।
टुकुर-टुकुर देखा किये मेरे ही किनारे खड़े
हाफिज-रवीन्द्र जैसे विश्वकवि बड़े बड़े।
कहीं का रोडा, कहीं का पत्थर
टी. एस. एलीयट ने जैसे दे मारा
पढ़ने वाले ने भी जिगर पर रखकर
हाथ, कहा, 'लिख दिया जहाँ सारा'।ष्ठ ष्ठ
मेरी सूरत के नमूने पीरामीड
मेरा चेला था यूक्लीड।
रामेश्वर, मीनाक्षी, भुवनेश्वर,
जगन्नाथ, जितने मंदिर सुन्दर
मैं ही सबका जनक
जेवर में जैसे कनक।
हो कुतुब मीनार,
ताज आगरा या फोर्ट चुनार,
विकटोरिया, मैमोरियल कलकत्ता
मस्जिद, बगदाद, जुम्मा अलबत्ता
सेंट पीटर्स, गिरजा हो या घंटाघर,
गुम्बदों में, गढ़न में मेरी मुहर।
एरियन हो, पर्शियन या गाथिक आर्च
पड़ती है मेरी ही टार्च।

पूरी कविता में वर्ग-संर्घष के दोहरे-तीहरे प्रतीक विद्यमान हैं। गुलाब और कुकुरमुत्ता जैसे मनुष्येतर प्रतीकों के अतिरिक्त 'गोली' और 'बहार' जैसे पात्रों में प्रतीकात्मकता और वर्ग-भेद है, बल्कि परिवेश-चित्रण में भी लेखक का बल कंट्रास्ट पर है। उपर्युक्त पंक्तियों के समानान्तर निम्नलिखित सन्दर्भ को रखने से यह स्पष्ट हो जाता है :

बाग के बाहर पड़े थे झोंपड़े
दूर से जो दिख रहे थे अधगड़े।
जगह गंदी, रुका, सड़ता हुआ पानी
मोरियों में; जिन्दगी की लन्तरानी--
बिलबिलाते कीड़े, बिखरी हड्डियाँ
सेलरों की, परी की गड्डियाँ
कहीं मुर्गी, कहीं अण्डे
धूप खाते हुए कण्डे

यह द्वन्द्वात्मक प्रतीकात्मता केवल स्थिर बिम्बों में नहीं है, सक्रिय सन्दर्भ भी इसे ही व्यक्त करते हैं। यथाः

चली गोली आगे जैसे डिक्टेटर
बहार उसके पीछे जैसे भुक्खड़ फोलोवर।
उसके पीछे दुम हिलाता टेरियर--
आधुनिक पोयट (इद्दू)
पीछे बाँदी बचत की सोचती
केपिटलिस्ट क्वेट।

'तुलसीदास', 'गीतिका' और 'राम की शक्ति पूजा' के कवि के इस स्वर से लोग चौंके जरूर पर यह भी सब मानते थे कि यथार्थ के इस ओज, वैराट्य और विस्तार को 'राम की शक्ति पूजा' का कवि ही कविता में बाँध सकता है। 'कुकुरमुत्ता' ने वर्ग-संघर्ष का चित्रण करते हुए रूमानी सौन्दर्य की आवधारणाओं को खंडित किया। अभिजात सौन्दर्य-स्वप्न पर दो और कविताओं में निराला ने चोट की हैं। 'रानी और कानी' के व्यंग्य में करुणा का स्वर प्रधान है पर 'खजोहरा' उनकी ऐसी सानुप्रासिक छन्दोमयी कविता है, जिसे रवीन्द्र की 'उर्वशी' के विलोम के रूप में देखा जाता रहा है। साधारण की असाधारण प्रस्तुति भी व्यंग्य का एक माध्यम रही है। गाँव के परिवेश को लोकभाषा का छोंक लगा कर जिस रूप मे किया गया है वह देखते ही बनता हैः

मेढ़क एक बोलता है जैसे सुकरात,
दूसरा फ़लातूँ सुन रहा है बात।

बुआ के जल में पैठने की छवि को निराला का सौन्दर्य-स्रष्टा मन इस रूप में अंकित करता हैः

बुआ ताल में पैठी जैसे हथनी,
डर के मारे काँपने लगा पानी;
लहरें भगीं चढ़ने को किनारे पर,
बाँधा पानी बुआ ने बाहों में भरकर।
नीव के खम्भे हों, पैर कीच में हैं;
जाँघ से छाती तक अंग बीच में है।

यह नग्न-प्रायः सौन्दर्य-चित्रण निर्मल परिहास का ही रूप है, नयी कविता की काम-कुंठाओं का पर्याय इसे नहीं कह सकते क्योकि निराला आवृत्त अथवा अनावृत्त सौन्दर्य को सदैव मन के औदात्य है जोड़ते रहे। स्फटिक शिला का उपसंहार इसका प्रमाण हैः

आँख पड़ी युवती पर
आई थी जो नहाकर,
गीली धोती सटी हुई भरी देह में, सुघर
उठे पुष्ट स्तन, दुष्ट मन को मरोड़ कर,
आयत दृगों का मुख खुला हुआ छोड़ कर।
बदन कहीं से नहीं काँपता।
कुछ भी संकोच नहीं ढाँपता।
वर्तुल उठे हुए उरोजों पर अड़ी थी निगाह
चोंच जैसे जयन्त की नहीं, जैसे कोई चाह
देखने की मुझे और,
कैसे भरे दिव्य स्तन, हैं ये कितने कठोर।
मेरा तन कॉप उठा, याद आयी जानकी
कहा, तुम राम को,
कैसे दिये हैं दर्शन!

सन् १९४० के आसपास निराला के यथार्थपरक काव्य का स्वर व्यंग्यप्रधान ही है, उसमें अभावग्रस्त जीवन का चित्रण उतना नहीं है। 'मास्को डायलोग' में भी तथाकथित 'कामरेड' पर अच्छा व्यंग्य है परन्तु पाँच-छ वर्षों के अन्तराल के बाद वे जब फिर सामाजिक यथार्थ से जुड़ते हैं तो मुक्त छन्द में ५-६ ऐसी रचनाएँ देते हैं, जो किसान जीवन से उनकी गहरी सम्पृक्ति तो दिखती ही हैं, पूँजीवादी व्यवस्था के षड्यंत्रों को भी उद्घाटित करती हैं। एक छोटी-सी कविता में उन्होंने शोषक व्यवस्था के निर्माण की पूरी ऐतिहासिक प्रक्रिया को समेट दिया हैः

धूहों और गुफाओं और पत्थरों के घरों से
आजकल के शहरों तक, दुनिया ने चोली बदली।
बिजली और तार और भाप और वायुयान
उसके वाहन हुए।
जान खींची खानों से / कल और कारखानों से।
रामराज के पहले के दिन आए
बानिज के राज ने लछमी को हर लिया
टापू में ले चलकर रखा और कैद किया
एक का डंका बजा / बहुतों की आँख झपी।
लहलही धरती पर रेगिस्तान जैसा तपा।
जोत में जल छिपा, / धोखा छिपा, छल छिपा
बदले दिमाग बढ़े, / गोल बाँधे, घेरे डाले,
अपना मतलब गाँठा / फिर आँखे फेर ली।
जाल भी ऐसा चला / कि थोडे के पेटे में बहुतों को आना पड़ा।

विकास की यही प्रक्रिया 'दगा की' और 'चर्खा चला' कविताओं में भी चित्रित हुई है। 'कुत्ता भौंकने लगा', 'झींगूर डट कर बोला', 'छलांग मारता चला गया' और 'डिप्टी साहब' केवल इसी लिए महत्त्वपूर्ण रचनाएँ नहीं है कि इनमें जमींदार और किसान के शोषक-शोषित के संदभों को दिखलाया गया है, वरन् ये इसलिए भी महत्त्वपूर्ण

हैं क्योंकि इनमें साधारण जन के आक्रोश के स्वर हैं, विरोध की आँच है और समकालीन राजनैतिक संदर्भों के प्रति सचेतता है। 'महगू महगा रहा' में जन की यह जाग्रति बहुत स्पष्ट है। करुणा का आलम्बन ले यह जन-जीवन जब शोषक व्यवस्था के हथकण्डों के प्रति सचेत हो जाता है तो परिवर्तन की आशा जन्म लेती है। निराला का यह काव्य नारेबाज प्रगतिवादी कवि का काव्य नहीं है वरन् यह उस कवि की करुणा का परिणाम है, जो इस जीवन से प्रथामिक आधार पर जुड़ा है। ऐसा कवि ही ये बिम्बों आँक सकता थाः

आज ठण्डक अधिक है
बाहर ओले पड़ चुके हैं,
एक हफ्ते पहले पाला पड़ा था–
अरहर कुल-की-कुल मर चुकी थी,
हवा हाड़ तक बेंध जाती है। गेहूँ के पेड़ ऐंठे खड़े हैं
खेतीहरों में जान नहीं
मन मारे दरवाजे कौडे ताप रहे हैं
एक दूसरे से गिरे गले बातें करते हुए
कुहरा छाया हुआ
ऊपर से हवाबाज उड़ गया।
जमीदार का सिपाही लग कंधे पर डाले
आया और लोगों को देखकर कहा
'डेरे पर थानेदार आए हैं;
डिप्टी साहब ने चंदा लगाया है,
एक हफ्ते के अंदर देना है
चलो बात दे आओ।'
कौड़े से कुछ हट कर
लोगों के साथ कुत्ता खेतीहर का बैठा था.
चलते सिपाही को देख कर खड़ा हुआ,
और भौंकने लगा,
करुणा से बंधु खेतिहर को देख-देखकर--

'नये पत्ते' संग्रह की ग़ज़लें और इससे पूर्व 'बेला' की कई रचनाएँ निराला के यथार्थवादी स्वर में ही ढली है। समकालीन स्वतन्त्रता संग्राम की घटनाओं की प्रतिध्वनि इनमें हैं। इनकी अपेक्षाकृत सरल भाषा निराला के काव्य के कथ्य पर केन्द्रित हो जाने का प्रमाण है। शिल्प को लोक-रंगों में डुबाने का उनका प्रयास इन रचनाओं में देखा जा सकता है। उनकी लोक-रंग में डूबी यह रचना तो बहुत प्रसिद्ध हैः

काले-काले बादल छाए, न आए वीर जवाहरलाल
कैसे-कैसे नाग मँडलाए, न आए वीर जवाहरलाल,
बिजली फन के मन की कौंधी, कर दी सीधी खोपड़ी औंधी,
सर पर सरसर करते धाए, न आए वीर जवाहरलाल।
पुरवाई की हैं फुफकारें, छम-छम ये विष की बौछारें,
हम हैं जैसे गुफा में समाए, न आए वीर जवाहरलाल।
महँगाई की बाढ़ बढ़ आई, गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई,
भूखे-नंगे खड़े शरमाए, न आए वीर जवाहरलाल।
कैसे हम बच पाएँ निहत्थे, बहते गए हमारे जत्थे,
राह देखते हैं भरमाए, न आए वीर जवाहरलाल।

भले ही 'बेला' और 'नये पत्ते' की ग़ज़लें विशेष रूपगत महत्त्व न बना पाई हों पर विषय की दृष्टि से वे सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने वाली मुक्तछन्द की रचनाओं की पूरक भूमिका का निर्वाह करती है। यह उद्धरण इस की पुष्टि करता हैः

भेद कुल खुल जाए वह सूरत हमारे दिल में है।
देश को मिल जाए जो पूँजी तुम्हारी मिल में है?
तरस है ये देर से आँखे गड़ी श्रृंगार में।
और दिखलाई पड़ेगी जो गुराई तिल में है?
पेड़ टूटेंगे, हिलेंगे, ज़ोर से आँधी चली।
हाथ मत डालो, हटाओ पैर, बिच्छू बिल में है?

भाषा का गंगा-जमुनी रूप इन गज़लों को दुष्यन्त से आरम्भ होने वाली हिन्दी गजल की पूर्व पीठिका का दर्जा देता है। एक उत्साह जैसे निरन्तर इन गजलों को रवानगी प्रदान करता है :

अगर तू डर के पीछे हट गया तो काम रहने दे।
अगर बढ़ना है अरि की ओर तो आराम रहने दे।
बिगड़ कर बनते और बन कर बिगड़ते एक युग बीता

परी और शाम
रहने दे, शराब और जाम रहने दे।

व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित लगभग दस कविताएँ भी अन्होंने 'अणिमा', 'बेला', और नए पत्ते में संग्रहीत की हैं। 'अणिमा' में इनकी संख्या अधिक है। बुद्ध, जयशंकर प्रसाद, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, रविदास, स्वामी प्रेमानन्द महादेवी वर्मा, रामकृष्ण परमहंस, लक्ष्मी एवं सरस्वती विषयक रचनाएँ इन व्यक्तियों एवं आराध्य शक्तियों के प्रति कवि की गहन अनुरक्ति की परिचायक हैं। 'सहस्राब्द' कविता ऐतिहासकि सन्दर्भ प्रस्तुत करती पर यह भी उपर्युक्त कविताओं के साथ ही वर्गीकृत की जा सकती है। इन रचनाओं का महत्त्व तत्कालीन राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में तो विशेष था ही ये कवि की निष्ठा का प्रमाण भी हैं क्योंकि ये निराला के इन व्यक्तित्वों का किसी न किसी रूप में ऋणी होने का संकेत देती हैं। जयशंकर प्रसाद के प्रति कविता में उन्होंने जो भाव व्यक्त किये हैं, वे छायावाद के संघर्ष का परोक्ष इतिहास तो हैं ही, निराला की प्रसाद के प्रति असीम श्रद्धा के परिचायक भी हैं। विशेष बात यह है कि उन्होंने इस कविता में साहित्य-यात्रा को विकास देने वाले अपनी पीढ़ी के रचनाकारों का ही उल्लेख नहीं किया है, वरन् साहित्य क्षितिज पर उदित होने वालों सद्यस्क नक्षत्रों का भी मुक्तमन से उल्लेख किया है, जो प्रमाणित करता है कि उनकी नजर हिन्दी के नवीनतम लेखन पर सतत रही है। इन व्यक्तिपरक रचनाओं और 'बेला' तथा 'नये पत्ते' की अनेक वस्तुपरक कविताओं को समग्र रूप में देखें तो दो तथ्य उभर कर सामने आते हैं। एक तो उन्होंने सन् ३९ से ४७ तक लगभग एक दशक में शैल्पिक प्रयोग, विशेष कर काव्यरूपात्मक प्रयोग, बहुत अधिक किए हैं; दूसरे, उनके काव्य का विषयपरक क्षितिज अत्यत असीम हो गया है। इस काल में उनकी मुक्तछन्द की कई विशिष्ट रचनाएँ है परन्तु तुलनात्मक रूप में परवर्ती काल में निराला ने मुक्तछन्द का प्रयोग पूर्वकाल से कम किया है। आज के कई मूर्द्धन्य आलोचक उन समकालीन कवियों की पीठ थपथपाते खूब दिखाई देते हैं, जिन्होंने कविता से छन्द को पूर्णतः बहिष्कृत कर दिया है। इन स्वनामधन्य आलोचकों का तर्क यह है कि निराला ने कविता को छन्द से मुक्त कर दिया था और इस दौर के कवियों ने छन्द का परित्याग कर निराला की परम्परा को आगे बढ़ाया है। ऐसी घोषणाओं से निराला का कितना अपमान हुआ है, उसे तो इसी तथ्य से समाझा जा सकता है कि मुक्तछन्द के प्रणेता, प्रचुर प्रयोक्ता और व्याख्याता निराला की एक भी पंक्ति छन्दहीन नहीं है, मुक्त छन्द में रचित कविताओं की भी नहीं। ये धुरन्धर आलोचक मुक्तछन्द और छन्दहीनता को पर्याय मानकर या मनवाकर अपनी विद्वत्ता का अच्छा उद्‌घाटन कर रहे हैं क्योंकि सीढ़ीदार कवित्वहीन गद्य लिखने वाले जिन कवियों को ये छन्दहीनता के आधार पर निराला का वंशधर बतला रहे हैं, उनमें एक भी पंक्ति पारम्परिक छन्द में तो क्या मुक्तछन्द में भी रचने की क्षमता नहीं है। निराला ने सन् १९३९ से १९६१ तक लगभग चार सौ गीतों की रचना की है। ग़ज़लों को मिला कर निराला की गीतेतर रचनाओं की संख्या इस काल में सौ के लगभग ही है। कुछ आँकड़े तो और भी चौंकाते हैं। निराला ने सन १९५० में जनवरी और फरवरी के दो महिनों में १०३ गीत लिखे हैं। यह संख्या इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि यह वह दौर है जब सप्तक-काव्य की प्रतिष्ठा चरम पर थी। हिन्दी कविता जन-विमुख एवं रूग्ण अभारतीय मानसिकता से घिरने लगी थी, गीत की मृत्यु की घोषणा की जाने लगी थी और छन्द का परित्याग एक फैशन बनता जा रहा था। उस दौर में निराला द्वारा गीत को दी गई समृद्धि गीत-विरोधियों को दिया गया रचनात्मक उत्तर था। निराला ने अपने जीवन के अन्तिम १०-१२ वर्ष अन्य सभी प्रयोगों से अपने को समेट कर गीत की जमीन पर यों ही नहीं खपाये हैं। यह साधना इस शताब्दी के महत्तम कवि की गीत के प्रति निष्ठा, आस्था एवं समर्पणशीलता का परिचय देती है।

'कृति ओर' के सितम्बर ९६ के अंक में 'निराला की कविता में परम्परा तथा आस्वाद के विभिन्न स्तर' शीर्षक से डॉ. नामवर सिंह का एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें वे लिखते हैः 'छायावादी दौर के गीत और इस दौर के निराला के गीतों को अगर हम देखें तो पन्त, प्रसाद और महादेवी के गीतों से अलग ये गीत हैं, इसलिए वे कहने को तो गीत जरूर हैं, लेकिन ठीक-ठीक परम्परित अर्थ में वे प्रगीत हैं जिसे लिरिक कहते हैं। मैं यहाँ लिरिक शब्द का प्रयोग करना चाहूँगा क्योंकि गीत कहने में भ्रम

होता है।' इस कथन में यह सत्य निहित है कि निराला के अन्तिम दौर के गीत छायावादी गीत से भिन्न हैं पर उन्हें प्रगीत या लिरिक कहने से भी भ्रम ही होगा क्योंकि सन् ४० और ६० के बीच इन दोनों शब्दों का प्रयोग छायावादी गीतों के सन्दर्भ में ही होता रहा है। प्रगीत की जो परिभाषा वर्णनात्मक लम्बे गीतों के रूप में कभी नन्ददुलारे वाजपेयी ने दी थी, वह इन गीतों की पहचान को ही खत्म कर सकती है पर डॉ. नामवर सिंह के कथन में सत्यता का दूसरा अंश है कि इन गीतों का रूप परम्परित है तथापि है ये गीत ही हैं प्रगीत नहीं। इस 'परम्परित' रूप के स्पष्टीकरण से समस्या सुलझ जाती है। प्रस्तुत लेखक ने १९७६ में 'सप्तसिंधु' में (१९८४ में 'हिन्दी नवगीत : उद्भव और विकास' पुस्तक में) प्रकाशित अपने एक निबन्ध 'नवगीत में आत्मानुभूति का स्वरूप' में लिखा था कि निराला ने सन् ५० के आसपास गीत को भारतीय परम्परा से जोड़ते हुए जो परिवर्तन किया था, वह गीत में वस्तुपरकता का समावेश है। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने 'एक असाहित्यिक की डायरी' पुस्तक में गीत पर बहुत विस्तार से लिखा है। डॉ. नामवरसिंह जिस 'परम्परित प्रगीत' का उल्लेख करते हैं, उसकी भारतीय काव्य में सम्पूर्ण परम्परा को विश्लेषित करते हुए शास्त्री जी ने दिखलाया है कि वस्तुपरकता भारतीय गीत-परम्परा में निरन्तर रही है जबकि अंग्रेजी स्वच्छन्दतवादी काव्य का लिरिक गीत को स्वानुभूति की विवृति तक सीमित करता है। निराला का गीत इस सीमा से मुक्त है। डॉ. नामवरसिंह के शब्द-प्रयोगों के विवाद में न जाते हुए हम स्वीकार करते हैं कि निराला के इस दौर के गीत परम्परित गीत हैं और परम्परा इन्हें गैर-रूमानी एवं वस्तुपरक गीत प्रमाणित करती है। सौन्दर्य से गाढ़ अनुरक्ति तो निराला के सम्पूर्ण काव्य में है पर यह सौन्दर्यानुराग रोमानी भावोच्छवास मात्र नहीं है। वस्तुपरक दृष्टि की परम्परा तो निराला के 'गीतीका' के गीतों में भी है परन्तु उनके परवर्ती गीत उस काल की आवृत्ति नहीं हैं, उनका बोध और शिल्प नितान्त भिन्न है। इस भिन्नता का प्रवर्तन 'अणिमा' के गीतों से ही हो जाता है। इस दौर की उनकी समग्र गीत-यात्रा की वस्तुपरकता का एक प्रमाण यह भी है कि लगभग २० वर्षों में रचित इन गीतो का कथ्यगत प्रसार विविधतामुखी है। गीत पर एक समीक्षक का आरोप यह भी है कि 'वर्तमान युग में भाव को आधार बनाकर कविता नहीं लिखी जा सकती; कविता के लिए विभाव अपेक्षित है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कविता में सर्वाधिक महत्त्व विभाव को ही दिया है'। हम आचार्य शुक्ल के इस सिद्धान्त से तो सहमत हैं पर इन गीतविरोधी समीक्षकों को परामर्श देना चाहेंगे कि यदि वे निराला के इन गीतों को और तदनन्तर त्रिलोचन की घरती को और गत ६० वर्षों में रचित नवगीत को पढ़ें तो उसमें विभाव की ही अभिव्यक्ति पाएँगे, तब वे गीत के विरोध का कौन-सा आधार खोजेंगे?

पहले कहा गया है कि निराला ने अपने जीवन के अन्तिम २०-२२ वर्षों में जो गीत लिखें हैं, उनकी अगणित भंगिमाएँ (शेड्स) हैं। आदर्श संसार को मूर्त बनाने की प्रार्थना, संसार के दुःखों के परिहार की प्रार्थना, संसार के दुःखमय रूप का चित्रण, भक्त कवि की आस्था, भक्ति के आराध्य आलम्बन, व्यंग्य की चोट, सामाजिक यथार्थ, किसान-जीवन, देश की स्थिति, शोषण, अभाव, सौन्दर्य, प्रकृति-- शरद, वसन्त और वर्षा का चित्रण, दर्शन, वेदना और विषाद-- कितनी-कितनी अर्थच्छवियाँ उनके गीतों में उमरी हैं।

हम देख चुके हैं कि गीत की कोमलता-सापेक्ष छवि को निराला ने 'प्रेम-संगीत' और 'गर्म पकौड़ी' में ही तोड़ दिया था। व्यंग्य का स्वर उनके अन्य गीतों में भी उभरा है। पर निराला के गीतों में क्रमशः व्यंग्य की अपेक्षा उस सामाजिक यथार्थ का चित्रण प्रमुखता पाने लगता है, जिसमें या तो अभावग्रस्त जीवन के प्रति करुणा है अथवा उससे उत्पन्न होने वाले आक्रोश के कारण विद्रोह का स्वर है। उनके १९४४ में लिखे गीत की कुछ पंक्तियाँ हैंः

भीग माँगता है जब राह पर
मुट्ठी भर हड्डी का यह नर
एक आँख आज के बानिज की
पराधीन हो कर उस पर पड़ी
कहा कला ने, कल का यह वर
एक आँख कारीगर की गड़ी
कहा आदमी को यह है छड़ी
खेदे कोई इसको लेकर

जीवन की इस विवश विषाद-ग्रस्त स्थिति के चित्रण

की परिणति आगे विद्रोह के इस स्वर में होती हैः

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अँधेरे का ताला
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।

जो कवि यह लिखता है- 'बंदीगृह वरण किया; जनता के हृदय जिया', वही जन के सुख-दुःख को अपने गीतों का विषय बना सकता है। निराला ऐसा इसलिए कर सके क्योंकि लोक-जीवन से उनका सीधा साक्षात्कार था। उनकी भाषा का निपट निरालापन इस लोक-जीवन से भी उपजा था। 'आराधना' के कई गीत इस अटपटी भाषा के माध्यम से लोक-जीवन को प्रतिबिम्बित करते हैं। यथाः

बान कूटता है,
मुगरी लेकर सुख का
राज लूटता है
मूँज के फाले छाले
अच्छे बाँधों वालेः ऐसे बैठे ठाले
काज कूटता है

निराला किसान-जीवन से अपने को कभी काट नहीं पाए। किसान का दुःख-दर्द उनकी कविताओं में आरम्भ से ही व्यक्त होता रहा है। अपार दैन्य, शोषण एवं यन्त्रणा को गीत में स्थान देने का क्रान्तिकारी कदम निराली ने ही उठाया था। इसीलिए वे प्रगतिशील चेतना से सम्पन्न परवर्ती गीतधारा नवगीत के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। कृषक जीवन के ये बिम्ब निराला के ही गीतों में मिल सकते थे :

खेत जोत कर घर आए हैं
बैलों के कन्धों पर माची
माची पर उल्टा हल रखा
बढ़ी हाथ अधेड़ पिताजी,
माता जी, सिर गठ्ठल पक्का
पिता गये गौओं के गोंडे
माता घर लड़के धाये हैं।

निराला के गीतों में व्यग्य का स्वर दिसम्बर १९५२ में फिर उभरा है पर यहाँ यह व्यंग्य विसंगत जीवन का चित्रण अधिक करता है। ऊँट बैल का साथ हुआ है; / कुत्ता पकड़े हुए जुआ है।' जैसे गीतों में विसंगति का ही चित्रण है। 'मानव जहाँ बैल घोड़ा है' गीत में विसंगति के साथ करुणा भी आ मिली है। कवि कहता हैः

पक पक कर ऐसा फूटा है
जैसा सावन का फोड़ा है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला की उस मन स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण किया है, जिसमें उन्होंने 'अर्चना' के गीत लिखे थे। उनका कथन है-- 'निराला का मन अपेक्षाकृत शान्त था। वह उस वातावरण में आ गये थे जिसमें रहने के आदि थे। साहित्यकार संसद में जो सरस्वती मौन थी, वह सहसा मुखर हो उठी। जिस नरक में उनका मन घूमता रहा था, वह बाहर था, उसके भीतर भी। गह्वर में पड़ा हुआ मनुष्य, कृमि से भी पतित, उसका जन्म, दुर्गंध से विकल रोता हुआ शिशु, शिशिर की रात, चारों ओर हिंस्र पशु, हृदय में त्रास, सामने नग्न काली के समान नाचती हुई निराशा दिगम्बरी, कवि के सामने उसके अपने प्राणों की जर्जर परछाई, शरीर और मन में जैसे बीसों विष व्याप्त हुए. माथे है नील का टीका, दाग-दाग कुल अंग स्याह है, सब कुछ नीला-नीला, नील जलधि, नील गगन, नील मृत्यु-- निराला जैसे मृत्यु की विभीषिका प्रत्यक्ष देख रहे थे, मृत्यु के विष से दग्ध हो रहे थे, भय और त्रास के आलम्बन प्रेतों की तरह उन्हें घेरे हुए थे। 'राम की शक्ति पूजा' का अंधकार अकेला न होकर सैकड़ों भयावनी छायाओं में बैट कर मानों उनसे युद्ध कर रहा था। जिस नीलिमा को वे बार-बार देख रहे थे, वह कालिदास के श्रृंगार काव्य की-- शारदीय गगन जैसी निरभ्र नीलिमा न थी, यह शिवकण्ठ की नीलिमा थी, सिन्धुमन्थन से अमृत के साथ निकली हुई, वैसी ही कालजयी वैसी ही आकर्षक!

निराला का मन आत्म करुणा से भर गया। राह चलते चोट खाई, ऐसी चोट खाई कि होश के भी होश छूट गये। साथ में जो पाथेय था, उसे ठग-ठाकुरों ने लूट लिया। सारे संसार में जहर भर गया है। काल आ रहा है। कण्ठ रुकता जा रहा है। ये दुःख के दिन, काटे हैं पलछिन गिन कर आँसू की लड़ के हार पिरोये, हार गया जीवन साथ छोड़ गये साथी । निराला ने प्रार्थना की-

माँ अपने आलोक निखारो,

नर को नरक त्रास से वारो

निराला का मन पहली बार तुलसीदास की 'विनय पत्रिका' की और गया। ज्ञानोद्धत प्रहार करना वह भूल गये । पहली बार उन्होंने विनती कीः

भजन कर हरि के चरण मन
पार कर मायावरण, मन !

पर आत्म-समर्पण कर जो संतुष्ट हो जाते, वे कवि कोई और होंगे, निराला नहीं। उन्होंने ब्रह्म से लड़ना शुरू किया। पूछा कैसे हुई हार तेरी निराकार ? कहीं हों तो जवाब दें। निराला ने डाँटा, व्यंग्य किया, उलाहना दिया, फिर अपने मन को ललकारा–'यों पंथ पर बेमौत न मर'। ऐसे मर कि दूसरे जीवन पायें। निराला का मन 'राम की शक्ति पूजा' के महावीर की तरह पछाड़ खाते हुए जल के पहाड़ों से लड़ता रहा, अपनी उद्?भुत क्रियाएँ देख कर गीतों में उनके चित्रों को बनाता रहा।

'... निराला की रचनाओं में अर्चना एक अदभुत संग्रह है। हर संग्रह की तरह इसमें भी बहुत कुछ अटपटा है, कहीं-कहीं लगता है, शब्दों को जबर्दस्ती उन्होंने पंक्तियों में ठूँसा है, पर उस कवि की रचना है, जो नरक में घूम कर लौटा था, जिसके मन से धरती का मोह छूटा न था।

'... हार-हार कर भी जीता-- ऐसा था निराला का अपराजेय मन जिसने सन् '५० में अर्चना के गीत लिखे थे।' (निराला की साहित्य साधना, पृ. ३८९-९०)।

निराला ने इस युग में जो गीत रचे हैं, उनमें युगीन परिवेश की विभीषिकाओं का चित्रण प्रमाणित करता है कि वे सामाजिक यथार्थ के प्रति उस अवस्था में भी पूर्णतः सजग थे, जिसे कुछ लोगों ने उनके विक्षेप अथवा अर्धविक्षेप की स्थिति माना है। सन' ५० में वे लिख रहे थे :

घन तम से आवृत धरणी हैः
तुमुल तरंगों की तरणी है।
मन्दिर में बन्दी हैं चारण
चिघा रहे हैं वन में वारण
रोता है बालक निष्कारण
बिना सरण-स्मरण-भरणी है

तब वे संसार के दुःखों के परिहार की जो कामना या प्रार्थना करते है. वह भी उनकी इस सजगता का प्रमाण है। यों वे सन् १९३९ में ही लिख चुके थेः

दलित जन पर करो करुणा
दीनता पर उत्तर आये प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा।

वे प्रकृति से भी जनहित की कामना करते हैंः

हिम के आतप के तप झुलसो,
नाम-वारि के वारिद हुलसो।
भीगे कठिन धरा निष्पावन
चले चतुर्दिक हल अभिभावन
बोये बीज सीझ कर हुलसो
बढें नये पोधे लहलह कर,
पुरवाई के झोंके सह कर
थके नयन साधन-धन गह कर
जीवन के सावन तुम सुलसो

इन्ही रचनाओं के लिए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा था। '... गीत लिखते समय निराला ने विकट प्रयास से अपने मन को साधा था। दारागंज की गली में घूमते हुए वे स्वगत कथन के गद्य-संसार में कहाँ-कहाँ भटकते से उससे दूर कहीं गीत लिखते समय अपने मन को बहुत ऊपर खींच ले जाते थे । अपनी पीढ़ी के कवियों में वही अकेले थे जो अब भी अपने को अनासक्त मन से देख लेते थे, जो तटस्थ होकर अपना और अपने परिवेश का चित्रण कर सकते थे, जिनकी रचनाएँ उनके पुराने काव्य की प्रतिध्वनि मात्र न थे, जो अब भी हिन्दी के ऊसर में अपने लिए नयी राहें बना रहे थे। (निराला की साहित्य साधना, पृ. ३९१)

निराला के उत्तर काव्य में जहाँ अनेक ऐसे गीत हैं, जिनमें संसार के दुःखमय रूप का चित्रण, आदर्श संसार के मूर्तीकरण की कामना, संसार के दुःखों के परिहार की प्रार्थना का स्वर प्रधान है, वहाँ इसमें भक्तिपरक गीतों की संख्या भी कम नहीं है। ऐसे गीत किसी नव्य रहस्यवाद. का अनुगायन नहीं है, अपितु आरम्भ से ही उनके मन में भक्त की चेतना रही है। यह भक्त-व्यक्तित्व रूढ़िवादी या प्रगति विरोधी हो यह जरूरी नहीं और इसी कारण उनके इन गीतों में भक्ति के अस्तित्व को पूर्णत नकारने की आवश्यकता नहीं है। (सन्दर्भ २५-९-९६) को निराला जयन्ती समारोह (जलेस) में डॉ. नामवर सिंह का वक्तव्य।) इन गीतों में प्रतिगामिता नहीं है। इस सन्दर्भ में नन्दकिशोर नवल का स्पष्टीकरण तर्कसंगत है। उनका कथन है--

'निराला के तीसरे चरण के काव्य से यह भ्रम हो सकता है कि उसमें वे पीछे की ओर लौट गये हैं–धर्म-भावना निराला में पहले भी थी, वह उनमें अन्त-अन्त तक बनी रही। उनके इस चरण के धार्मिक काव्य की विशेषता यह है कि वह हमें उद्विग्न करता है, आध्यात्मिक शान्ति नहीं प्रदान करता वह शान्ति निराला को कभी मिली भी नहीं, क्योंकि इस लोक से उन्होंने कभी मुँह नहीं मोड़ा, बल्कि इस लोक को अभाव एवं पीड़ा से मुक्त करने के लिए वे कभी सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों की ओर देखते रहे और कभी ईश्वर की ओर। उनकी यह व्याकुलता ही उनकी सबसे बड़ी शक्ति है। उन पर वेदान्त का गहर असर है, लेकिन अनेक बार उन्होंने इसका अतिक्रमण भी किया है यदि ऐसा न होता तो वे अन्त में यह न कहते कि नयी शक्ति, अनुरक्ति जगादो विकृत भाव से भक्ति भगा दो, उत्पादन के मार्ग लगा दो, साहित्यिक वैज्ञानिक के बल।' जो कवि इस लोक को माया समझेगा, वह कभी नहीं चाहेगा कि साहित्य और विज्ञान दोनों का उपयोग उत्पादन वृद्धि और फिर उससे होने वाले समाज-कल्याण के लिए हो। (निराला रचनावली-२, पृ. १८)। लेकिन निराला के इस युग के काव्य में कई शुद्ध भक्तिपरक गीत है, यह एक तथ्य है। 'राम' और 'देवी' की आराधना उनके कई गीतों में है। 'कामरूप, हरो काम/जपूँ नाम राम राम', 'राम के हुए तो बने काम/ सँवरे सारे धन, धान, धाम' तथा 'काम के छवि-धाम/शमन प्रशमन राम' जैसे गीतों में राम की सात्त्विक आराधना है, तो 'वंदन करूँ हे जननि तुम तप चरिता' जैसे अनेक गीतों में 'माँ' की वंदना और जीवन के उद्धार की प्रार्थना है। निराला के उत्तरकालीन गीत देशभक्ति, वैयक्तिक वेदना, दर्शनादि अनेक विषयों को समेटे हैं। ध्यातव्य यह है कि उनके इस काव्य में एक सापेक्ष अध्यात्म एवं भक्ति की उपस्थिति के समानान्तर सौन्दर्य के प्रति गहन आसक्ति है। 'गीतिका' के गीतों की उन्मद सौन्दर्य-पिपासा है, यहाँ तक आते-आते मर नहीं गयी है। समूचे विषाद-वृत्त को तोड़ कर वे गा उठते हैं :

फूटे हैं आमों से बौर
भौंर वन-वन टूटे है
होली मची ठौर-ठौर
सभी बन्धन छूटे हैं
फागुन रंग राग
बाग-बाग फाग मचा है
भर गए मोती के झाग,
जनों के मन लूटे हैं
माथे अबीर के लाल,
गाल सेंदुर के देखे,
आँखें हुई हैं गुलाल
गेरू के ढेले कूटे हैं

सौन्दर्य का यह आधार निराला के काव्य में शाश्वत है, जो नित्य रचना में ढलता रहा है। इस प्रेरणा को वह यों गाते हैं–

रचना की ऋजु बीन बनी तुम
ऋतु के नयन नवीन बनी तुम।

शृंगार निराला के उत्तर-काव्य में अपने मधुरतम रूप में विद्यमान रहा है। 'जूही की कली की 'उठ क्षमा माँगी नहीं, का टूटा सूत्र 'अर्चना के गीत में इस तरलता के साथ जुड़ता हैः

प्रिय के हाथ लगाये जागी
ऐसी में सो गयी अभागी
हरसिंगार के फूल झर गये
कनक रश्मि से द्वार भर गये
चिडियों के कल कण्ठ मर गए।
भस्म रमा कर चला विरागी

निराला द्वारा प्रकृतिक परिवेश में अंकित की गई सौन्दर्य-छवियाँ है अपनी शुभ्रता में अनुपम हैं। दो बिम्ब दर्शनीय हैंः

(क) खिरनी के पेड़ के तले.
बैठी थीं तुम भले-भले
आँखों से चिडियाँ उड़ती थीं
उससे कुल पिडियाँ जुड़ती थीं।
पहने साड़ी सफेद
भावों से गया भेद
लोगों ने रूप भी लिया गले- गले।

(ख) आँखें जहाँ प्रेमिका की थीं
पाँखें वहाँ तुम्हारी ही थीं
उधर सुधा के स्वर जो घोले,
निकले वे वाणी के तोले

रानी कल्याणी भी होले
ऐसी क्या आशाएँ की थीं।

निराला के काव्य में प्रकृति का व्यापक चित्रण है पर उनका प्रकृति-चित्रण प्रधानतः वस्तुपरक है। आरम्भ से ही वासन्ती बिम्ब उनके काव्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे है पर वसन्त के इस अग्रदूत के 'गीतिका' संग्रह के बाद 'अर्चना' तक वसन्त की लगभग अनुपस्थिति उस सहज उल्लास के अभाव की सूचक है जो 'सखि, वसंत आया' युग में रही है पर परवर्ती गीतों में वासन्ती उल्लास फिर लौटा है। साथ ही इस काल में प्रकृति की शारदीया छवियाँ और पावस-झंकृतियाँ भी विशेष रूप से अंकित हुई हैं। वर्षा, शरद् और वसन्त का चित्रण सौ से अधिक गीतों में हुआ है। ७ अगस्त १९४९ को एक ही दिन उन्होंने चार गीतों में वर्षा का अनुपम चित्रण किया है। निराला ने वर्षा की छवियों को चित्रित करते हुए इस काल में 'अयि सजल-जलद वदने', 'श्याम घटा घन घिर आयी', 'घुमड़-उमड-वन सावन आये', 'छाये बादल काले-काले', 'रस की बूँदे बरसो', 'यह गाढ़ तन आषाढ़ आया', 'सौरभ के रभस बरसो जीवन', 'धाये धाराधर धावन हों', 'श्याम गगन नव घन मँडलाये', 'बढ़-बढ़ कर बहती पुरवाई', 'आओ आओ वारिद' वन्दन' जैसे कितने ही गीत रचे हैं। आर्द्रा के घनों के छाने के साथ नैदाघ तपन का ढकना, नद-जल में आकुल मद का धावन जीवन पर जीवन का बल खाना, जैसे बिम्बों के साथ सावन की सर्जनात्मक उपलब्धियों को खेत-क्यार की इन छवियों के रूप में निराला ही चित्रित कर सकते थेः

हरी ज्वार की परियाँ झूमीं
अरहर अब चूमीं तब चूमीं
उड़द बदल कर फैली झूमीं
लिए मूँग ने पात

और झंझावातों से घिरा निराला का उत्तर-जीवन मानसिक उद्वेलनों के बावजूद एक गंभीर निधार को अनुभव कर रहा था। दिवस की सान्ध्य बेला में उदासी और अकेलेपन को झेलकर वे शरद की निरभ्र स्वच्छता से स्वयं को साधारणीकृत कर सके थे। इसीलिए उन्होंने इस युग में शरद की छवियों को अंकित करने वाले अद्भुत बिम्बों में ढले अनेक सुन्दर गीत रचे है। एक गीत देखिएः

ओस पड़ी, शरद आयी
हरसिंगार मुसकायी।
बादल ये बदल गये,
कटे छटे नये-नये,
नभ में आये. उनये
बन्द हुई पुरवाई।
जुही आन-बान भरी
चमेली जवान परी,
मालती खिली, निखरी
शीत हवा सरसायी।
नद के उद्‌गार घटे/
निकले तट कटे-छटे;
गीले औ कीच पटे
फैली हल चलवाई।

वर्षा हो या शरद, निराला कृषि के साथ ऋतुओं का सम्बन्ध निरन्तर जोड़ते रहे हैं। ऊपर के गीत का आरम्भ भले ही 'जवान परी चमेली' से हुआ हो पर समापन 'फैली हल चलवाई' से ही हुआ है। गन्ध की शुभ्रता को भी निराला ही पहचान सकते है थेः 'शरद की शुभ्र गन्ध फैली/ खुली ज्योत्स्ना की सित शैली'। इस गीत का समापन भी धान्य की समृद्धि में हुआ है- 'ज्वारों की लटकी है थैली'। जहाँ प्रकृति ने कृषिकर्म को समृद्धि दी है. वहीं उसके गतिचक्र में आलोडन के चिह्न भी हैं। निराला ने निस्संदेह जीवन में शिशिर के आतंक को खूब झेला होगा। शीत की मार कृषक पर कैसी पड़ती है, इसको उनसे अधिक कौन जानेगा। यह करुण चित्र इसका साक्षी हैः

गहरी विभावरी शीत की
कॉपी पाले से अहर की
डाली गुनागरी, शीत की..
मटर, चने कुछ काम न आये.
जौं गेहूँ लड़ते अरगाये
माचे पर किसान का कूकर
कुँकहाया, सिहरी शीत की.
सूख गया किसान एकाकी
रोया, रहा न लेखा बाकी
दुहरी डगर भरी, शीत की.

यह एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन का विषय हो सकता

है कि क्यों निराला के उत्तरकालीन गीतों में वर्षा-गीतों की संख्या सर्वाधिक है. पर यह भी सच है कि बासन्ती गीत भी उन्होंने इस काल में बहुत सुन्दर रचे हैं, भले ही उनकी संख्या वर्षा-गीतों से कम हो सौन्दर्य के प्रति उनकी सहज आसक्ति वासन्ती गीतों में फूटी है। यह बिम्ब-माला इसका प्रमाण हैः

अट नहीं रही है
आभा फागुन की तन
सट नहीं रही है।
कहीं साँस लेते हो.
घर-घर भर देते हो,
उड़ने को नम में तुम
पर-पर कर देते हो,
आँख हटाता हूँ तो
हट नहीं रही है।

फागुनी सौन्दर्य को निराला ने इस प्रकार भी व्यक्त किया हैः

कुंज-कुंज कोयल बोली है
स्वर की मादकता घोली है
गृह-वन जरा-मरण से जीकर
प्राणों का आसव पी पीकर
झरे पराग-गन्ध-मधु-शीकर
सुरभित पल्लव की चोली है।

निराला के गीतों में प्रकृति का यह उल्लसित नर्त्तन उनके उस समन्वित व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है, जो समस्त उथल-पुथल के बीच, प्रतिघातों को सहते हुए एक समासीन योगी का व्यक्तित्व है। सन् १९४९ से ६१ तक रचे उनके गीत भाषा के अद्भुत कौशल को प्रमाणित करते हैं। संगीत से इनकी संगति जितनी पुष्ट है, उतनी किसी और कवि के गीतों की नहीं। यद्यपि अप्रचलित शब्द और अटपटे समास इन गीतों को थोड़ा कलिष्ट बनाते हैं तथापि नारिकेल-वृत्ति के ये क्लासिकल गीत रस का अजस्र स्रोत हैं। यमक, अनुप्रास और पर्यायवक्रता का जैसा प्रयोग निराला के उत्तरकालीन गीतों में हुआ है, वैसा समूचे हिन्दी काव्य में अन्यत्र नहीं मिलता। ये गीत निराला के काव्य की चरम सिद्धि और उनका अन्तिम सोपान कहे जा सकते हैं। इससे पूर्व की यथार्थपरक कविताओं और गज़लों का दौर अपनी एक भूमिका का निर्वाह कर समाप्त हो जाता है पर वहाँ निराला का प्रतिक्रियापरक व्यक्तित्व जितना उभरा है, उतनी वह कवि की प्रकृत भूमि नहीं है। निराला का छन्द-विषयक दर्शन क्या था, वह भी इस चरम बिन्दु पर आकर स्पष्ट होता हैं। उन्होंने छन्द की कारा को तोड़ा है–'स्व-छन्द' होने के लिए! उच्छृंखलता उनका लक्ष्य नहीं था। 'अणिमा', 'कुकुरमुत्ता', 'बेला', 'नये पत्ते', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत कुंज' और 'सान्ध्य काकली' का अध्ययन भी यही प्रमाणित करता है कि उनकी चरम उपलब्धि का आधार बनने वाली जो रचनाएँ १९२९-३७ के बीच आई थीं. उनकी परम्परा का निर्वाह उनके उत्तरकालीन गीतों में हुआ है। जो आलोचक इस 'पाठ' को समझने में असमर्थ रहे हैं, केवल उन्हें ही निराला छन्द-ध्वसंक नजर आए हैं। शिल्प और काव्यरूप के साथ-साथ उनका विषयगत औदात्त्य भी इन्हीं गीतों में प्रतिफलित हुआ है। निराला निःसंदेह यथार्थ के सम्पृक्त रहकर भी उदात्त के कवि हैं। यह औदात्य उनके उत्तर-काव्य का प्राण-तत्त्व है।

©

सम्पर्कः ९०६, झेलम अपार्टमेंट, प्लॉट-८, सेक्टर-५, द्वारका, नई दिल्ली-११००७५. मोः ९८६८१४०४६९

स्वाधीनता आंदोलन और भारतीय साहित्य

प्रो. शिवप्रसाद शुक्ल

हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
इलाहबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज २११००२
E. Mail –shukla. shiv67@gmail.com
Mob.: 7016394609/9409214619
आराजी सं. १८ चकतेजऊ दीक्षित,गंगापुरमं

स्वाधीनता आंदोलन एवं भारतीय साहित्य के व्यावर्तक लक्षण सूक्ष्म सारगर्भित रोचक एवं विडंबनात्मक भी हैं। महात्मा गौतम बुद्ध तो तवारीखों में नामांकित हो गए परंतु तिब्बतियों को क्या मिला?ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी की कथा अलग ही है । बौद्ध धर्म ,जैन धर्म एवं सनातन में स्त्रियों की स्थिति पहले एवं आज भी काफी नाजुक है। यानी हमारा परिवार तो सामंती व्यवस्था का गढ़ है। हमारे शिक्षकों का दृष्टिकोण अलग प्रकार का है। इसीलिए प्रेमचंद ने कहा कि 'हमारे देश में योग्य शिक्षकों का अभाव है।'(प्रेरणा कहानी) कविकुलगुरु भी अपने ग्रंथों में राष्ट्र का वृहद सहज स्वाभाविक खाका खींचा है । 'कुमारसंभवम्' महाकाव्य की प्रथम पंक्ति

'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाहय स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।।'१

यानी आर्यावर्त या भारत के उत्तर में देवतुल्य हिमालय नाम का पर्वतों का राजा है, जो पूरब और पश्चिम के समुद्रों को छूता हुआ ऐसे स्थित है,जैसे पृथ्वी का मानदंड हो। वेद, उपनिषद, आरण्यक, पुराण,लौकिक संस्कृत के ग्रंथों का अध्ययन करते हैं तो व्यापक वृहद विशाल भूखंड मगध, मध्यदेश, द्रविड़देश, गांधार एवं पांचाल पंच महाजनपदों में विन्यस्त धर्म,अर्थ,काम, मोक्ष को देवनागरी लिपि एवं संस्कृत भाषा में विन्यस्त करता था।चाणक्य भी सभी प्रकार के मनुष्यों में से शिक्षक को तटस्थ,निस्पृह एवं पारदर्शक बनने की अपेक्षा रखता था तो कालिदास भी उत्तम शिक्षक को यों परिभाषित करते हैंः

'शिलष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था।संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां। धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एवं ।। २

अर्थात् किसी शिक्षक में तो स्वयं उत्तम गुण की पात्रता होती है और किसी शिक्षक को दूसरे को वह गुण सिखाने में प्रवीणता होती है।जिसमें दोनों ही बातें ठीक से हों ,वह शिक्षकों में सर्वश्रेष्ठ शिक्षक माना जाता है। यानी उस समय भी अच्छे शिक्षक नहीं थे। परशुराम एवं द्रोणाचार्य जैसे गुरुजनों की अच्छाई एवं बुराई से हम सब परिचित हैं। यानी महाभारत कराने में इन आचार्यों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। परिवार के सामंती व्यवहार के द्योतक भीष्म पितामह तो शिक्षक परशुराम एवं द्रोणाचार्य का मौन महाभारत करवाता है। इसीलिए शंकर शेष ने 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक लिखा।
महाभारत में भी इस बात का जिक्र यों है;
''
एकं विषरसोहन्ति, शस्त्रेणैकश्च वध्यते।
सराष्ट्र सप्रजं हन्ति, राजानं मंत्रविप्लवः।' ३

यानी विष प्रयोग करके एक व्यक्ति को मारा जा सकता है। शस्त्र प्रयोग से भी व्यक्ति नष्ट हो सकता है,लेकिन यदि शिक्षा, मनन और चिंतन में भ्रम और भ्रांति निर्माण की गई तो राष्ट्र, प्रजा और प्रजापालक सबका विनाश होगा।

यानी परिवार, समाज ,राजनेता, व्यापारी या अन्य धंधे करने वाले लालची होते हैं परंतु एक शिक्षक लालची होगा तो राष्ट्र का विनाश होगा या बुद्धिशाली को शिक्षक न बनाकर अन्य व्यसनी लोगों को शिक्षक बनाया गया तो महाभारत में इसके लिए अच्छा श्लोक हैः

' एकं हन्यात् न वा हन्यात् इषुर्मुमुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धिबुद्धिमता उत्सृष्टा हन्यात राष्ट्रं सराजकम्।।'४

यानी धनुर्धारी के तीर से एक व्यक्ति मर सकता है या मर भी नहीं सकता है। लेकिन बुद्धिमान की बुद्धि की युक्ति से राजा से लेकर संपूर्ण राष्ट्र का विनाश होता है। लॉर्ड मैकाले २ फरवरी १८३५ को इसीलिए कहते हैं ' मैंने भारतवर्ष के कोने - कोने में भ्रमण किया परंतु मुझे एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला है जो भिखारी हो,चोर हो ।ऐसी अपार संपदा,इतने उच्च नैतिक आदर्श व इतने प्रतिभाशाली व्यक्तियों वाले देश को हम कभी भी जीत नहीं पाएंगे।यदि भारत को गुलाम बनाना है तो इस देश के मेरुदंड अर्थात भारतीय,आध्यात्मिक व सांस्कृतिक परंपराओं को तोड़ना होगा। इसलिए मेरा सुझाव है कि इसकी शिक्षा पद्धति और संस्कृति को बर्बाद करना होगा, क्योंकि जब प्रत्येक भारतीय के मन में यह बात अच्छी तरह घर कर जाएगी कि जो भी विलायती है,वह उनके देशी से श्रेष्ठ है ,महान है, तब ये हीन भावना से ग्रस्त होकर अपनी गरिमा,अपनी अस्मिता, स्वदेशप्रेम व स्वाभिमान को खो देंगे। इनका मनोबल टूट ही जाएगा और हम सब वास्तव में अपने इरादे में कामयाब हो जाएंगे। तब सही मायने में यह मेरे गुलाम बने रहेंगे ' ५

यानी धार्मिक विषमवादिता के चलते छठीं शताब्दी के महाराजा हर्षवर्धन एवं पुलिकेसिन द्वितीय के बाद आर्यावर्त या भारत गुलाम बन गया और आज की स्थिति को देखते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू की किताब 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' पढ़ने के बाद अंसार हुसैन खाँ की किताब 'ंि्रग्म्दनेब्द ग्ह्र्ीि' या मेघनाद देसाई की किताब 'ंि्रग्म्दनेब्द ग्ह्र्ीि' पढ़ेंगे तो आर्यावर्त में सत्ता की हवस ने पंच महाजनपद को महाभारत काल में १६ राज्यों में विभक्त करवाया था तो १५ अगस्त १९४७ तक ५६५ राज्यों को १४ राज्यों में समेटा और आठवीं अनुसूची में १४ भाषाएं रखवायी थी। आज सत्ता की हवस के चलते २८ राज्य, ८केंद्रशासित प्रदेश एवं आठवीं अनुसूची में २२ भाषाएं हो गई हैं। यानी संस्कृत को छोड़कर हिंदुस्तानियों ने बड़ी भूल की जिसका फायदा मुगलों एवं अंग्रेजों ने खूब उठाया तथा आज भी अंग्रेजों के रक्तबीज उठा रहे हैं। ७वीं शताब्दी से लेकर १७६४ ई० तक मुगलों का शासन, १७६४ ई० से लेकर १५ अगस्त १९४७ ई० तक अंग्रेजों का शासन एवं १५ अगस्त १९४७ से लेकर आज तक के आर्यावर्त या भारतवर्ष के उतार-चढ़ाव को समझना टेढ़ी खीर है। फिलहाल मानगढ़, बिरसामुंडा आदिवासी विद्रोह के चलते अंग्रेजों ने 'ऊँर्ीत ष्ग्र्स ीू' बनाया। २ फरवरी १८३५ से अंग्रेजी माध्यम शिक्षा का प्रारंभ, १८५७ ई० में मेरठ विद्रोह के समय बम्बई ,कलकत्ता एवं मद्रास अंग्रेजी माध्यम के विश्वविद्यालय स्थापित करना। २ अक्टूबर १८६९ ई० में गांधी जी का जन्म और ३१ अक्टूबर १८७५ में सरदार पटेल का जन्म और १८८५ ई० भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना, १८८८ में गांधी का विदेश जाना, १८९१ ई० में वापस आना और १८९३ ई० में दक्षिण अफ्रीका जाना और जनवरी १९१५ ई० में भारत वापस आना, १९०५ में बंगाल का विभाजन एवं १९११ में विलय, १९०६ ई० मुस्लिम लीग की स्थापना, २३ सितंबर १८८७ ई० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय, मुस्लिम कॉलेज का अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बनने के साथ १९१६ में बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी एवं १९१५ ई० में हिंदू महासभा का गठन, १९१५ में प्रथम विश्व युद्ध १९१७ ई० में खेड़ा सत्याग्रह, चंपारण सत्याग्रह, १९१९ ई० में जलियावाला हत्याकांड,चौरी चौरा कांड, कॉकोरी कांड, गांधी जी का मौन बहुत कुछ कह जाता है। १९०९ ई० में गांधी द्वारा' हिंद स्वराज', मैथिलीशरण गुप्त द्वारा १९१२ ई० में 'भारत भारती' का लिखा जाना,चाफेकर बंधुओं के शहादत के बाद तिलक का गीता भाष्य 'अहिंसा परमोधर्मः,धर्महिंसा तथैव च' की परंपरा में चलने वाले राष्ट्रप्रेमी का निछावर, सरदार पटेल की सूझबूझ एवं अंबेदकर के अथक परिश्रम के बाद संविधान का निर्माण बहुत कुछ कह जाता है।

फ्रेंच इतिहासकार ओंगरे डी रिच्युकोर्ट 'ऊपे दग्त द ग्ह्र्ीि' में लिखते हैं कि 'भारत के संदर्भ में पाश्चात्य बुद्धिवादियों की सोच में कुछ गलती थी। उन्हीं की गलती भारतीय आज ढो रहे हैं। १९४७ ई० में अंग्रेजी शासन को भारत से उखाड़ फेंका गया। आज उनकी इस सोच को भी उखाड़कर फेंकने की आवश्यकता है। भारत में जो वैचारिक प्रदूषण है, उसका एकमात्र यही उपाय है। आज की शिक्षा के सामने सबसे बड़ी चुनौती है।' ६ंभारतीय शिक्षा माध्यम का स्वरूप बदलता रहा। यानी जब कोई संसाधन नहीं थे तब मेरे सामने भारत का प्राकृतिक मानचित्र खुला है और विंसेंट स्मिथ की पुस्तक में उपलब्ध प्राचीन भारत के नक्शे वाली

प्लेट। और मैं देश के भूगोल, विविधवर्णी प्राकृतिक बनावट तथा विभिन्न प्रदेशों के जन-जीवन में कालिदास की गहरी पैठ और उनके विशद एवं सम्यक भौगोलिक ज्ञान के सामने नतमस्तक हूँ। आज इतने सारे सूचना- स्रोत उपलब्ध होने के बावजूद तथाकथित यथार्थवादी कथाकृतियों में हम भूगोल के प्रति कितनी असावधानी बरतते हैं। और उस प्राचीन युग में एक काव्य रूपक लिखते हुए कालिदास का यक्ष बादल को उसके मार्ग का जैसे एक सर्वथा त्रुटिहीन और सटीक नक्शा थमा रहा हो ष्ठष्ठ..ष्ठ.और कुछ 'विद्वान' लेखक मानते हैं कि भारत का पहला नक्शा वारेन हेस्टिंग्स ने बनवाया (उदय प्रकाशः वारेन हेस्टिंग्स का सांड)। संस्कृत की अवहेलना का यही हश्र होना था। भारत का सांस्कृतिक पतन, आध्यात्मिक एवं सामाजिक पतन किसी भी देश से ज्यादा हुआ है। इसी संदर्भ में केन्या के लोकप्रिय लेखक थियोगो का मंतव्य है कि 'सांस्कृतिक बम सबसे बड़ा शस्त्र है जो दिन - प्रतिदिन छोड़ा और चलाया जाता है। सांस्कृतिक बम का प्रभाव लोगों के अपने नाम, भाषा, वातावरण, संघर्ष परंपरा, अपनी एकता, अपनी क्षमताओं और अंततः अपना अपनत्व सब कुछ समाप्त कर देता है। यह उन्हें ऐसी स्थिति में पहुंचा देता है, जहां उन्हें अपने अतीत की उपलब्धियां बंजर भूमि के सदृश्य दिखाई देती हैं और वे तथाकथित बंजर भूमि से दूरी बनाने को प्रेरित होते हैं।'६ जिस देश ने लिपि एवं भाषा में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। संस्कृत जैसी वैज्ञानिक भाषा का प्रस्तोता रहा, वहीं संघ लोक सेवा एवं २८ राज्य लोक सेवाओं की भाषानीति के चलते २८ राज्य शिक्षा परिषदों एवं राष्ट्रीय शैक्षिक एवं प्रशिक्षण परिषद की भाषा नीति एवं मध्यम में काफी अंतराल है। हालाँकि कालिदास ने लिखाः

'वागार्थिव सम्पृक्तौ वागर्थाप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ बंदे पार्वतीपरमेश्वरौ।'७

फिलहाल रघुवंशम के छठें सर्ग में कालिदास ने भारत के विभिन्न राज्यों के भूक्षेत्रों का प्राकृतिक सांस्कृतिक आख्यान अज इंदुमती के स्वयंवर के समय अन्तःपुर की प्रतिहारी सुनंदा के मारफत करवाया है। कहां आज का विवाहोत्सव और कहाँ इंदुमती के स्वयंवर में प्रवक्ता सुनंदा के श्लोक में एक-एक राज्य या प्रदेश के राजकुमार के सौंदर्य के साथ भौगोलिक सांस्कृतिक सौंदर्य प्राकृतिक सुषमा और परिदृश्य का हृदय ग्राही चित्र उभरता है और उसकी विविधता का हर घटक अपनी सूक्ष्मता और सौंदर्य में हमारे सामने मूर्तिमान हो उठता है। हो न हो, कालिदास ने अपने युग की दुरुहताओं के बावजूद देश का चतुर्दिक भ्रमण और हर प्रांत का अतिशय उदारता, ग्रहणशीलता और संवेदना की गहराई से निरीक्षण किया हो। उसका अर्जित उनके समस्त सृजन में अनुस्यूत है। विदर्भ के राजा भोज की बहन इंदुमती के स्वयंवर में अखिल भारतीय राजकुमार आमंत्रित हैं। इंदुमती हाथ में जयमाल लेकर प्रवेश करती है। प्रतिहारी सुनंदा राजवंशों के इतिहास में निष्णात एवं वाचाल भी है। इंदुमती को राजाओं का परिचय देने का उत्तरदायित्व उसी पर है। राजाओं के इसी परिचय के व्याज से कालिदास ने देश के विभिन्न भूभागों की भौगोलिक - प्राकृतिक छटा को कोलाज की तरह सजा दिया है। अवंतिका के राजकुमार का परिचय सुनंदा द्वारा यों दिया गयाः

'असौ महाकालनिकेतनस्य वसन्नदूरे किल चंद्रमौलेः।
तमिस्रपक्षेऽपि सह प्रियाभिर्ज्योत्स्नावनोतिविशति प्रदोषान्।।
अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु काच्चिन्मनसो रूचिस्ते।
सिप्रा तरंगानिलकम्पितासु विहर्तुमुदयानापरम्परासु।।८

यानी अवंतिराज का राजभवन महाकाल मंदिर में विद्यमान शिव के निकट ही है। शिव ने मस्तक पर चंद्रमा धारण कर रखा है। चंद्रमा के प्रकाश में अवंतिराज अपनी स्त्रियों के साथ हमेशा शुक्ल पक्ष का ही आनंद लेते हैं। केले के खंभे के समान जंघाओंवाली इंदुमती! क्या तुम अवंतिका के उन उद्यानों में विहार नहीं करना चाहोगी जिनमें दिन-रात क्षिप्रा नदी से आने वाला शीतल पवन हरहराया करता है। हालाँकि सुनन्दा चारणों के चोपड़ानामा(वंशावली) की तरह अनूप देश के राजकुमार का बड़ा मार्मिक खाका खींचा हैः

होर्माहिष्मतीव प्रनितम्ब कांचीम्।
प्रासाद जालैर्जलवोणिरम्यां रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कानः । ९

यानी इंदुमती को सुनंदा बता रही है कि यदि तुम राजभवन के गवाक्षों से माहिष्मती नगरी के चारों ओर करधनी - जैसी लिपटी, सुंदर लहरों वाली नर्मदा का मनोहारी दृश्य देखना चाहो तो अनूपदेश के इन महाबाहु राजा की अंकलक्ष्मी बन जाओ। सुनंदा केवल हर तरह का वर्णन कर रही है परंतु वरण तो इंदुमती को करना है। मथुरा के राजकुमार का भी वर्णन काफी मनोरम हैः

'यस्यावरोधस्तनचंदनानां प्रक्षालनाद्वारिविहारकाले।
कलिंदकन्या मथुरां गतापि गंगोर्मिसंसक्तजलेव भाति।।

संभाव्यभर्तारमंमुयुवानं मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये।
वृंदावने चैत्ररयादनूने निर्विश्यतां सुंदरि यौवनश्री।।' १०

ये मथुरा नरेश सुषेण जब अपनी रानियों के साथ यमुना में जल-विहार करते हैं, रानियों के स्तन पर लिपा चंदन जल में धुलकर नदी में बहने लगता है। उस समय यमुना का रंग देखकर लगता है जैसे गंगा की लहरों के साथ यमुना का संगम वहीं हो गया होष्ठष्ठ युवा सुंदरी इंदुमती, इन युवक नरेश को पति बनाकर कुबेर के चैत्ररथ नामक उद्यान से भी अधिक सुंदर वृंदावन में कोमल पत्तों और फूलों की शय्या पर आसीन हुआ करना। सुनंदा का ऐंद्रियक, वैचारिक एवं भावबोध समग्र आबोहवा के साथ भौगोलिकता एवं सौंदर्य का वर्णन करना है। इसी क्रम में कलिंग देश के राजकुमार का खाका खींचाः

'यमात्मनः सद् मनि संनिकृष्टो मंद्रध्वनित्याजितयान तूर्यः।
प्रासादवातायनदृश्यवीचिः प्रबोधयत्यर्णव एव सुप्तम ।।
अनेन सार्धं विहराम्बुराशेस्तीरेषु ताली वनमर्मरेषु।
द्वीपान्तरानीतलवंग पुष्पैरप्राकृतस्वेदलवा मरुदिभः।'११

इन कलिंग नरेश हेमांगद के राजभवन के ठीक नीचे समुद्र हिलोरे लेता है। राजभवन की खिड़कियों से समुद्र की लहरें साफ दिखती हैं। जब ये राजभवन में सोते हैं, समुद्र ही अपने नगाड़े के स्वर से भी अधिक गंभीर गर्जन से प्रातः इन्हें जगाया करता है। इनके साथ विवाह करके समुद्र के उन तटों पर विचरण करना जहाँ दिन-रात ताड़ के पत्तों की खड़खड़ाहट सुनाई पड़ती है। विचरण करते समय जब भी तुम्हें पसीना होगा, पूर्वी द्वीपों से आने वाली, लौंग के फूलों की सुगंध से भरी हवा उसे सुखा देगी। कहां स्वयंवर और कहां भौगोलिक, प्राकृतिक सौंदर्य का निदर्शन ही भारतीयता
'अनेन पाणौ विधिवद्गृहीते महाकुलीनेन महीवगुर्वी
रानानुविद्धर्णवमेखलाया दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः।
ताम्बूलवल्लीपरिणद्ध पूगास्वेलालतालिंगितचंदनासु।
तमालयत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु।।'१२

ये पांड्य नरेश बड़े ही कुलीन हैं और तुम हो पृथ्वी की तरह गंभीर। इनके साथ विधि पूर्वक विवाह करके तुम उस रत्नखचित दक्षिण दिशा की सपत्नी बन जाओ जिसकी करधनी स्वयं रत्नों से भरा समुद्र है। यदि तुम मलय प्रांत की उन घाटियों में विचरण करना चाहती हो, जिनमें पान की बेलों से ढके सुपारी और इलायची की बेलों से लिपटे चंदन के पेड़ हैं और जगह-जगह ताड़ के पत्ते बिखरे हुए हैं, तो तुम इन्हीं से विवाह कर लो। यानी जहां प्रेम में भी भारतीयता का ध्यान रखा जाता हो वही भारतीय साहित्य है। भरत से लेकर राजपंडित जगन्नाथ तक, उदयनाचार्य, भास्कराचार्य, कोक्कन, वात्स्यायन, पिंगल, आर्यभट्ट, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, चरक, सुश्रुत की परंपरा ही भारतीयता का द्योतक है। जयशंकर प्रसाद का समग्र साहित्य आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षा से ओत-प्रोत है। इसी क्रम में कार्णेलिया का गीत दृष्टव्य हैः

'अरुण यह मधुमय देश हमारा'
xxx xx
'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती' १३

१९२७ ई० में प्रकाशित चाँद पत्रिका का दलित विशेषांक भी बहुत कुछ कह जाता है। सिमोन द बुआ की ' ऊप एम्दह् र्ऐ' के पहले महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कड़ियाँ' किताब भी चाँद पत्रिका के संपादकीय हैं। गांधी - अंबेडकर नोक झोंक जग जाहिर है। मदन मोहन मालवीय एवं डॉक्टर मुंजे के विशेष प्रयत्न से अंबेडकर दलितों ,आदिवासियों के आरक्षण को १० वर्ष तक की सीमा में तैयार हो गए। गाँधी अगर स्वाधीनता आंदोलन में न आए होते तो क्या सरदार पटेल आते? गाँधी की बदौलत अंबेडकर, नेताजी एवं समाजवादी आचार्य नरेंद्र देव, राम मनोहर लोहिया आदि ने स्वाधीनता आंदोलन को मिल जुलकर लड़ा। बिपिन चंद्र पाल की किताब 'प्ह्ल,'ूैदर्हैतेस्‍प्ह्ल्ैूह् ज्दग्हू' १९१३, वासुदेव शरण अग्रवाल की किताब 'भारत एक राष्ट्र', अरविंद की किताब 'सेन्थीसिस ऑफ योग' बलराज मधोक की किताब 'Rational of Hindu state' , सी.पी.मिसीकर की किताब 'Concept of the Rashtra' M.N. राय के रेडिकल मानववाद को पढ़ने के बाद दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद संबंधी वक्तव्य बम्बई में २२ अप्रैल से २५ अप्रैल १९६५ को पढ़ेंगे तो बड़ी महत्वपूर्ण बातें उन्होंने कही थी 'हम राज्य और सरकार के प्रतिदिन इतने आश्रित होते जा रहे हैं कि कल को अपने मुँह निवाला डालने के लिए भी सरकार से अपेक्षा करेंगे।' एकात्म मानववाद के अंतर्गत विकास के केंद्र में मानव, व्यक्तिवाद का खंडन, सांस्कृतिक चरित्र, समेकित दृष्टिकोण, धर्मराज्य एवं अंत्योदय आदि पर विशेष जोर

दिया था। रोस्को पाउंड ने पहली बार Social Engeenering (सामाजिक अभियंत्रण) का प्रयोग किया यानी अब तीर तलवार, गोला बारूद, बम, परमाणु बम के बजाय लोग सामाजिक जातीय गणित वाले लोग ही लोकतंत्र में विजयी होंगे। कैथरिन मेयो की किताब 'Mother india' या के. एस. लाल की किताब 'Growth of schedule Tribes and castes in medieval India' पढ़ने पर तरह-तरह के सवाल उठते हैं।

एक तरफ डॉ० वी.एस. गुहा की किताब 'Out line of the Racial Anthology of India' में छः नस्लों का जिक्र भी काफी रोचक है - प्रथम नीग्रो, द्वितीय प्रोटो - आस्ट्रोलाइड, तृतीय - मंगोलाइड, चतुर्थ - मेडिटरेनियन, पंचम - पश्चिमी ब्रेसीसेफल एवं छठें नॉर्डिक (आर्य)। दूसरी तरफ जॉर्ज ग्रियर्सन ने भारतीय भाषा सर्वेक्षण किताब में चार वर्ग में प्रथम - आस्ट्रिक (कोलमुंडा) द्वितीयः तिब्बती - चीनी या चीनी तिब्बतन, तृतीय - द्रविड़ियन, चतुर्थ- आर्यन विभाजन किए हैं। कई प्रकार की मुश्किलों से राष्ट्र गुजर रहा है। मार्क्स गारवे ने 'बैक टू अफ्रीका' का नारा दिया तथा १९१४ ई० में 'यूनिवर्सल नीग्रो इंप्रूवमेंट एसोसियेशन' बनाया जिसके चलते 'National Association for the advancement of coloured people' उठ खड़ा हुआ जिसका नेतृत्व ब्लैक पैंथर पार्टी ने किया। हब्शी अफ्रीकी मुस्लिम नेता एलिजा मोहम्मद, मास्कम एक्स एवं लुई फर्राखान आदि 'Nation of Islam' बनाकर अलगाववाद को चरितार्थ कर रहे हैं तो नेहरू के मित्र पादरी वेरियर एलविन 'New Deal for tribal India' लिखकर झारखंड को साकार ही कर दिया। श्रीप्रकाश मिश्र की किताब 'खुदा बख्श आपरेशन' के माध्यम से खालिस्तान को समझना होगा।

बीच-बीच में रचनाकारों ने बहुत लिखकर शासकों को जगाने की कोशिश की है। फिलहाल प्रेमचंद के शब्दों में 'यह जमाना चाटुकारिता और सलामी का है तुम विद्या के सागर बने बैठे रहो, कोई सेंत भी ना पूछेग ' तुलसी ने भी लिखा 'प्रभुता पाहिं काहि मद नाही।' धूमिल की कविता भी बहुत कुछ बयाँ करती हैः 'मैं रोज देखता हूं कि व्यवस्था की मशीन का / एक पुर्जा गरम होकर/ अलग छिटक गया है और / ठंडा होते ही फिर कुर्सी से चिपक गया है / उसमें न हया है / न दया है / नहीं अपना कोई हमदर्द / यहाँ नहीं है / मैंने एक-एक को / परख लिया है / मैंने हरेक को आवाज दी है / हरेक का दरवाजा खटखटाया है / ×××× वे सब तिजोरियों के / दुभाषिये हैं / वे वकील हैं / वैज्ञानिक हैं / अध्यापक हैं / नेता हैं / दार्शनिक है / यानि कि / कानून की भाषा बोलता हुआ / अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है ।' १४

डिजिटल इंडिया बनाम पोंगा पंडित भारत बनाम भ्रष्टाचार के युग में फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ की नज़्म 'जिस देस में माओं बहनों को / अगयार उठाकर ले जाएं / जिस देश के कातिल गुंडो को / अशराफ छुड़ाकर ले जाएं / जिस देश की कोर्ट कचहरी में / इंसाफ टकों में बिकता हो / जिस देश का मुंशी, काजी भी / मुजरिम से पूछ के लिखता हो / जिस देश में जान के रखवाले / खुद जान लें मासूमों की / जिस देश में हाकिम जालिम हों / सिसकी ना सुने मजबूरों की / जिस देस के आदिल बहरें हों / आहें न सुने मासूमों की।' 14A

आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षाओं पर तरह-तरह के बादल मंडरा रहे हैं। कमलेश्वर ने इसीलिए 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास लिखा । प्रतिभा राय एवं कृष्णदेव मिश्र ने 'द्रौपदी' नाम से दो उपन्यास लिखें हैं । लोकतंत्र बौद्धिक, राजनीतिक, धार्मिक माफियाओं के हाथ गिरवी होता जा रहा है । गिरीश पांडे लिखते हैं 'अधिकांश थके, बिके या हुए रहजन / चलो अब नये सच्चे संवेदनशील नेता तलाशें / ' उमाशंकर जोशी के 'ढेंड नो ढेंड़ भंगी' या संजीव के 'फाँस' या गीताश्री के 'अम्बपाली' धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' रेणु के 'मैला आँचल' चुनीलाल मडिया के 'लीलुड़ी धरती' हरीशमंगलम के 'तिराड़' मन्नू भंडारी के 'महाभोज' ' ,आपका बंटी' राजी सेठ के 'सदियों से' प्रभा खेतान के 'अन्या से अनन्या' अलका सरावगी के 'कलिकथाः बाया बाइपास' 'एक ब्रेक के बाद' बिंदु भट्ट के 'मीरा याज्ञिककी डायरी' केशुभाई देसाई के 'उधियो' उदय प्रकाश के 'मोहनदास' 'मैंगोसिल' 'पालगोमरा का स्कूटर' मृदुला गर्ग के 'चितकोबरा', सुरेंद्र वर्मा के 'मुझे चाँद चाहिए' 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण' एवं श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी' 'विश्रामपुर का संत' पढ़ने पर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की कलई खोलती है। इस बात को गोरख पांडे की कविता के माध्यम से देखते हैं : 'राजा बोला रात है / रानी बोली रात है / मंत्री बोला रात है / संतरी बोला रात है / सबने बोला रात है / यह सुबह-सुबह की बात है।'

केदारनाथ अग्रवाल भी सधी सार्थक काव्यभाषा में बहुत कुछ कह जाते हैंः 'मैं उसे खोजता हूं / जो आदमी है / और / अब भी आदमी है / तबाह होकर भी आदमी है /

चरित्र पर खड़ा / देवदार की तरह बड़ा।'१५ (मैं उसे खोजता हूँ) स्वाधीनता आंदोलन के बलिदानियों, सरदार पटेल की सूझ-बूझ, अम्बेदकर की मेहनत स्वाधीनता आंदोलनों के साहित्यकारों की तरह राष्ट्रचिंतन एवं साहित्य पर जोर दिया जा रहा है या नहीं, कह पाना मुश्किल है। फिलहाल अष्टभुजा शुक्ल की काव्यभाषा दृष्टव्य है : 'भारत घोड़े पर सवार है / एक हाथ में पेपसी कोला / दूजे में कंडोम / तीजे में रमपुरिया चाकू / चौथे में हरिओम / ××××× हम भी खा लें / तुम भी खा लो / थोड़ा-थोड़ा देश बचा लें / जब तक जिए झोपड़ी वाले / अपनी-अपनी शौंध उठा लें।'१६

अस्मिता मूलक विमर्श के युग में स्त्रियों की हालत से हम सब परिचित हैं। विष्णु नागर की कविता 'आलोचक' दृष्टव्य है : 'पत्नी से बड़ा कोई आलोचक नहीं होता / उसके आगे नामवर सिंह तो क्या / रामचंद्र शुक्ल भी पानी भरते हैं / अब ये इनका सौभाग्य है / कि पत्नियों के ग्रंथ मौखिक होते हैं, कहीं छपते नहीं।' भारतेंदु की 'अंधेर नगरी' 'भारत दुर्दशा' मधु कांकरिया का 'सलाम आखिरी' 'सेज पर संस्कृति' 'हम यहां थे' शंकर शेष का 'एक और द्रोणाचार्य' प्रेमचंद का 'गबन' 'रंगभूमि' आदि की व्यथा किसी से छिपी नहीं है। स्वाधीनता आंदोलन और भारतीय साहित्य की विडंबना को 'छः बीघा जमीन' फकीर मोहन सेनापति ,'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' 'मैं बोरिशाइल्ला' महुआ माजी, 'गायब होता देश' 'ग्लोबल ग्राम का देवता' रणेन्द्र में देख सकते हैं।

सन्दर्भ

१- कालिदास : कुमारसंभवम् :१.१
२- कालिदास : मालविकाग्निमित्रम् :१.१६
३- महाभारत :श्लोक
४ - महाभारत : श्लोक
५- लार्ड मैकाले : वक्तव्य
ं६ - ओंगरे डी रिच्यूकोर्ट : ऊप`दल्त द ्घ्र्हं
६- थियोगो : केन्या के लेखक
७ - कालिदास : रघुवंशम्
८ -कालिदास :रघुवंशम् :६:३४-३५
९ - कालिदास : रघुवंशम् : ६:४३
१० -कालिदास :रघुवंशम् : ६:४८,५०
११- कालिदास : रघुवंशम्: ६:५६-५७
१२- कालिदास : रघुवंशम् : ६:६३-६४
१३- जयशंकर प्रसाद : कविता
१४- धूमिल : कविता
१४A - फैज अहमद फैज : नज़्म
१५- केदारनाथ अग्रवाल : कविता
१६- अष्टभुजा शुक्ल : कविता भारत घोड़े पर सवार है।

मन्नू भंडारी का सृजनात्मक संसारः स्त्री विमर्श के आईने में

(कहानियों के संदर्भ में)

रामकली सराफ

प्रोफेसर(पूर्व)
बी एच यू
वाराणसी

Mob.: 9389342165

स्त्रियों की भावनात्मक मनोवैज्ञानिक, नैतिक, भाषिक और अस्मिता से सम्बद्ध समस्याओं, पितृसत्तात्मक समाज में पल रहे स्त्री-सम्बन्धी पूर्वाग्रहों से मुक्ति को मन्नू भंडारी ने कतई असंभव नहीं माना। उनकी सृजनात्मक चेतना इतनी जीवंत रही कि परिवेशगत सच्चाईयों का अक्स उतार दें, आईना लगे। आईने में उभरते यथार्थ को देखने का अभ्यास, त्रासद तथ्यों का खुलासा, पुरुषोचित दंभ, सामंती-अर्द्धसामंती सोच से परे मनुष्यता के औदात्य से दीप्त अन्तर्मन में पैठती उनकी रचनाशीलता अन्तर्विरोधों की महीन पड़ताल करती, लेखन की प्रखरता से पगी सहज ही पाठकीय चेतना का हिस्सा बन जाती है। उनका सीधा-सहज-सरल भाषाई सर्जनात्मक बोध अपने में बाँध लेता है। जीवन व समाज की जटिलताओं को सहज ही अपनी रचनात्मकता का अंग बना प्रस्तुत करना उनका वैशिष्ट्य रहा है, जहाँ वे सीधे अन्तस् में उतरती जाएँ। इस प्रकार यह सही है कि मन्नू भंडारी के सृजनात्मक संसार में स्त्री स्वातंत्र्य-विमर्श का बड़बोलापन नहीं है। वे आज की तरह स्त्री-विमर्श की झंडाबरदार नहीं रही हैं। आज स्त्री-विमर्श पर जो उबाऊ लेख लिखे जा रहे हैं, पुस्तकें लिखी जा रही हैं, उनसे बहुत दूर मन्नू भंडारी के लेखन में आए स्त्री-पात्र स्त्री मुक्ति के सवालों से सीधे-सीधे न टकराकर अपने समय और समाज के अन्तर्विरोधों के प्रति बराबर सजग रहकर संघर्षशील रहे हैं। प्रतिशोध और क्षमा, संकीर्णता और उदारता, क्षुद्रता व महानता को एक ही समय में, एक ही व्यक्ति पूरी जटिलता व अन्तर्विरोधों के साथ धारण कर सकता है यह मन्नू भंडारी के यहाँ संभव है। उनके यहाँ व्यक्ति को महत्व देने की वजह से जबर्दस्ती बंधन निभाने की अपरिहार्यता समाप्त सी दीखने लगती है। स्त्री-पात्र सताए हुए पात्र नहीं हैं कि हमें उनके अधिकारों की बात करनी है। वे यथास्थितिवादी या नियतिवादी न होकर नियति को हर क्षण चुनौती देते, निरन्तर चुनौतियों को प्रस्तुत करते खास पहचान के साथ प्रत्यक्ष हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के हथकण्डों और पैंतरेबाजी को समझती लेखिका 'विद्रोही' तो नहीं होतीं वरन् उनका अस्वीकार का, निषेध का भाव विद्रोह की भूमि अवश्य निर्मित करता है। अपने स्त्री-पातों को सम्पन्न-अर्थवान जिन्दगी जीने हेतु अवसर देकर वे बराबर संघर्ष को धार देती अपने लेखन में उपस्थित रही हैं। अतः पुरुषोचित आक्रामकता, निर्ममता के विरुद्ध सीधे-सीधे प्रतिरोध-भाव को न जीते हुए एक गतिशील-संवेदनशील स्त्री की निषेध-वृत्ति सामने आती है जो अनेकशः अपनी जड़ों से बद्ध हो उद्वेलित कर जाती है।

दरअसल मन्नू भंडारी की संवेदनाएँ, अनुभूतियाँ, उनका दृष्टिकोण पुंसवादी बौद्धिक तटस्थ दृष्टि से भिन्न उनका स्वतंर्त व्यक्तित्व रहा है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने उन्हें आत्मनिर्भर व सृजनात्मक रूप दिया। अपनी संयत, संतुलित व सांकेतिक दृष्टि को उन्होंने सृजनात्मकता में पिरोया। स्त्री की अस्मिता, आकांक्षाओं, इच्छाओं व जरूरतों, अनुभवों एवं मनःस्थितियों का बारीक अंकन उनके लेखन की खासियत रही है। विचारों एवं संस्कारों के द्वन्द्व को जीतीं स्त्रियाँ एक-एक कहानी को जीवंत-अर्थवान बनातीं खुद की राह पर चलने का माद्दा लिए, संवेदनात्मक गहराई

से युक्त एक सच्चा, ईमानदार, बेबाक तेवर लिए उपस्थित रही हैं। साधारण में असाधारण, सरलता में जटिलता पैदा करते हुए मन्नू भंडारी की जीवन- दृष्टि, उनका कलात्मक बोध कहीं सांकेतिक तो कहीं व्यंग्यात्मक तेवरों से सम्बद्ध हो कई-कई ध्वनियों और अर्थों को अपने में समोए अत्यन्त सहजता से पाठकों के अन्तस् का हिस्सा बन जाता है। बहुत आत्मनियंतर्ण व सूझ-बूझ के साथ रचनारत हुई लेखिका के स्त्री-पात्र जिस तरह से कसमसाते, भीतर ही भीतर टूटते-बिखरते झुलसते स्वयं हेतु मुकम्मल स्पेस काढ़ते, सामंजस्य भाव को 'बैलेंस' को बनाते-प्रतिकार-प्रतिरोध के बीच भी चरित्रों को जो उठान मिला है, जिस तरह के निष्कर्ष सामने आए वे अद्भुद्, चमत्कृत कर देने वाले हैं। जागरूक हुई स्त्रियाँ घुटन व तार्सद स्थितियों को झेलतीं, जीतीं जिस कटुता, तनाव से गुजरती हैं उनके मनोमस्तिष्क में जन्मीं प्रतिक्रिया ज्यादातर वैचारिक प्रतिरोध लिए उपस्थित रही हैं।

दरअसल मन्नू भंडारी के यहाँ निरंकुश व अशालीन हुए बगैर ही विद्रोही तेवर रचनाशीलता का अभिन्न अंग बन सामने आता है। आज के स्त्री-विमर्श के अन्तर्गत पैठे जोश-खरोश से परे मन्नू भंडारी के पात्र संवेदनशील बने विचलित होती मनःस्थितियों का पूरी ईमानदारी से खुलासा करते हैं, जहाँ बेबाकी है, तर्क है, गठाव है। उनके पात्र वायवीय उच्छृंखलता से दूर स्वाभिमान और आत्मनिर्भरता से लबरेज आत्मचेतना व आत्माभिमान से भरे स्वावलम्बन को जीते इकहरी सोच की जगह द्वन्द्वों से भरपूर अनुभूतिगत गहराई लिए संघर्षशील बने सामने आते हैं। सच ही आधुनिकता के आईने में लेखिका का जो अक्स उभरकर आता है, वह मूल्यगत बोधों व सम्बन्धों के बीच ठहरे विघटन-टूटन व जुड़ाव को दर्शाता है। वस्तुतः उनकी सृजनधर्मिता स्त्री-जीवन की छटपटाहट उसकी कशमकश व असमंजस का एक स्वतंत्र व ईमानदार दस्तावेज है। यह अलग बात है कि भिन्न-भिन्न परिस्थितियों तथा मनःस्थितियों में अलग-अलग तरीके से जूझती स्त्रियाँ कहीं स्वीकार-अस्वीकार, नैतिकता और अनैतिकता, प्रेम और विवाह तो कहीं परम्पराग्रस्तता व आधुनिकता के बीच द्वन्द्वग्रस्त बनीं दिखायी देती हैं। उनके स्त्री-पात्र परम्पराओं के बीच स्वतंत्र हुए से मुक्त उड़ान तो भरना चाहते हैं, पर वे प्रायः अपनी जड़ों से जुटे रहकर ही सामने आते हैं। हालांकि वे आर्थिक रूप से सबल हैं, नौकरीपेशा स्त्रियाँ हैं। 'एक इंच मुस्कान' की रंजना और अमला, 'आपका बंटी' की शकुन, 'ऊँचाई' की शिवानी, 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' की दर्शना, 'यही सच है' की दीपा, 'घुटन' की प्रतिमा, 'बंद दराजों के साथ' की मंजरी, 'कील और कसक' की रानी, 'क्षय' की कुन्ती, 'मजबूरी' की बूढ़ी अम्मा ये अपने में उलझे हुए कुंठित से पात्र हैं। इनमें से कुछ स्त्रियों में प्रतिद्वन्द्विता का भाव भी है। पर इस होड़ में अपनी भावनाओं-संवेदनाओं की अभिव्यक्ति से वे अछूती नहीं रह पायीं। अपने नारीत्व भाव को, प्रेम और ममत्व को पीछे नहीं छोड़ पातीं। उनकी वैयक्तिक नैतिकता परिस्थितिगत मानसिक बोझ से मुक्त करने की ओर मुड़ती है, जिसके परिणामस्वरूप वैयक्तिक आवश्यकता के वशीभूत हो रूढ़ संस्कारगत नैतिकता के खोल को उतार देती है। उलझी मानसिकता वाले चरित्रों के जिजीविषा-भाव व उनके यथार्थ-बोध के प्रमाणिक अंकन हेतु नयी स्थितियों के बीच लेखिका ने स्वयं को प्रस्तुत किया है।

निश्चित ही मन्नू भंडारी के यहाँ आधुनिकताबोध से पगी स्त्री का सच कहीं तो चहुँदिक पसरी सामाजिक चेतना का अंश बन तो कहीं दंश बन उनकी रचनाशीलता का हिस्सा बनता रहा है। अपने वजूद के अधूरेपन को जीती हुई स्त्रियाँ चाहे जो रूप लिए हुए नई-नई भूमिकाओं में उतरती रहीं हों, पर उनकी चारितिर्क गढ़न्त कहीं भी पतिव्रता, आदर्श व शालीन पत्नी बनने की शिक्षा नहीं देती। उनकी चुप्पी, चीख, अन्तस् में पिघली पीड़ा, उनका विरोध-भाव सीधे-सीधे रचनात्मकता का अंग बन हमारी अनुभूति के बीच पसर जाता है।

दरअसल उनके स्त्री-पात्र पितृसत्ता को आँख तो दिखाते हैं, लेकिन सीधे-सीधे विरोध में न उतरकर वे गहरे संघर्ष से गुजरते हुए उससे मुक्ति की राह तलाशते उलझे अपने प्रति बरते जाने वाले अन्याय को अस्वीकृत करते गरिमाबोध से सम्पृक्त जुझारू संघर्षशील हैं। यही वजह है उनके रचनात्मकता में ढले स्त्री-पात्र, रोने-धोने वाले, मन में करुणा जगाने वाले न होकर तार्किक, सोचते-बूझते, जीवंत पात्र हैं। हालांकि जीवन का अधूरापन, स्वप्नों के टूटे पंख लिए लेखिका जीवन में नाना चुनौतियों के मध्य कभी शांत हो बेचैन मनःस्थिति को जीती रहीं कभी विरोध-भाव दर्शाती उपस्थित रहीं। वहीं उनके लेखन में

भी यथार्थ कई-कई सिम्तों में व्यक्त हुआ। स्पष्ट ढंग से सीधे-सीधे कही गयी बातें भी चुभन लिए गहरे ढंग से कचोटती उपस्थित होती हैं। लेखिका के तीक्ष्ण व्यंग्यात्मक तेवर उनकी बाद की कहानियों में ज्यादा सशक्त ढंग से उभरे हैं। लेखिका अविरल गतिशील रहीं, रूढ़ परंपराओं के आच्छादन को झिरझिरा करतीं, उसके केंचुल को उतारतीं प्रत्यक्ष होती हैं। जीवन की निरंतर शांत बहती नदी-बहता लेखन मन्नू भंडारी को खास पहचान देता है। उनके यहाँ स्वयं की संभाल करते विपरीत स्थितियों में भी प्रमाणिक-ईमानदार ज्वलंत-जीवंत प्रश्नों से रूबरू चरित्र ही शीर्ष पर रहे हैं, जहाँ मनसूबों की रफ्तार रूकती नहीं। स्वयं लेखिका की संकल्पशक्ति, उनकी सौंदर्यात्मक दृष्टि की सादगी यथार्थ का खुलासा करती खामोशी से पीड़ा को जज्ब करती नीडर बनी निर्णय लेती सामने आती है तो कहीं स्वयं के अस्तित्व को आगे करके द्वन्द्वबोध को जीतीं उपस्थित रहती हैं। चाहे वह 'नई नौकरी' की रमा, 'तिर्शंकु' की मम्मी, 'तीसरा आदमी' की शकुन हो, यहाँ कहानी स्वयं बोलती दिखायी देती है, वहाँ किसी भी तरह की बहसबाजी नहीं है। ऐसी स्थितियाँ निर्मित होती हैं कि परिवेश जीवंत हो उठता है, घटनाएँ बोलती हुई सी लगती हैं। इस प्रकार ये स्त्री-पात्र जिन्दगी की असमंजस में जीते नयी सामाजिक पहचान हेतु रस्साकशी करते, द्वन्द्व की स्थिति में सीधे-सीधे विद्रोह तो नहीं करते पर अपने तई परिस्थितियों से लड़कर सुचारू रास्ता तो काढ़ ही लेते हैं। रिश्ते की अर्थहीनता को भी चुनौती के रूप में लेती स्त्रियाँ निडरतापूर्वक घर, परिवार, विवाह के प्रति अपने समर्थ-ईमानदार नजरिए को निर्णय- अनिर्णय की स्थिति में भी स्थिर सी बनीं अपने भीतर की उद्बुद्ध चेतना लिए अपने स्वातंत्र्य बोध को ही पुष्ट करती हैं। चरित्रों की व्यथा- विडम्बनात्मक विसंगतियाँ व विश्वासबोध की सीधी-सहज पारदर्शी अभिव्यक्ति अपने में बांधती है।

ये तमाम स्त्रियाँ आधुनिक भावबोध से युक्त एक नये परिभाषित, तर्कसंगत और यथार्थवादी सच के सम्मुख खड़ीं, स्वयं बेचैनगी को झेलती असमंजस और संशय के मध्य अनेक भाव-लहरियों और संवेगों की सहेज करतीं स्वयं से ही लड़तीं-जूझतीं सच को शब्दों में बांधती, संवादों की लड़ियों में पिरोती प्रत्यक्ष हैं। लेखिका ने अत्यन्त सहज ढंग से चरित्रों के मूड्स को प्रत्यक्ष कर दिया है। जीवन की अतिसामान्य, स्वाभाविक और अपरिहार्य स्थितियों के बीच बदलते स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की मासूमियत व दरकन को संश्लिष्टता के साथ उकेरा है। चर्चित कहानी 'यही सच है' जिस पर 'रजनीगंधा' नाम की सशक्त फिल्म भी बनी। दो प्रेमियों को लेकर जन्में स्त्री-मन के द्वन्द्व को दीपा के माध्यम से द्वन्द्वग्रस्त मन के उतार-चढ़ाव को दिखाया है। पाठक हेतु यह निर्णय लेना कठिन हो जाता है कि वस्तुतः सच क्या है? अलग-अलग जीवन-पद्धतियों के बीच जन्में भिन्न-भिन्न व्यवहार व मन में जन्मीं 'यही सच हैं' की मान्यता क्या सबके मन का संस्पर्श कर पाएगी? क्या इस भरोसे पाठक निज के जीवन की गहराई नाप पायेगा? कहीं क्षण के सुख से अधिक एक प्रकार का मानसिक ताप व संतुलन का भाव रहता है। दीपा के उहापोह से पाठक यह तो महसूस कर लेता है कि स्त्री-मन प्रेमतत्व को सर्वोपरि मान लेता है। विचलित से होते मन की यह ईमानदार प्रस्तुति है। बेहद आत्मीय, आडंबरहीन, सादी भाषा में अव्यक्त भी व्यक्त हुआ सा प्रस्तुत है। एक नयी पारिभाषित तर्कसंगत यथार्थवादी सोच को लेकर आती स्त्री एक भिन्न तरह से अनिश्चितताओं की यातनाओं को झेलती है। यही वजह है कि दीपा निर्णय नहीं ले पाती कि निशीथ का प्यार सच्चा है या संजय का। या जो व्यक्ति उत्कट क्षणों में उसके सामने उपस्थित है। सच तो यह है- ''स्पर्श का क्षण ही सत्य है बाकी सब बकवास है। मुझे लगता है यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, वह जो बीत गया, सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था।''१ इस प्रकार जिस द्वन्द्व में दीपा जीती है, वही उसका आधुनिक होना है। एक गहरी दुविधा जो कहानी को अद्वितीयता प्रदान करती है, यह अस्तित्ववादी क्षणबोध न होकर एक ऐसा उपस्थित नाटकीय क्षण है, जो मनोवैज्ञानिक रूप से कहानी को विशिष्ट बना देता है।

'ऊँचाई', 'एक बार और' की नायिकाएँ भी नैतिकता-अनैतिकता के सवालों से न टकराकर मनोजगत व परिस्थितिजन्य द्वन्द्व को जीती हैं। पहले प्रेम की उत्कटता व भाव संवेग को जीती दीपा व अन्य स्त्री पात्र में अस्मिता की चेतना भरपूर है। निश्चित ही ''मन्नू का प्रेम एक दस्तक है, एक आहट है, जिससे कोई अछूता नहीं है, उसे हर दिल ने सुना और महसूस किया है, समेटा है और अपनी व्यक्तिगत धरोहर की तरह सहेजा है। उनकी कहानियों में

सबका संभावित आंशिक और आनुपातिक सच मौजूद है क्योंकि वे औरत के मानसिक-शारीरिक और सांस्कृतिक सत्य का बहुत गहरा और दाहक एहसास देती हैं।'२

'तिर्शंकु' की मम्मी जो स्वयं खुले विचार की हैं, प्रेम विवाह कर वे पति के भीतर पैठे पुरुषसत्ता के अहं को चुनौती देतीं मुक्त हुई सी तनु और शेखर के मध्य जन्में रागजन्य सम्बन्धों को तवज्जो देने से कतराने लगतीं हैं। पर धीरे-धीरे मनःस्थिति में आए बदलाव व माँ-बेटी के बीच द्वन्द्व को सजीवता से कहानी में उभारा गया है। समाज क्या कहेगा? इस सोच से परे हटकर, भीतर जन्मे द्वन्द्व से मुक्ति पाती माँ नैतिक पारिवारिक पूरा-मूल्य बोध को नकार कर नये युग-बोध में जीती जहाँ माँ के भीतर मानो नाना धंस से गये हैं। वे द्वन्द्वग्रस्त होती हैं। बावजूद इसके वे झुकती हैं। उदारता और सहानुभूति से युक्त हो नरम पड़ती दिखायी देती है। लेकिन तनु ने इस बार तय कर लिया है कि ''इस सारे मामले में ममी को यदि नाना बनकर ही व्यवहार करना है तो मुझे भी ममी की तरह मोर्चा लेना होगा उनसे और मैं जरूर लूँगी।'३ पितृसत्तात्मक व्यवस्था से कैसे ममी अनजाने में ही जुड़ जाती है, इसको कहानी में बड़े सलीके से लेखिका ने बुना है। ममी का क्रान्तिधर्मी तेवर कैसे पस्त होता है? बेटी मोर्चा लेने को तत्पर दीखती है। फिर भी ममी का औचित्यपूर्ण साहस कम महनीय नहीं है। लेकिन संस्कार उसे पचा नहीं पाते। एक तरह की दिशाहीनता, स्वतंतर्ता और आधुनिकता के द्वन्द्व को जीते पातों की स्थिति अधर में लटके 'तिर्शंकु' जैसी हो जाती है। हालांकि स्थितियाँ सवालों से घिरी और व्यापक तथा जटिल हो जाती हैं, पर समुचित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पातीं।

अतः मन्नू भंडारी की कहानियों को रोजमर्रा की भावमुद्राएँ उसके मुहावरे उन्हें एक निश्चित आधार देते हैं। जिसके कारण कहानियाँ घटना-बहुलता से अनावश्यक विस्तार में न जाकर उतने ही वर्णन और घटनाओं तक सिमटी रहती है, जिससे भावबोधों का अंकन बारीकी से हो सके। एक जन्मीं उधेड़बुन जहाँ प्रेम और समर्पण है, नौकरी करती स्ती का अकेलापन, अनछुए जख्मों के दर्द का एहसास-संशय है तो उसका संघर्ष और माद्दा है, जो अन्तर्विरोधी स्थितियों के मध्य अपने तंई जगह तलाशता उपस्थित होता है। नौकरी करती स्ती का पुख्ता होता अधिकार-भाव नई जन्मीं आस्था, आत्मविश्वास कहानियों में नई उष्मा भरता है। बुलंदी पर पहुँची स्तियों के भीतर भी घुटन का जो प्रस्फुटन हुआ उसे उतनी ही बारीकी से प्रत्यक्ष किया गया है। कुत्सित भावनाओं को जीने वाले पुरुष को अपनी स्थिति से परिचित कराते हुए चुभती-कचोटती भाषा में सीधे-सीधे अपनी बातों को लेखिका रखती हैं। 'स्ती सुबोधिनी' कहानी इस दृष्टि से महनीय है। स्ती-विवशता को उजागर करती यह कहानी अंत तक आते-आते केवल भावुक प्रतिक्रिया, कोरा निषेध या आक्रोश से सम्बद्ध ही न रहकर परम्परागत मूल्य-भ्रमों से मुक्त स्ती का जो अक्स उभरता है, वह स्ती की तार्सद, व्यथित स्थिति को ही सामने लाता है। जहाँ प्रेम करती स्ती महसूसती है कि ''क्या मेरा कोई वजूद कोई करार, कोई इकाई नहीं है। जिन्दगी के सारे ताम-झाम में मैं कहाँ हूँ, कितनी हूँ? शायद कहीं नहीं हूँ।''४ प्रेमी शिन्दे 'तुम मेरी हो, तुम मेरी हो' की रट लगाए रहता था और आज उसका प्रेम चूक गया, पत्नी और बच्चे ही सर्वस्व हैं। शादीशुदा शिंदे के व्यवहार में आया छल और चालाकी कथा नायिका को भीतर तक झिंझोड़ देता है। लेकिन केवल पुरुष की धोखाधड़ी ही नहीं सामने आती, वरन् स्ती जो पुरुष-प्रेम के मन-बहलाव को स्वीकार करती है, उसे अपना बना लेने की जिस चाहत को लिए सामने आती है। लेखिका कहानी में दोनों पक्षों की सच्चाईयों को साफ-साफ प्रत्यक्ष करती जाती हैं, जहाँ भाषाई प्रवहमानता अपने में बांधती है। 'कहन' की सी शैली में बेबाकीपन से भरपूर निश्चित ही यह कहानी पुरुषों की 'हिप्पोक्रेसी' वाली मनोवृत्ति और दोगलेपन के तहत जन्में छल को सामने रखकर अत्यन्त कुशलतापूर्वक आधुनिकबोध की बात करते हुए पत्नी और प्रेमिका दोनों को साथ-साथ रखने की और यौनलिप्सा को व्यक्त करती सशक्त कहानी है। पर यह तो सच है कि 'आठ साल तक चलने वाला यह प्रेम महज एक खिलवाड़ जैसा था, जिसकी बाजी पुरुष (शिंदे) जीत लेता है बड़ी ही होशियारी से सधे हुए खिलाड़ी की तरह, पाता मैं अनाड़ी ही रह जाती है, एक व्यर्थताबोध को लिए हुए।' इस प्रकार 'तिर्शंकु' की 'ममी' हो या 'स्ती सुबोधिनी' की 'मैं' दोनों ही स्ती-पात मुक्ति के अवसरों को जीने के बावजूद जीवन की तार्सदियों को भुगतने हेतु बाध्य हैं। भारतीय स्त्री-मानसिकता-संस्कार और आधुनिकता के

बीच के द्वन्द्व को आज भी झेल रही है। इससे मुक्ति कैसे मिले? यह एक बड़ा सवाल बराबर स्त्री-मन को सालता उपस्थित है।

इसी प्रकार परंपरित नैतिकता का अस्वीकरण करती लेखिका ने 'बाहों का घेरा' और 'घुटन' जैसी सेक्सपरक कहानियाँ लिखीं बिना किसी झिझक या संकोच के। लेखिका की 'बोल्डनेस' न कहकर 'संस्कार और आकांक्षा' के द्वन्द्व के रूप में ही देख सकते हैं। वस्तुतः यहाँ संस्कारों की पकड़ टूटती या ढीली होती दिखायी देती है। 'गीत का चुंबन' में प्रेमी जब नायिका को अचानक चूम लेता है तो वह चौंकती सी विरोध दर्ज करती है। 'कील और कसक' की रानी ये सब जड़ संस्कारों से ऊपर उठती स्त्रियाँ हैं। ये स्वतंतर्चेता स्वयं में उलझी स्त्रियाँ हैं, जिनके वैयक्तिक दृष्टिकोण से गलत या अनैतिक सा दीखता पक्ष किस प्रकार नैतिक या सही हो सकता है चरित्र-विश्लेषण का यह पक्ष लेखिका को ज्यादा भाता है। बराबर मन्नू भंडारी परम्परागत मूल्य-भ्रमों से अपने पात्रों को मुक्त देखना पसंद करती रहीं।

इस प्रकार मन्नू भंडारी की स्त्रियाँ आत्मनैतिकता के स्तर पर वह स्वयं को रखकर परखतीं हैं कि पुरुष उसके अस्तित्व को कैसे महत्व दे? यह सब विद्रोही बनकर नहीं वरन् बीच-बीच में आए संवादों की सांकेतिकता उन्हें मुखर बनाती तो कहीं मूक ही रहने पर विवश करती है। 'नई नौकरी' कहानी में, उसके बीच-बीच में झलक देती सच्चाई एक विवश आत्मसमर्पण जैसी स्थिति में 'रमा' को खड़ा कर देती है। वह पति कुंदन द्वारा रचित व्यूह-रचना के बीच अवस्थित हो, ज्ञान और प्रतिभा के समर्जित वह अपनी प्रभाववाली नौकरी तक से इस्तीफा दे देती है। रमा की विपरीत परिस्थितियों में निरन्तर आंदोलित होती चेतना उसे व्यक्तित्वहीन बनाकर कदम-कदम पर पति की इच्छा को ढोती बेदम करती रहती है। अपने आत्मसम्मान को पल-पल खोती अस्मिताविहीन सी हुई वह पति का साथ देती हुई जीती रही पर यह जीना कितना अर्थवान रहा इसे लेखिका ने बखूबी समझा और झेला है। वस्तुतः स्वयं लेखिका अपने जीवन में भी पति-पत्नी के आपसी रिश्तों के जटिल सूत्रों को पकड़ते हुए अत्यन्त धीरज और संयम के साथ अपने चुने हुए रास्ते पर खामोश चलना स्वीकार किया, लेकिन भीतर से कहीं अनेक तूफान समेटे हुए। उन्होंने स्त्री के विरूद्ध आचरण करने वाले पुरुषों के विपरीत क्रिया-कलापों के मद्देनजर अपने सृजनात्मक आईने में उस स्त्री का अक्स ही उभारा, जहाँ उसमें भीतर तक धंसी बातें जवाबी ढंग से प्रत्यक्ष होती रहें। अपने को तवज्जो देतीं उड़ान भरने हेतु मिले पंख को लम्बे समय तक देखती रहीं, जिसके डैने टूट से गये थे। वे स्त्री पुरुष सम्बन्धों पर पर्दे की तरह पड़े गहरे तीखे सत्य को उधेड़ कर रख देती हैं, जहाँ पति का स्टेट्स और भावात्मक संबंधों का दिखावा खुलकर सामने आता जाता है। पति का सोशल स्टेट्स है, पति का दबदबा बार-बार मुखर होता है, पत्नी शांत मानो एक घर में अलग-अलग इकाईयों में बंटे रह रहे हैं। धीरे-धीरे बड़ी खूबसूरती से वे सम्बन्ध भी समाप्त हो जाते हैं। मन्नू भंडारी ने स्वयं भी अहस्तक्षेपमय जीवन को जीना स्वीकार किया। बाद की लिखी गयी 'मुक्ति' कहानी 'मैं' शैली में लिखी गयी है। संवेदनीयता व समान हकों की अपने तईं माँग करती यह कहानी पुरुषसत्तात्मक अमानवीयता व निरंकुशता को सामने लाती यथार्थपरक महत्वपूर्ण कहानी है। इस प्रकार 'मैं हार गई' से लेकर 'तिर्शंकु', 'नायक खलनायक विदूषक', 'नमक', 'मुक्ति' तक लगभग पचास कहानियों से गुजरते हुए स्वातंत्र्योत्तर काल की उत्तरोत्तर जटिल होती स्थितियों के तहत नौकरीपेशा स्त्रियों की संघर्षरत जिन्दगी और उसका जो विरोध-भाव है, कसक व पीड़ा है जो बार-बार अपने संस्कारों से बद्ध हो मर्म को उद्वेलित कर जाती है। इनमें स्त्री-सुलभ भूख, प्यास व संयम, लघुता-महत्ता, स्वार्थ और त्याग आदि के द्वन्द्व को यथार्थ रूप में उपस्थित कर, अत्यन्त गहराई में उतरकर प्रेम व परिवार की समस्याओं को लेखिका ने परखा।

'कमरे कमरा कमरे' की नीलू, 'एक बार और' कहानी की बिन्नी, 'यही सच है' की दीपा, 'ऊँचाई' की शिवानी, 'स्त्री-सुबोधिनी' की मैं, 'ईसा के घर इंसान' की एंजिला, 'नई नौकरी' की रमा, सभी चरित्रों के मध्य स्त्री संघर्ष, आकांक्षा व अस्तित्वबोध को बखूबी देखा जा सकता है। 'बंद दराजों के साथ' कहानी में दराजों में बंटे हुए व्यक्ति के साथ रहने की तार्सद स्थिति मंजरी को झेलनी पड़ती है। सीक्रेट पॉकेट्स रखकर जीने वाला व्यक्ति किस भाँति उसे टुकड़ों में बाँटता है वरन् कहें कि मंजरी टुकड़ों में बंटकर जीने हेतु बाध्य होती है, यह उसकी मजबूरी

रही। पति से अलग होने के निर्णय के साथ ही मंजरी बेहद आहत होती हैः 'भीतर ही भीतर कुछ कसक भी रहा था, पर दूसरे ही क्षण उसने अपने को सहज बना लिया, यह सोचकर कि यह निरी भावुकता है और भावुकता को लेकर आदमी कष्ट पा सकता है, जी नहीं सकता। मंजरी जीना चाहती थी- अपने लिए और अपने बच्चे के लिए।'५ इसी प्रकार अपने स्वत्व के प्रति सजग स्वातंत्र्य-भाव को जीतीं 'ईसा के घर इंसान' की एंजिला और अन्य 'वे जिंदा रहना चाहती हैं', आदमी की तरह जिंदा रहना चाहती है। एंजिला स्पष्ट कहती हैः ''मैं अपनी जिन्दगी को धर्म की दीवारों के बीच नष्ट नहीं होने दूँगी। मैं इस चर्च में घुट-घुटकर नहीं मरूँगी, मैं भाग जाऊँगी, मैं भाग जाऊँगी।''६ एंजिला का यह कथन विद्रोह युक्त तनाव को व्यक्त करता है। धर्म के नाम पर इंसान के इंसान बने रहने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। चर्च का फादर आत्मशुद्धि के नाम पर व्यभिचार करता है। सभी सिस्टर फादर के दुश्चरित्र की शिकार होती हैं, पर अपनी अवशता के कारण मौन रहती हैं।

'तीन निगाहों की एक तस्वीर' में मौन टूटता भी है। इस कहानी की नैना पति के लम्बे समय तक रुग्ण रहने की वजह से वह काम कुण्ठा व अतृप्त लालसा लिए अपने पड़ोसी हरीश की तरफ आकृष्ट होती है। 'बाहों का घेरा' में यौन अतृप्ति के पीछे कामी की वास्तविक पीड़ा का यथार्थाङ्कन है। 'नई नौकरी', 'कमरे-कमरा और कमरे' में स्त्री के निजी व्यक्तित्व का पुरुष के लिए माध्यम भर बनकर रह जाने का दर्द भिन्न दृष्टि से उठाया गया है। सेक्सगत अत्यन्त जटिल व दुहरे शोषण से स्त्री की मुक्ति की राह तलाशती उनके स्वतंत्र जीवन जीने हेतु जिस साहस का परिचय लेखिका ने दिया है, वह अहम् है। 'तीन निगाहों की तस्वीर' स्त्री-संदर्भ से जुड़ी महत्वपूर्ण कहानी है। प्रगति की, स्वतंतर्ता की कामना रखने वाली स्त्री-पात्रों ने अवश्य ही समाज में छाए स्त्री सम्बन्धी दृष्टि को, अन्तर्विरोधों को चुनौती दी। स्त्री जीवन में समाहित क्रूर एवं विरूप पक्ष को तीव्रता के साथ स्पष्ट किया। लेखिका की संवेदनीय दृष्टि स्त्री-यथार्थ को सफलतम् ढंग से व्यक्त कर रही थी, जहाँ समसामयिकता व यथार्थ का अद्भुत् सम.जन है। यह सत्य मौजूदा स्त्री-विमर्श व विचार-विमर्श के आगे ज्यादा असरदार व प्रमाणिक सिद्ध होता है।

वस्तुतः 'मजबूरी', 'अकेली', 'शायद', 'क्षय', 'रानी माँ का चबूतरा' जैसी कहानियों में प्रतिकूल स्थितियों के बावजूद स्त्री पात्रों को जिस जिजीविषा-भाव से लेखिका ने सिरजा है वह महनीय है। 'अकेली' की सोमा बुआ पुत्र वियोग व पति के बिछोह को जीती हुई भी जीने की अदम्य लालसा लिए हुए असंख्य प्रतिकूल स्थितियों का सामना करती हैं। इसी तरह 'नई नौकरी' की रमा तमाम भौतिक सुख-सुविधाओं में जीती हुई भी उसे अपने आप से अपरिचित होने का एहसास कचोटने लगता है। क्योंकि जैसे कुंदन उसे पीछे छोड़कर आगे निकल गया है बहुत आगे। जैसे वह अकेली रह गयी है। यह कम तार्सद नहीं है। बढ़ते शहरीकरण व यांतिर्कीकरण की प्रक्रिया के तहत् जन्में विसंगतिबोध के सैलाब में देश का प्रायः हर उम्र का व्यक्ति ऊभ-चूभ करता निरंतर अपने समाप्त होते अस्तित्व को बचाए रखने की जी-तोड़ कोशिश में रत है। इस दृष्टि से 'नई नौकरी' के साथ ही 'एक प्लेट सैलाब' को विशेष रूप में देख सकते हैं। 'सयानी बुआ', 'छत बनाने वाले', 'श्मशान', 'मैं हार गई', 'पंडित गजाधर शास्त्री' जैसी अनेक कहानियाँ भिन्न-भिन्न कोणों से लिखी गयी हैं, जिनसे लेखिका की दृष्टि की व्यापकता को परिलक्षित किया जा सकता है। कहानियों में व्यक्त आत्मचिंतन, आत्मविश्लेषण व मानसिक ऊहापोह की स्थितियाँ काबिलेगौर हैं। निश्चित ही मन्नू भंडारी की अनेक अर्थों को समेटे जीवन-यथार्थ से जुटी कहानियाँ हमें प्रभावित करती हैं। जहाँ कोई बनावट नहीं, बोलचाल की सीधी सादी जुबान में लेखिका मध्यवर्ग की मनः~~स्थितियों, सच्चाईयों को उकेरती अपनी सादग~~ी में प्रेमचन्द के निकट का सा भाषाई-बोध जो उन्हें तमाम नये कहानीकारों से अलग करता है। भिन्न-भिन्न व विशिष्ट गरिमायुक्त लेखन से जुटीं वे व्यस्क सोच लिए विकसित कला की मिसाल बन उपस्थित होती हैं। समसामयिक बोध और आसपास के यथार्थ धरातल से जुड़े नाना संदर्भों से जन्मीं अनुभूतियाँ भिन्न-भिन्न रूप ले अवस्थित होती हैं, प्रायः दुहराव से बचती हुईं।

दरअसल उनकी कहानियों में व्यक्त यथार्थ से जन्मीं कल्पना और कल्पनाजन्य यथार्थ दोनों ही परस्पर गूंथे हुए हैं। लेकिन दोनों में से किसी का भी अतिरेक नहीं है, स्त्री-पुरुष रिश्तों की गहन अनकही अभिव्यक्तियाँ व

उनका सतह पर चितर्ण अत्यन्त महनीय है। उनकी सर्जनात्मक-चेतना देशज भावों को अपने में समोये स्वाभाविकता के बीच रंग-रूप ग्रहण करती महनीय है। इस प्रकार मन्नू भंडारी की कहानियों की सांकेतिक व्यंजना, भाषाई जादू देखते ही बनता है। एक सहज सधी भाषा बिना किसी लाग-लपेट के दृष्टिगत होती है जिसमें पाठकीय उपस्थिति अदृश्य ढंग से दीखती है। उन्होंने स्वयं तिर्शंकु में लिखा है ''कोई भी लेखक किसी विशेष विचारधारा दृष्टि या मूल्यों से चिपका रहकर उससे अपनी हर रचना की पृष्ठभूमि की जमीन तो तैयार कर सकता है, पर उस जमीन पर खड़ा होने वाला निर्माण तो हर बार नया ही होना चाहिए, अपने रूप-रंग, आकार-प्रकार सभी में।''६ शिल्प कहीं भी उनकी कहानियों में कथ्य पर हावी नहीं हुआ। सरलता में समोयी गयी गंभीरता मन्नू भंडारी की लेखन-शैली की खासियत रही है। सहज-सरल पर संकेतों में कही गयी बातें कितनी असरकारी होती हैं इसे मन्नू भंडारी की कहानी 'दीवार बच्चे और बारिश' के माध्यम से देख सकते हैं। मजबूत दीवार को तोड़कर नन्हीं सी कोंपल का निकल आना और सारी दीवार को कमजोर कर देना अपने आप में प्रतीक है उस सामान्य सी लड़की का जो संस्कारों की दीवार को तोड़कर आगे बढ़ती जाती है।

कह सकते हैं कि 'नायक, खलनायक, विदूषक', 'स्ती्र सुबोधिनी', 'तिर्शंकु', 'करतूतें मरदाँ' जैसी कहानियाँ उनके धारदार शिल्प से सम्बद्ध महनीय कहानियाँ रही हैं। स्ती्र के जिस अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त व संवेदनशील मन का अंकन मन्नू भंडारी ने किया है वह अद्भुद् है। अनुभूति व द्वन्द्व का सघन होना उनके लेखन की खासियत रही है। चरितों्र के आक्रोशी तेवर को उनकी विरोधी वृत्ति को सीधे-सीधे अभिव्यक्त न कर अत्यन्त संवेदनशील हुई लेखिका ने अकेली सी हुई स्ती्र-मन की घुटन, कुंठा, निराशा को जिस महीन अन्दाज से सृजनात्मकता में कसा है, बुना है, वह अन्तर्विरोधी यथार्थ को तार-तार करता प्रत्यक्ष होता है, जहाँ अत्यन्त सहज-सादगी भरी भाषा और साफगोई से विरोधाभासों का खुलासा होता जाता है। अतः लेखिका 'फेमिनिज्म' के नारे में विश्वास नहीं करतीं, उनका स्ती-्रविमर्श यांतिर्कता व परिवारों के विघटन के बीच सताए गए स्ती्र-पुरुष के मध्य बंधा है, जहाँ आपसी रिश्तों की निरर्थकता के मध्य भी चरित्र भाग्यवादी न होकर आक्रोश और नकार के स्वरों को जीते हुए सकारात्मक भंगिमा धारण करते जीवंत मनुष्य की छवि लिए निहायत चेतन मनुष्य बन अवस्थित होते हैं। यही वजह है कहानियों का कथा-परिवेश गाँव-देहात तो नहीं पर शहरी मध्यवर्ग, निम्नमध्यवर्ग तक पसरा नाना भंगिमाओं से सम्पृक्त विस्तृत है। बाद की 'नमक' कहानी अवश्य ही निम्नवर्गीय शोषित व्यक्ति की पीड़ा का अंकन बारीकी से करती है। दरअसल मन्नू भंडारी 'नारी मुक्ति आंदोलन' के नारे को न उछालकर व्यक्ति चिंतन से जुड़ी वे जिस स्ती्र स्वातंत्र्यबोध की बात करती हैं, स्वतंतर्र मानस की ओर मुड़ती हैं वह स्ती्र-मुक्ति हेतु अवश्य ही वैचारिक भूमि तैयार करता है। इस प्रकार थोपी हुई नैतिकता को पीछे छोड़ते नाना चुनौतियों को झेलते विद्रोह को जीते स्ती्र पात्र अपनी 'स्व' की इच्छाओं और स्वप्नों की तलाश में बराबर रत रहने की गवाही देते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थः

१. सम्पूर्ण कहानियाँ, मन्नू भंडारी, यही सच है, पृ० २६२

२. कमलेश्वर, मेरी प्रेम कहानियाँ, भूमिका से

३. तिर्शंकु, सम्पूर्ण कहानियाँ, मन्नू भंडारी, पृ० ४७२

४. स्ती्र सुबोधिनी, सम्पूर्ण कहानियाँ, मन्नू भंडारी, पृ० ४६४

५. नई नौकरी, सम्पूर्ण कहानियाँ, मन्नू भंडारी, पृ० ३५९

६. तिर्शंकु, सम्पूर्ण कहानियाँ, मन्नू भंडारी, पृ० ४७४

२१वीं सदी में हिन्दी कविता की अर्थभूमि

प्रो.डॉ.राम आह्लाद चौधरी

प्रोफेसर,कलकत्ता विश्वविद्यालय,
कोलकाता

इक्कीसवीं सदी में हिंदी कविता की अर्थवत्ता की उद्भावना यही है कि इसने दुनिया की प्रौद्योगिकी संस्कृतिको एक नयी सतह दी है।इसकी गुणात्मक उपस्थिति ने नये स्वप्न को जन्म दिया है।हजारों-हजार पीड़ा को बर्दाश्त करते हुए या झेलते हुए हिंदी कविता ने इस सदी में उद्घोष किया है कि मनुष्य द्वारा स्वप्न देखने की प्रक्रिया किसी कीमत पर खत्म नहीं होगी।हर विपत्ति पर मनुष्य की जीत संभव है।इस कविता ने सच को साहस दिया है तथा सौहार्द को शक्ति दी; यही कारण है कि हिंदी कविता ने कल्पना को संस्कृति का जामा पहनाया है।इसी का सुपरिणाम है कि हिंदी कविता की भारी से भारी विशेषता प्रकट हुई है।इस विशेषता ने 'मंगल कामना' की वर्षा में कामयाबी हासिल की है,जिसे कवियों ने अपली वाणी दी है।इस प्रौद्योगिकी संस्कृति ने जहाँ किसी स्वप्न को हकीकत की कमीज पहनने की जरूरत दिखाई पड़ी उस जरूरत को २१वीं के हिंदी कवियों ने अपनी-अपनी वाणी का सहारा दिया।इसी के चलते लेखन की दुनिया में एक नया विकल्प स्थापित हो सका है।

जहां विद्वानों ने काव्यात्मक नियमों की डोर से कविता की आत्मा को बाँध दिया था,जहां काव्य मनीषियों ने अपनी मनीषा के जरिये कविता की उन्मुक्तता को जकड़ लिया था,जहां वर्चस्व ने कविता को आगे बढ़ने से रोक लिया था,वहीं आपाधापी की इस दुनिया में २१वीं सदी की हिंदी कविता ने डंके की चोट पर कहा कि शब्द लिथने का अधिकार सबको है।सच तो यह है कि २१वीं सदी की कविता ने लोकतंत्र की भू-लुंठित होते हुए ध्वज को आकाश में लहराते हुए बताया कि इस दुनिया में सागर अपनी गति को बदल ले,इस दुनिया में पर्वत अपने मस्तिष्क को झुका ले,पर कविता किसी कीमत पर अपनी मुहब्बत को गिरवी नहीं रखेगी।२१वीं सदी की हिंदी कविता ने मुहब्बत को नया रंग दिया है तथा नया परिधान पहनाया है।यही कारण है कि २१वीं सदी की हिंदी कविता का जुड़ाव हिंदी जगत से ही नहीं हुआ है बल्कि अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भी हिंदी कविता की पहचान बनी है।

इस सदी की हिंदी कविता परिस्थितियों की पड़ताल करने की ताकत हासिल की है। इस कविता को आंसू बहाने में विश्वास नहीं रहा,इसने अपने धैर्य का परिचय दिया है।युग की वाणी इस कविता में अनुगूँजित हुई है।कभी हिंकी कविता को डॉक्टर और दोनों की भूमिकाओं में देखा जाता था,इस सदी की हिंदी कविता इससे आगे की भूमिका में देखी जा सकती है;यही वजह है कि हिंदी कविता सुकून की द्योतक बन गयी है।हिंदी कविता ने जिस तरह हिंदी के कवियों की संख्या में श्रीवृद्धि की है,ठीक उसी तरह इसने कविता की गुणवत्ता को समृद्ध किया है।हिंदी कविता की इस प्रवृत्ति ने हिंदी जगत में रचनात्मक भूमि को उर्वरता दी है।यदि इसी तरह हिंदी कविता की परिधि सुकून के साथ विस्तृत होती रही, तो वह दिन दूर नहीं जब कविता को जीवन का पर्याय कहने के लिए कविता के मर्मज्ञ संघर्ष में न उतर जाएं।अभी तक तो यही होता रहा है कि कविता के मर्मज्ञ कविता को रस से बाहर निकालने के पक्ष में नहीं दिखते थे;पर इस प्रौद्योगिकी संस्कृति ने कविता लेखन की संस्कृति को नयी दिशा दी है।इसी दिशा में कविता पूरी दुनिया के समक्ष सामर्थ्यवान होकर खड़ी हुई है।इसकी सामर्थ्यता मेंभारतीयत्व की सुगंध है,जो पूरे विश्व को न केवल एक नई अनुभूति देती है,बल्कि विचार को आलोकित करने की आह्लादमयी शक्ति प्रदान करती है।२१वीं सदी की हिंदी कविता भ्रम के सारे बंधन को काटती है तथा वह

जमीर को जगाती है। जमीर को जगाने में इसने तार्किकता को जगह दी है।

२१वीं सदी की हिंदी कविता ने भारतीयत्व की संस्कृति को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि पूर्व को सदा उपेक्षित करने से पश्चिम की महत्ता सदा बरकरार नहीं रह सकती है तथा दुनिया के हाहाकार को सुनने की ताकत रखने के साथ-साथ उसकी नब्ज पर हाथ रखने की कला भी पूर्व को पता है।यही वजह है कि भारतीय मनीषा और वाङ्मय के शाश्वत सरोकार को २१वीं सदी की हिंदी कविता ने एक नया आयाम दिया है।इस संबंध में यह कहना जरूरी है कि हिंदी कविता गद्य लेखन को सहज और सुडौल बनाने की सलाह दी है । हिंदी किता ने जिस तरह से अपने अनुभूति को सघनता दी है,जिस तरह से अपनी संवेदना को सजगता प्रदान की है,ठीक उसी तरह इसने अपनी हिम्मत को जमीनी ताकत दी है।

यह कहना अनुचित नहीं है कि परिपक्वता की दृष्टि से कहीं-कहीं सहज प्रवृत्ति भी २१वीं सदी की हिंदी कविता में प्रकट होती है,जो नयी जमीन तैयार करने की मांग प्रस्तुत करती है। नयी जमीन तैयार करने की मांग ही इस सदी की प्रमुख वाणी नहीं रह गयी है बल्कि अनाज अपनी ग्रहणशीलता के रूप में लोगों की थाली तक पहुँच सके,इसकी गारंटी देने की वकालत करते हुए यह कविता न किसी के अंत होने की घोषणा करती है और न ही किसी को मालामाल करने का आश्वासन दाती है।इस कविता की सबसे बड़ी सहजता इसी में दिखती है कि आपसी मुहब्बत को जीवंतता प्रदान करना ही मनुष्य का महानतम गुण है।

यह कविता आशंका-प्रतिशोध-साजिश को तिरोहित करने का दस्तावेजीकरण है। इसकी शक्तिमत्ता हर तरह की कठिनाइयों को चुनौती देने में निहित है।सबसे सहज यह लगता है कि २१वीं सदी ने मनुष्यत्व को नयी धूप से परिचित कराया है।इसने छद्म-झूठ-अहंकार को सही ठिकाने पर पहुँचाने की कोशिश की है।इसने नयी पीढ़ी को साहस और धैर्य रखने की सलाह देते हुए यह भरोसा दिया है कि नई पीढ़ी के हाथों में भविष्य का भरोसा है।यह पीढ़ी हर तरह की तड़प और टीस से इस दुनिया को बचा सकती है।इस दुनिया को प्रलय से यह पीढ़ी बचा सकती है,यही कारण है कि नई पीढ़ी के हाथों की कलम ने इस दुनिया को नये तरीके से सजाने की शुरुआत की है।इसे बनने की प्रक्रिया में उम्मीदें दिखायी पड़ती हैं कि अब भारत को खोजने का प्रयास करना भोथा ज्ञानत्व का पर्याय है,अब मुख्य चुनौती है भारत को नया भारत बनाना।

२१वीं सदी की हिंदी कविता 'देखने में विश्वास नहीं करती है।' यह कविता करने में अपने भरोसा को प्रकट करती है।यही वजह है कि छोटी-छोटी और ओछी-ओछी बातों पर यह कविता अपना समय नहीं बर्बाद करना चाहती है।यह कविता यह बताती है कि समय को वही बदल सकता है,जिसे यह पता है कि समय की गति न अच्छी होती है और न बुरी होती है। समय को अच्छा या बुरा बनाया जाता है। यह कविता बिगाड़ने के लिए खेल नहीं खेलती, यह बनाने के लिए आत्मसंघर्ष करती है। इसकी अर्थवत्ता इसी में विद्यमान है कि नव-निर्माण की प्रक्रिया मिलन-सुख को आमंत्रित करती है;इसलिए कि यही नव-निर्माण किसी भी स्वप्न को हकीकत का जामा पहनाता है। सचमुच; साहस और भरोसे का नाम २१वीं सदी की हिंदी कविता है।

हिन्दी कविता की पहुँच का दायरा बढ़ता जा रहा है, जो उसकी सामर्थ्य के कारण ही संभव हो सका है। २१वीं सदी में हिन्दी कविता की सामर्थ्य किसी से छिपी हुई नहीं है। हिन्दी कविता ने अपनी दूर-दृष्टि की वजह से इस रचना जगत को एक महान विजन दिया है। इस विजन का आधार इतिहास और दर्शन है, जिसे समय और संस्कृति ने मजबूती दी है।

कविता जब अतीत के रंग को जीवन से जोड़ती है, तब कविता निश्चित तौर पर भविष्य की सुरक्षा की गारंटी देती है। कविता में अतीत की ताजगी को प्रस्तुत करना एक तरह से मोह और माया से ऊपर उठना है। सच तो यह है कि स्मृति रचना को ताकत देती है। इसी ताकत के जरिये रचना आगे बढ़ने की दिशा खोजती है। इतिहास जिस तरह साहित्य को संतुलन-शक्ति प्रदान करता है, ठीक उसी तरह कल्पना भी स्मृति के पैर में पायल बांधती है जिसके बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। क्या कारण है कि कल्पना उड़ान भरती है? इस उड़ान भरने के पीछे अंततः होता क्या है? इन दोनों सवालों को ध्यान में रखा जाय, तो स्पष्ट होगा कि जीवन को बेहतर बनाना ही परम उपासना है। इस उपासना से विमुख होने पर चाहे जैसी रचना प्रक्रिया आरंभ

हो, लेकिन सृजन नहीं हो पाता है। कल्पना और उपासना के बिना रचना-कर्म सम्पन्न नहीं होता है। इस रचना- कर्म को अंतिम रूप में अंजाम देने के लिए इतिहास से गुजरना पड़ता है, इतिहास तो एक तरह से साहित्य की नब्ज है। इसके बिना साहित्य का मुकम्मल रूप ही नहीं बनता है। इतिहास किसी न किसी रूप में साहित्य- सृजन में विद्यमान होता है। उसकी उपस्थिति के बिना किसी वाक्य का अर्थ भी नहीं होता है। अनर्थ को अर्थवान बनाना कविता की साधना है। कविता अतीत के बल पर ही किसी अनर्थ को अर्थ बना पाती है। यही कारण है कि हर स्थिति में कविता सुकून देती है। सुकून किसी व्यक्ति को स्मृति के जरिये भी प्राप्त होता है। मुक्तिबोध ने ठीक ही कहा है कि अतीत वर्तमान को संतुलित करता है तथा वर्तमान भविष्य का अंतिम रूप निर्धारित करता है। यही कारण है कि रचनाकार किसी रचना को अंतिम रूप देने की प्रक्रिया से जब गुजरता है, तो ऐसा महसूस करता है कि क्या इसी उपादान को रचना में प्रस्तुत करना है, जिस उपादान ने सुख-दुख के क्षण में साथ निभाया है। क्या इतने साधारण उपादानों को रचना में प्रस्तुत करना है। इस भाव के उठते ही अतीत का वह क्षण जाग उठता है, जिस क्षण ने उसे सबसे अधिक दुःख दिया है।

रवीन्द्रनाथ ने इस संबंध में बहुत अच्छी बात कही है कि दुःख मानव को कुछ न कुछ देता है, कुछ लेता नहीं है। यदि दुःख आता है, तो कुछ देकर जाता है। इस कथन के आलोक में विचार करना अपेक्षित यह है कि दुःख क्या देता है? दुःख स्मृति को ताजा बनाता है। दुःख के क्षण चाहे जितने तकलीफदेह हों, पर इस क्षण से बाहर निकलने के बाद सुख ही सुख है, आनंद ही आनंद है। चाहे उसमें हार हो या जीत। मनुष्य कभी हारता नहीं है और न टूटता है। मनुष्य हर क्षण हारने और टूटने से जूझता है। कोई चाहकर भी किसी को मार नहीं सकता है। हर व्यक्ति को अपनी समझ और शक्ति के अनुसार दैनंदिन का युद्ध लड़ना पड़ता है, इस युद्ध में उसकी जीत अवश्य होती है, क्योंकि यदि वह महसूस करे कि वह दैनंदिन का युद्ध हार रहा है, तो और कायदे से सावधान हो जाता है। उसकी सावधानी और ओजस्वी बन उठती है। इस सावधानी से उसे गंभीरता प्राप्त होती है, जो रचना कर्म को संघर्ष के मैदान में अमरता प्रदान करती है, जिस अमरता के संबंध में दुनिया कहती है कि अमुक ने अमुक संघर्ष पर विजय का झंडा फहराया है।

इस बारे में उल्लेख करना यह अनुचित नहीं होगा कि नेपोलियन के एक सैनिक ने उससे एक जीत के मौके पर सवाल किया था कि आप बिना सोचे समझे मैदान में उतर जाते हैं और जीत भी हासिल कर लेते हैं, इसका राज क्या है? नेपोलियन ने उत्तर दिया था कि मैदान में उतरते नहीं बल्कि गंभीर होकर उतरते हैं और रास्ते में चलते-चलते युद्ध जीतने और हारने के सारे उपादानों को गले लगाते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। आगे बढ़ने की यह बात भी ऐसी है, जैसे कोई रचना के लिए आगे बढ़ रहा हो और वह उसकी पूरी तरह मदद करने के लिए तैयार हो। दुनिया की किसी साहित्यिक आलोचना ने अतीत पर सवाल खड़ा नहीं किया है बल्कि साहित्य-सिद्धांत ने हर वक्त ऐलान किया है कि अतीत और कल्पना ही साहित्यिक धरोहर हैं। इस धरोहर का असली स्वरूप छायावादी काव्यांदोलन में दिखता है।

खासकर महाकवि जयशंकर प्रसाद के नाटकों और कविताओं में कल्पना और इतिहास का अद्भुत समन्वय हुआ है। इस समन्वय के बिना हिन्दी आलोचना का न रंग दिखता है और न रूप। यदि स्मृति नहीं होती, तो प्रसाद की प्रसिद्ध ऐतिहासिक कविता 'प्रलय की छाया' और निराला की कविता 'सरोज स्मृति' जैसी महान कविताएं पढ़ने का सौभाग्य नहीं मिलता। तो सवाल उठता है कि ऐसा क्या हो गया कि रचना की दुनिया में स्मृति को दरकिनार करने का क्रियाकलाप शुरू हुआ। इस पर ध्यान देने से स्पष्ट होगा कि जब से 'इतिहास का अंत' होने का नारा उछाला गया, तब से रचनात्मक क्षेत्र में स्मृति को छीनने का प्रयास शुरू हुआ। इस एक ध्रुवीय विश्व में सत्य को वर्तमान समय में स्थापित करना जटिल है। सच के लिए लड़ना और कठिन है, इस सच को स्मृति के बिना बचाना और... और भयावह है।

हर विधा अभिव्यक्ति को एक तरह से आगे बढ़ाती है। अभिव्यक्ति, अनुभव की पहचान है और यही पहचान किसी कविता की प्राणशक्ति को बचाये रखती है। इस पहचान के बिना कविता बेजान है और इसी पहचान के कारण कोई कविता बेनज़ीर है। इस बेजान और बेनज़ीर तटों के बीच से कविता की धारा स्वतः स्फूर्त ढंग से प्रवाहवान रहती है, किन्तु थोड़ी देर के लिए एक तट को बेजान मान भी लें तो काव्य के किसी एक पक्ष की उपेक्षा नहीं होती

बल्कि काव्य की धारा अपनी आंतरिक शक्तियों के जरिये इस बेजान तट को प्राणस्फूर्त कर देती है।

कविता के इस दार्शनिक पक्ष से उलझने पर महसूस होता है कि कविता का यह पक्ष जीवन का दुखात्मक क्षण है। यही क्षण कविता को जिन्दगी प्रदान करता है, इसलिए कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने मानवीय जीवन में दुख के महत्त्व को सबसे ज्यादा स्थान दिया है। यह स्थान या यह क्षण किसी से न तो प्रभावित होता है और न किसी से उद्वेलित होता है, पर इसका कोई एक-न-एक आधार होता है। इस आधार के बिना कविता अपना कदम नहीं उठा पाती। यानी कविता का सृजन नहीं होता। बिम्ब के बिना कविता का सृजन असंभव है। कोई यह कह सकता है कि शब्द के बिना कविता, कविता नहीं हो पाती।

एक शिविर जिज्ञासा कर सकता है कि किसकी कविता किससे प्रभावित है।कविता के मर्म को पहचानने वाले जोड़-तोड़ कर यह बतला सकते हैं कि अमुक की कविता अमुक से प्रभावित है या किसी एक की वाणी को लेकर आगे बढ़ी है। कविता के विशेषज्ञ आलोचना के मानदण्डों के आधार पर काल सापेक्ष या काल निरपेक्ष व्याख्या करते हैं। इसका अपना एक खास अंदाज है और खास महत्त्व है किन्तु किस बिन्दु से कविता के प्रभावोत्पादक उपादान उस कविता के अंतर्गत अपने आपको जीवित रखे हुए है, इसकी व्याख्या चाहे जितने तरीके से की जाय, चाहे वह व्याख्या जितनी प्रभावशाली क्यों न हो; उस बिन्दु को खोज पाना कठिन होता है।

जिज्ञासाएं मिटती नहीं हैं। इस दुनिया में कहने के लिए जिज्ञासाएं मिटती हैं पर सच तो यह है कि इन्हीं जिज्ञासाओं के जरिये दो व्यक्ति, दो समाज या अधिक-से-अधिक व्यक्ति एक- दूसरे के निकट आते हैं। समाज के विभिन्न स्तरों पर यही वह जिज्ञासा है जो एक-दूसरे के सम्बन्ध को बरकरार किये हुए है। यही वह काव्य-सत्य है जिस सत्य को अरस्तू ने पहचाना और बताया कि यह काव्य-सत्य ऐतिहासिक सत्य से बड़ा ही नहीं बल्कि महत्त्वपूर्ण भी है। आमतौर पर इस सत्य को समझना कठिन होता है। समय सापेक्षता की बात इस संदर्भ में उठायी जा सकती है। विद्वान दावा कर सकते हैं कि उन्होंने काव्य-सत्य को समझा है और काव्य-सत्य को बड़े पैमाने पर दुनिया को समझाने के लिए उनकी योग्यता कारगर साबित हुई है। इसके बावजूद सवाल ज्यों का त्यों खड़ा रह जाता है। इसी के तहत बाबा नागार्जुन की बात को प्रस्तुत करना अपेक्षित है 'कालिदास सच-सच बतलाना' में नागार्जुन ने कवि कालिदास से यही तो सवाल किया था कि तुम रोये थे या यक्ष रोया था।

बाबा ने इन आंसुओं में काव्य-सत्य को ढूंढ़ने की चेष्टा की थी और उनकी यह चेष्टा पूरी तरह से सफल रही। सच्चे अर्थों में बहते आंसू और चीखते स्वर इस सत्य को अपने अंतर्गत समाहित किये होते हैं बशर्तें इन आंसुओं को देखने के लिए दृष्टि और इन चीखों को सुनने के लिए कान अपेक्षित हैं। महान मार्क्सवादी आलोचक इगल्टन ने सही कहा है कि आलोचनात्मक व्याख्याएं रचना की आभ्यान्तर शक्ति को कमजोर से कमजोरतर बनाती हैं जबकि दृष्टि सम्पन्न, क्रियान्वयन आलोचनाएं समाज और व्यक्ति को नैतिक मूल्यों से पुष्ट करती हैं। इस बनने की प्रक्रिया में अक्सर एक चुप्पी होती है। कविताएं अपने बिम्ब की ओर अभिमुख होती हैं, पर बिम्ब युद्धपोत जहाज की तरह सीना ताने बिना पीछे देखे आगे की ओर बढ़ता है।

काव्य में परम्परा का पानी होता है। इसके बिना सृजन असंभव है। पानी ही जिन्दगी है। इस पानी पर आज चारों तरफ से हमले हो रहे हैं, उन हमलों से मुठभेड़ करने के लिए रचनाकार सामने आते हैं तथा वे सभ्यता-संस्कृति-परम्पराओं के पानी को नहीं बंटने देते हैं। इस पानी को वर्चस्ववादी संस्कृति किसी कीमत पर नहीं बांट सकती क्योंकि जनता के रचनाकार जनधर्मी काव्य परम्परा को ही आगे बढ़ाते हैं; भाषा निश्चित तौर पर माध्यम की भूमिका अदा करती है। सवाल यह है कि किस दर्शन को अपनाया गया है। यदि दर्शन समाज के अधिक से अधिक लोगों को आगे बढ़ने की ताकत देता है, तो लोग उस दर्शन को अपनाते हैं। रचनाकार अपनी रचनाओं में उसे स्थान देते हैं। उसका अध्ययन तुलनात्मक तरीके से करना सराहनीय होता है, क्योंकि परम्पराओं के पानी को चारों तरफ के खतरों से बचाने की जरूरत है।

हिन्दी काव्य की संस्कृति किसी मामले में आकाश की ऊंचाई से कम नहीं है। आकाश की ऊंचाई का वैज्ञानिक आधार क्या है? इस सवाल का सहज उत्तर देना कठिन है। लेकिन जब कोई प्रश्न सामने आता है तो वह अपना उत्तर भी साथ लेकर आता है। देखना यह है कि उत्तर विश्व स्तर पर किस तरह ग्राह्य होने की स्थिति में है। यदि इस उत्तर

की ग्राह्यता सभ्यता, संस्कृति और परम्परा में सुरक्षित है तो यही समझा जाता है कि उत्तर सटीक है। जीवंतता के बिना उत्तर सटीक शायद ही होता है और यही जीवंतता काव्य को काव्य बनाती है। भारतीय आत्मा के बिना संस्कृत, उर्दू और हिन्दी काव्य की गरिमा और महिमा पर विचार करना अंधेरे में तीर मारना है। भारत की इन तीन भाषाओं के किसी काव्य पर नजर जाने से यही लगता है कि उस काव्य में भारतीय आत्मा बोल रही है। वह सिर्फ बोलती नहीं है बल्कि एक विशेष कालखण्ड के विभिन्न पहलुओं की विविधताओं को संयोजे हुए है तथा वह हर संकीर्णता से ऊपर उठने की सलाह देती है। जब तक इस संकीर्णता से ऊपर नहीं उठा जायेगा तब तक मानव के अंतर्गत मानवत्व का जो गुण है, उसका निखार नहीं होता।

काव्य इसी गुण को निखारते हुए समाज को उच्च से उच्चतर भावभूमि पर प्रतिष्ठित करने का काम करता है। इसी कारणवश मानवीय रागधारा दिन-ब-दिन उज्ज्वलतम रूप को स्थापित करती है; जिस रूप पर रवीन्द्रनाथ ने विचार करते हुए कहा- 'मैं केवल इतना कहना चाहता था कि जिस प्रकार पृथ्वी मेरा खेत है और तुम्हारा खेत, उनका खेत नहीं है, पृथ्वी को इस तरह जानना अत्यन्त ग्राम्य रूप में जानना है- उसी प्रकार साहित्य मेरी रचना, तुम्हारी रचना और उनकी रचना नहीं होती। हम लोग साधारणतः साहित्य को इसी ग्राम्य ढंग से देखा करते हैं। इसी ग्राम्य संकीर्णता से अपने को मुक्ति देकर विश्व साहित्य में विश्व मानव को देखने का लक्ष्य हम स्थिर करेंगे, प्रत्येक लेखक की रचना में उसकी समग्रता को ग्रहण करेंगे और इसी समग्रता में सारे मनुष्यों की अभिव्यक्ति चेष्टा का संबंध देखेंगे, यह संकल्प करने का समय आ गया है।' रवीन्द्रनाथ ने राष्ट्रीय शिक्षा परिषद में वक्तव्य रखते हुए १९०४ के जनवरी में यह बात कही थी। उन्होंने विश्व मानव को देखने का लक्ष्य स्थिर करने पर जोर दिया, क्योंकि समाज, सभ्यता, संस्कृति और परम्परा के बिना विश्व मानव का निर्माण नहीं हो सकता इसको बचाने का सवाल उनकी रचनाओं की प्राथमिकता है, जो विभिन्न रूपों में बार-बार उठती रही है। यही सवाल है जिसने मानव को मानवीय गुणों से लैस किया है।

सही अर्थों में सभ्यता संस्कृति और परम्परा को विभाजित नहीं किया जा सकता। यदि राजनीतिक और भौगोलिक लकीर खींचकर सभ्यता, संस्कृति और परम्परा को बांटने की कोशिश भी की गयी, तो वह विभाजन अंतिम विभाजन नहीं होता है। इस संदर्भ को राही मासूम रजा ने एक सवाल के जरिये समझने-समझाने का प्रयास किया। राही के इस सवाल पर विचार किया जा सकता है, सवाल है- ''क्या घर के बंटवारे से बुनियाद की ईंटें भी बंटवारे की लपटों में आ जाती हैं?' यह सच है, राजनीतिक बंटवारे से उथल-पुथल होती है, लेकिन उससे सभ्यता, संस्कृति और परम्परा की आत्मा नहीं नष्ट होती। ब्रितानी हुकूमत द्वारा खींची गयी लकीर के चलते १४ अगस्त १९४७ की रात के बारह बजे अचानक करोड़ों लोग पाकिस्तानी बन गये। भारत की राजनीतिक सीमा सीमित हो गयी। उन करोड़ों लोगों में फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ भी थे। उर्दू के महान शायर हैं; उनकी कविता से क्या कोई भारतीय आत्मा को निकाल सकता है। क्या मानवता की तड़प उनकी कविता की गूंज नहीं है। ऐसे अनेक उर्दू के कवि हैं, जो पाकिस्तान चले गये, उनमें हफीज जालंधरी, मलीहाबादी और तेग इलाहाबादी आदि प्रमुख कवियों के नाम लिये जा सकते हैं। उनकी कविताओं में हिन्दी-उर्दू-संस्कृत के शब्द विधान एक साथ लक्षित होते हैं। सरहद पार जाने के बावजूद उनकी कविता की खुशबू हवा में तैरती है।

किसी विखण्डनवादी-वितंडावादी सोच में इतनी ताकत नहीं है कि हवा में तैरती उस खुशबू को रोक दे। दरिया के पानी को बांट देना इसके बहाव को रोक देना आसान होता है, पर परम्पराओं के पानी को कोई नहीं बांट सकता है। वर्तमान समय में दरिया के पानी पर कब्जा करना आसान है। इसके चलते उसके रूप और रंग बदल दिये गये, पर परम्पराओं के पानी का क्या हुआ? परम्पराओं की धारा और तेज हुई, जिसकी दास्तान संस्कृत, उर्दू और हिन्दी काव्य में सुरक्षित है। कहने के लिए कोई कह सकता है कि हिन्दी और उर्दू के संबंध में यह बात लागू हो सकती है, लेकिन संस्कृत के संबंध में क्या कहा जायेगा। संस्कृत के काव्य में भी विभाजन की त्रासदी का बखान आजादी के बाद हुआ। भारत में लिखी-बोली जा रही १२२ भाषाओं में त्रासदी का जिक्र हुआ है। पर यह सच है कि संख्या की दृष्टि से कम होते हुए भी गुणात्मकता की दृष्टि से बेहतरीन काव्य प्रकाशित हो रहे हैं। उनके मूल्यांकन हो रहे हैं। मूल्यांकन के स्तर पर विचार-विमर्श किया जा रहा है। पर

एक सवाल जरूरी है कि सिर्फ संस्कृत काव्य ही नहीं बल्कि अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में प्रकाशित या अप्रकाशित काव्यों का मूल्यांकन खासकर तुलनात्मक ढंग से होने के बावजूद काफी धीमा है। वैसे साहित्य अकादमी द्वारा इस तरह के कार्यों को अपने तरीके से करने का प्रयास किया जा रहा है, जिसकी स्थापना समारोह में डॉ. राधाकृष्णन ने कहा था- 'भारतीय साहित्य एक है, यद्यपि यह कई भाषाओं में लिखा गया है।' भारत में १४,१३५ व्यक्तियों की मातृभाषा संस्कृत है तथा पूरी दुनिया में ५० हजार लोग इस भाषा में बोल सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी काव्य का दायित्व सबसे अधिक है। हिन्दी काव्य को दायित्व पालन करने का ज्ञान है। पालन करने के संदर्भ में ही इसे देखना उचित होगा। यदि इस दृष्टि से हिन्दी काव्य पर विचार करें तो स्पष्ट होगा कि हिन्दी काव्य पूरी तरह से इस दायित्व को निभा पा रहा है, उल्लेखनीय है कि पूरी दुनिया में ८० करोड़ लोग हिन्दी बोलते हैं तथा प्रायः ४३ करोड़ लोगों की मातृभाषा होने का गौरव हिन्दी को प्राप्त है। विश्व के १३० देशों में हिन्दी साहित्य का पठन-पाठन होता है। इस दृष्टि से उर्दू पर विचार करना अनुचित नहीं होगा। भारत में प्रायः ६ करोड़ लोगों की मातृभाषा उर्दू है। विश्व के २१ देशों में उर्दू बोली जाती है। संस्कृत के संदर्भ में इस आंकड़े को प्रस्तुत करते हुए कहना पड़ता है कि काव्य प्रकाशित हो रहे हैं, उन काव्यों में किसी अन्य भाषाओं के शब्द, वाक्य और विचार के प्रति किसी तरह का परहेज नहीं देखा जाता है।

यही तो परम्परा का पानी है, जिसकी धारा तेज गति से चल रही है। काव्य के जरिये यह पानी सुरक्षित रहता है। जहां लिपिगत गतिरोध भी दरकिनार हो जाते हैं। कौन नहीं जानता कि फारसी लिपिबद्ध 'पद्मावत' हिन्दी काव्य की शिखरणी है। अमीर खुसरो ने अपने काव्य-सृजन के जरिये भारतीय सभ्यता-संस्कृति की एकता को मजबूत करते हुए तमाम अशुभ शक्तियों को जवाब देने के लिए आमलोगों से लामबंद होने का आग्रह किया। परम्परा को समझे बिना यह लामबंदी असंभव है। परम्परा के पानी को देखने के सिलसिले में रहीम और रसखान को नहीं भुलाया जा सकता। रहीम और रसखान दोनों दो मिजाज के कवि हैं; किन्तु मकसद एक है। भारत की धरती पर मैत्री को किस तरह बढ़ावा दिया जा सकता है। नीति और प्रेम के बिना किसी का हृदय जीतना मुश्किल होता है। रहीम को नीतिपरक दोहों तथा रसखान को प्रेमपरक दोहों के लिए हिन्दी काव्य में सदा स्मरण किया जायेगा। उनके यहां एक साथ संस्कृत और फारसी की शब्दावली देखने को ही नहीं मिलती, बल्कि उनके यहां संस्कृत, अरबी, फारसी, अवधी के शब्दों का जोरदार और मनमोहक प्रयोग हुआ है। रसखान ने 'पुरन्दर', 'गिरि' जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग किया, तो उसी तरह 'ताक', 'अजबो', 'खुमार' जैसे शब्दों के जरिये अपने काव्य-सौन्दर्य को निखारा है तथा हिन्दी काव्य को अग्रगति के पथ पर अग्रसर होने के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। ऐसा तभी संभव होगा, जब कोई रचनाकार काव्य के जरिये संस्कृति और परम्परा को एक दस्तावेज के रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत करने की कला में सिद्धहस्त हो। रग-रग में बसे बिना इस तरह की सिद्धहस्तता हासिल नहीं की जा सकती है। यही सिद्धहस्तता परम्पराओं के पानी को पहचानने की नजर देती है।

इस पर विचार करते हुए रामचन्द्र शुक्ल ने रसखान को कृष्णभक्ति शाखा के प्रमुख कवियों की परम्परा में स्थान दिया है, जबकि रहीम को भक्तिकाल की फुटकल रचनाओं के अंतर्गत रखने का प्रयास किया है। रहीम के संबंध में आचार्य शुक्ल ने लिखा है- 'ये संस्कृत, अरबी और फारसी के पूर्ण विद्वान और हिन्दी काव्य के पूर्ण मर्मज्ञ कवि थे।' तभी तो आगे प्रगतिशीलता की जमीन दिखायी पड़ती है। प्रगतिशील काव्य हिन्दी-उर्दू की निकटता का सबसे बड़ा प्रमाण है। इस संदर्भ में फिराक का नाम लेना उचित होगा। फिराक हमेशा हिन्दी-उर्दू की बहस के केन्द्र में बने हुए हैं। जोश, मजाज, जाफरी, कैफी की संघर्षशील चेतना ने इस दुनिया को एक नया आयाम दिया है। इसी तरह यह भी कहा जा सकता है कि हामिद सुहेल, अली सबा नवेदी, काविश बद्री, राही, रशीद इम्कान, अजरा परवीन, रफीक राज जैसे प्रमुख शायरों ने उर्दू शायरी की जनोन्मुखी परम्परा को आगे बढ़ाने का काम किया।

बशीर बद्र, निजाम, जावेद अख्तर, केशर शमीम ने काव्य की एक नयी जमीन तैयार करते हुए नया मुकाम बनाया है। निदा फाजली ने पिछले दिनों हिंदी-उर्दू शायरी को एक नया जामा पहनाया है। कहा जाता है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में नादानी को स्थान दिया है। साथ ही ऐसे-ऐसे सवाल उठाये हैं जिन सवालों ने आदमी की तलाश

में एक नयी शुरुआत की है। धार्मिक संकीर्णता, असहिष्णुता तथा पानी को प्रदूषित करने वाले जर्म को मानो खोज निकाला है; इसलिए उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों की चिंता नहीं की, उन्हें परेशान आम आदमी की चिंता करती है। यथा : हिन्दू भी मजे में है / मुसलमां भी मजे में / इंसान परेशान/ यहां भी है वहां भी/ बशीर बद्र के यहां अवाम की जिन्दगी की पूर्ण उपस्थिति हुई है। सामाजिक सरोकार को स्थापित करने के लिए उन्होंने न केवल एक नयी धरती की तलाश की बल्कि एक नया आकाश कहां है, इस ओर भी संकेत किया है। उनके यहां समाज की मुख्य समस्याओं को क्लिष्टता और दुरूहता से बाहर निकाला गया है, तभी तो उनकी रचनाओं में मानवीय पीड़ा तड़प उठती है। उस तड़प की आवाज पर गौर फरमाएं : लोग टूट जाते हैं एक घर बनाने में / तुम तरस नहीं खाते बस्तियां जलाने में। इस तरह की बेचैनी का इजहार निजाम की शायरी में भी हुआ है। इन दिनों पूरी सहजता और सपाटता के साथ निजाम ने तमाम प्रतिकूलताओं पर प्रहार करते हुए करोड़ों-करोड़ खटनेवाले आम लोगों को सचेत करते हुए लिखा है : पत्थरों की नदी बह गयी शहर में/ जाने कैसी हवा फिर बही शहर में / जावेद अख्तर ने इन दिनों शायरी की एक नयी दुनिया बसाने का काम किया है। एक नयी दृष्टि दी है। एक नये दर्शन को शायरी में रखने का प्रयास किया है। खासकर काल की उन्होंने नयी व्याख्या प्रस्तुत की है।

उर्दू के कुछ आलोचकों ने उनकी शायरी यानी नज्म और गजल के सम्बन्ध में कहा कि उनके यहां अतीत का दबदबा है। लेकिन सच पूछा जाय, तो उन्होंने वास्तविकता को फसाद से पहले और फसाद के बाद आम जनता के बीच प्रस्तुत किया है।

'चीखो नहीं अभागो, एक गीत सुनो'- कविता की एक साधारण पंक्ति है। ऋतुराज की कविता से यह पंक्ति ली गयी है। कविता का शीर्षक है- 'मुरिया'। ऋतुराज साठोत्तरी हिन्दी कविता के हस्ताक्षर हैं। उन्होंने काव्य को नये अंदाज में देखने की चेष्टा की है। उसी अंदाज की रोशनी में काव्य को देखने का मेरा प्रयास आपके सामने प्रस्तुत है।

काव्य अनन्तकाल से गीत सुनाने की चेष्टा करता रहा है। इस चेष्टा से लोगों ने अपने-अपने तरीके से अपना-अपना मतलब साधने का काम किया है। इस समाज में लोगों को पूरा अधिकार है कि अपनी सोच या अपनी भावना के अनुसार जनहित में काम करें, लेकिन जब यह सोच पूरी तरह से निजी हित साधने के लिए अंधी बन जाती है, तो समाज की अग्रगति के समक्ष एक गतिरोध पैदा हो जाता है। काव्य इस गतिरोध से भाव और कला के स्तर पर मुठभेड़ करता है। इस मुठभेड़ की प्रक्रिया लम्बे समय तक चलती है। किस काल-खण्ड में किस तरह के मुठभेड़ हुए थे, इसका लेखा-जोखा शायद अभी तक तुलनात्मक अध्यापन की पद्धति के जरिये संभव नहीं हुआ है। आगे क्या होगा; इस सवाल का जवाब फिलहाल भविष्य के गर्भ में ही रहे, तो अच्छा है। इसलिए कि अध्ययन की इस पद्धति की प्रवृत्तियों की समीक्षा करने से यही महसूस होता है कि कुछ वितंडा खड़ाकर येन-केन-प्रकारेण नतीजा हासिल करना तथा अपनी आत्ममुग्धता पर नाचना ही इसकी अंतिम परिणति है। और जो इस पद्धति के प्रवक्ता हैं, वे बेहिचक दुनिया बनाने में परिश्रम और परोपकार की भूमिका को नकारते रहे हैं। उस नकारात्मकता में एक सर्वग्रासी सोच की बात भी गहराई में उतरने के बाद नजर आती है; जिस पर साठोत्तरी हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर विजेन्द्र ने जीवन के आस्थावान पहलुओं का जिक्र इस रूप में किया है-'नहीं सुखा पावोगे मुझको/ ओ सप्त अश्वधारी भगवान भास्कर/ सजल स्रोत जीवन से/ गुँथी हुई है / धरती में जड़ मेरी।'

विजेन्द्र की सृजनशीलता का विश्लेषण करते हुए यह कहा जा सकता है कि साठोत्तरी हिन्दी कविता की एक धारा के अंतर्गत रुग्ण प्रवृत्तियों का जहां लक्षण दिखता है, वहीं दूसरी ओर विजेन्द्र ने अपनी कविता में जनमानस की अभिव्यक्ति, श्रम और संघर्ष की विशेषताओं को सहज रूप में उपस्थित किया है। इस उपस्थिति के बारे में श्रीप्रयाग शुक्ल ने बिल्कुल सही लिखा है- वर्जित प्रदेशों को उर्वर बनाने की इच्छा और कला से इनकी कविता में अपूर्व लोक सौन्दर्य उपस्थित होता है, हालांकि यह जरूर है कि गतिशीलता के लिए इसका बहुत आग्रह दूरगामी नहीं होता। स्वयं पुराने विषयों में भी इस बदलाव को लक्षित किये जाने की जरूरत थी। इस दृष्टि से इनकी कविताओं में जहां श्रमरत कृषक-जीवन, घोसी, बंजारे और कंजरों, मोची, भंगी जैसी जनजातियां मिलती हैं, वहीं पर प्रकृति के उपेक्षित तत्त्व करील, सरसों, बबूल के फूल, कुकुरभांगरा भी महत्त्वपूर्ण स्थान पाते हैं। इस साठोत्तरी हिन्दी कविता में केदारनाथ सिंह, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, वीरेन डंगवाल, आलोक

धन्वा, ज्ञानेन्द्रपति, अरुण कमल, स्वप्निल श्रीवास्तव, नवल शुक्ल, नीलम उपाध्याय, एकांत श्रीवास्तव, बद्री नारायण जैसे प्रमुख कवि हैं। इन सभी कवियों ने जीवन को एक गीत के रूप में देखते हुए संघर्षरत लोगों के चित्र सामने प्रस्तुत किये। अरुण कमल को पूरा विश्वास है कि संघर्ष के बिना नयी दुनिया नहीं रची जा सकती।

यह विश्वास जब और गहराता है, तब कविता का स्वाद कुछ इस तरह लगने लगता है; कवि के शब्दों में ः 'जो नया जीवन रच रहे हैं। जो उठा रहे हैं नयी भीतियां/ उनके ही जिम्मे है खण्डहरों को बचाने का भार ... ये खण्डहर मनुष्यता के चरण चिह्न / कटे बांस की ठूंठ जड़े/ उगी हैं जिनसे आज की/ सबसे नयी कोंपल/ इनकी एक एक ईंट रहे जीवित/' मौसम के खराब होने के बावजूद उनकी कविताओं की उम्मीद सदा बनी रहती है। स्वप्निल श्रीवास्तव की कविताएं धरती से जुड़ी हुई हैं। उनकी कविताओं में वास्तविकता की अनुगूंज सुनायी पड़ती है। ऐसा लगता है कि भारत का गांव उनकी कविताओं में बोल रहा है। गांव के प्रति एक खास लगाव है। 'बरसात में घर' उनकी प्रसिद्ध कविता है, जिसमें उन्होंने लिखा है-'यहां बरसात हो रही है। संभव है हजार किलोमीटर दूर/ मेरे गांव में भी हो रही हो / वहां की दीवारें/ बिस्कुट की तरह गल रही हैं।' इस यथार्थपरक नजरिये से कवि ने गलती दीवारों को उठाने का स्वप्न देखा है। यह स्वप्न पूरी तरह से हकीकत में बदलता है, तभी तो हजारों किलोमीटर की दूरी पर बैठा आदमी गांव के लिए सोचता है तथा लाखों विषम- प्रतिकूलताओं के बावजूद अपने गांव के लिए कुछ करता है।

इसी सच्चाई को केदारनाथ सिंह ने 'रोटी' नामक कविता में उजागर किया है। यथा ः 'आप विश्वास करें मैं कविता नहीं कर रहा / सिर्फ आग की ओर इशारा कर रहा हूँ/'' यही आग गीत गुनगुनाने की ताकत देती है, जो साठोत्तरी हिन्दी कविता की केन्द्रीय विषय-वस्तु है।

इस वैश्वीकरण के युग में सामाजिक-सांस्कृतिक-साहित्यिक फसादों के विरुद्ध हिन्दी-उर्दू के रचनाकार एक साथ मैदान में पूरी तन्मयता के साथ जुटे हुए हैं, जिन्हें देखकर उम्मीद जागती है कि निश्चित तौर पर धरती पर एक नया सूरज खिलेगा, जिसकी किरण पाकर परम्परा की धारा हीरे की तरह आज नहीं तो कल और बहुत देरी हुई तो परसों चमक उठेगी, जो एक-दो सौ सालों से नहीं बल्कि हजारों-हजार सालों से पूरी निश्छलता के साथ प्रवाहमान है। मकसद एक ही है- 'सर्वया विशा प्रो आरत' यानी एक साथ मिलकर आगे बढ़ो।

यदि मुक्तिबोध के शब्दों में कहें, तो मुक्ति अकेले नहीं आती। यही परम्परा की धारा है, जो आज लहूलुहान है, आक्रांत हो रही है। इसे बचाने के लिए संस्कृत, हिन्दी, उर्दू सहित सभी आधुनिक आर्य भाषाओं के पूर्ण कवि बेचैन हैं। यही बेचैनी काव्य को सार्थकता देती है, हर तरह की सीमा से ऊपर उठाने की बातें हमारे कानों में चुपके से आकर कह जाती हैं तथा परम्परा की ताकत बतला जाती हैं; जिसकी इंतजारी हमें नहीं करनी पड़ती। संस्कृत-उर्दू-हिन्दी सहित तमाम भारतीय भाषाओं के महान-फक्कड़-मस्तमौला कबीर के शब्दों में- 'हमारा यार है हम में हमन को इंतजारी क्या' यही परम्परा की धारा है, जिसे हमने आपके सामने परम्परा का पानी के रूप में प्रस्तुत किया है, जो सदियों से सभ्यता-संस्कृति-परम्परा में विद्यमान है और युग-युग तक पूरी ताजगी के साथ सौन्दर्य को निखारता रहेगा।

काव्य-सृजन का फलक विस्तृत होता है। महान कवि उसे और विस्तार देता है। मानव-सभ्यता को उज्ज्वल से उज्ज्वलतम बनाने के उद्देश्य से बिम्ब-शब्द चित्र-चिह्न के जरिये कवि मानव-मन को समझने की कोशिश करता है। मकसद यही होता है कि किसी तरह मानव के दुःख-दर्द को समझा जाय; मानव को नया जीवन दिया जा सके, नयी ऊर्जा से उसे ऊर्जस्वित किया जा सके। हर गतिरोध को दूर करना तथा मानव-सभ्यता की जनधारा को और गतिशील बनाने के सिलसिले में महान कवियों के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। महान कवियों की न कोई एक परिभाषा है और न कोई एक मानदण्ड है। पर समाज अपने अनुभवों के जरिये धीरे-धीरे महान की एक परिभाषा बना लेता है तथा एक मानदण्ड तैयार कर लेता है। कभी-कभी इसके विरुद्ध प्रचार किया जाता है। पर वह प्रचार मानव-सभ्यता विरोधी प्रचार के रूप में तब्दील हो जाता है। कवियों और काव्यांदोलनों को प्रचार की जरूरत नहीं पड़ती; कवि और काव्यांदोलन खुद की लड़ाई खुद लड़ते हैं। वैसे नया रास्ता अख्तियार करनेवालों को प्रचार की आवश्यकता नहीं पड़ती है। नया प्रचार उसे चाहिए जो सिर्फ प्रचार के बल पर चलना चाहता है।

प्रचारधर्मी काव्य होता भी नहीं है। वैसे कभी-कभी काव्य जैसे पवित्र शब्द को कलुषित करने के उद्देश्य से सृजन विरोधी मुहिम को भी देखा जाता है। काव्य, कवि और काव्यांदोलन विरोधी मुहिम को बारीकी से देखने की कोशिशें होती रही हैं। इस मुहिम की विशद चर्चाएं हुई हैं। समीक्षकों ने चर्चाओं की जांच-पड़ताल की है। कहने के लिए निष्कर्ष भी सामने आये हैं। निष्कर्ष के चलते मानदण्ड भी बना है। उस मानदण्ड पर कवियों और काव्यांदोलनों का विश्लेषण किया गया है। देखते-देखते वही मानदण्ड निर्णायक बन जाता है। पर जब काल की गति उस मानदण्ड पर प्रश्न चिह्न खड़ा करती है, तब अचानक फिर बवाल खड़ा हो जाता है। कभी शब्द तो; कभी बिम्ब के हवाले से उस मानदण्ड की अजरता-अमरता की दुहाई दी जाती है। मानदण्ड से अलग हटने को एक अशुभ संकेत के रूप में देखा जाता है। महान कवि उसी अशुभ को शुभ में अपनी रचनाओं के जरिये न केवल बदलता है बल्कि मानव-सभ्यता को एक तोहफा देता है। यह तोहफा धीरे-धीरे विजय-चिह्न में बदल जाता है। इस चिह्न को काव्य-सृजन का विजय-चिह्न कहा जा सकता है। इस विजय-चिह्न को गुणात्मकता की दृष्टि से देखने से पता चलता है कि सही अर्थों में काव्य-सृजन के माध्यम से ही मानव-सभ्यता का सच्चा विकास होता है। इस विकासधारा को जन-धारा के रूप में देखना अनिवार्य है।

विश्व के कवियों ने काव्य-सृजन के जरिये जन-धारा को विकसित किया है। जन-धारा का मुहाना जन-इतिहास होता है। जन-इतिहास का उद्गम स्थल जन-संघर्ष है। जन-संघर्ष में कवि हिस्सा ले या न ले, लेकिन वह जन-संघर्ष को एक नया मुकाम देता है। कहने के लिए चाहे जो कुछ कहा जाय, पर सच्चाई यह है कि जन-भागीदारी की महत्ता को जनतांत्रिक तरीके से स्थापित करने में कवि की विशेषताएं देखने लायक होती हैं। इन विशेषताओं की कोई खास प्रवृत्ति नहीं होती है पर उन विशेषताओं का असर विश्वव्यापी होता है, जिसकी गूंज युग-युग तक सुनायी पड़ती है। आलोचक; कवि की प्रतिभा और उस प्रतिभा की विशेषताओं को प्रवृत्ति के आधार पर विश्लेषित करने का प्रयास करता है। जब किसी कविता को प्रवृत्ति के आधार पर विश्लेषित किया जाय तो यही समझना चाहिए कि कविता के अन्दर की ताकत को ध्वस्त करने का कोई नया खेल शुरू हो चुका है।

इस खेल को समझने के लिए काव्य-सृजन के विजय-चिह्न को समझना जरूरी होता है। प्रवृत्तिमूलक अध्ययन ने कविता की ऊर्जा और दृष्टि को धूमिल करने की लगातार कोशिश की है। इसके विरुद्ध यदि आवाज उठायी जाती है; तो यह कहा जाता है कि कविता के नाम पर राजनीति की जाती है। सवाल यह उठता है कि क्या कविता राजनीति है? कविता तो राजनीति को भी दृष्टि देती है, क्योंकि दर्शन और विचार के बिना कविता का सृजन असंभव है। ठीक इसी तरह राजनीति भी दर्शन और विचार के बिना आगे नहीं बढ़ पाती है, हालांकि उसके दर्शन और विचार चाहे जो हों। उस दर्शन का मूल्यांकन मानव-सभ्यता करती है। इसलिए उसके मूल्यांकन में गलतियों की कम संभावनाएं होती हैं।

उन संभावनाओं को रेखांकित करने के लिए अनुभवों की सीमाओं का अतिक्रमण करना पड़ता है। इस अतिक्रमण के जरिये काव्य-सृजन को कई प्रक्रियाओं के बीच से गुजरना पड़ता है। इस सम्बन्ध में काव्य-आलोचकों ने विभिन्न ढंग से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, लेकिन सबसे बड़ा विचार वही विचार हो सकता है, जो विचार अधिक से अधिक लोगों को सुकून दे। कविता की पहली शर्त तो यही होनी चाहिए कि लोगों को सुकून दे।

जख्मी लोगों को कविता जीने की ताकत देती है। उसकी अस्मिता इसी में सुरक्षित है। कोई कविता पढ़े या न पढ़े, कवि का ढोल पीटा जाय या न पीटा जाय, पर सभी जानते हैं कि कालिदास-व्यास-वाल्मीकि की एक भूमिका है। जब प्रौद्योगिकी विकास की शुरुआत भी नहीं हुई थी, तब भी कविता ने मानव सभ्यता को विकसित करने के लिए उसका मार्ग प्रशस्त कर दिया और जब प्रौद्योगिकी विकास का युग आया, तब भी कविता को इससे कोई खतरा महसूस नहीं हुआ। एक लोकतांत्रिक माहौल को पैदा करने में कविता की सबसे बड़ी भूमिका है, क्योंकि इसके जरिये प्रेम नगरी बसती है और विजय-शंख फूंका जाता है। काव्य-सृजन इसी ध्वनि का वहन करता है। काव्य-सृजन उस ध्वनि को न केवल सुनता है बल्कि उसको आत्मसात करता है और जहां-जहां उसकी राह में मोड़ आता है, वहां-वहां वह एक मुकाम बनाता है। इस मुकाम को एक चिह्न के रूप में हमेशा याद किया जाता है। इसका कदापि अर्थ यह नहीं है कि इस चिह्न के अलावा कोई दूसरा चिह्न ही नहीं है।

सच तो यह है कि इस तरह के विजय चिह्न और कई चिह्नों को आलोकित करने की चेष्टा करते हैं। जन-इतिहास में इन चिह्नों को सजाने का प्रयास किया जाता है। इन चिह्नों के जरिये जन-इतिहास की महत्ता कायम होती है। यही कारण है कि इतिहास बेकार नहीं जाता है। खासकर काव्य-सृजन का इतिहास सदा अमर है, उस पर प्रश्न चिह्न लगाना मुश्किल होता है। वह प्रश्न-चिह्न खुद-ब-खुद खाद बनकर विजय-चिह्न की धार को बढ़ा देता है। काव्य-सृजन में जो धार और शान है, वह उसी चिह्न के कारण है। यही कारण है कि जब-जब काव्य-सृजन की चर्चा होगी, तब-तब रवीन्द्रनाथ ठाकुर, फ़ैज़ और नागार्जुन के नाम सामने आ जायेंगे।

रवीन्द्रनाथ की महत्ता को देखने से पता चल सकता है कि विगत डेढ़ सौ सालों में रवीन्द्रनाथ के काव्य-सृजन और उस सृजन की आलोचना ने विश्व का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। खासकर संवेदना और अनुभूति के क्षेत्र में उन्होंने जो यात्रा की, उस यात्रा का मूल्यांकन अभी होना बाकी है, वैसे हजारों-हजार काव्य-आलोचकों ने रवीन्द्रनाथ की कविताओं को रेखांकित करने का प्रयास किया है। युग-युग से उनके काव्य-सृजन के गीत सुने जा रहे हैं और युग-युग तक उनके गीत इस विश्व में गुंजित होते रहेंगे।

कालजयी रचनाकार होने के नाते रवीन्द्रनाथ ने काल के चौखट पर जो दस्तक दी है, वैसी दस्तक शायद ही कोई दे। साम्य गीत के बिना विश्व को गुंजित नहीं किया जा सकता है। सही अर्थों में रवीन्द्रनाथ मानव-गीत के गायक हैं। इस गीत को फ़ैज़ ने अपने तरीके से बढ़ाते हुए काव्य को अभयदान दिया है। प्रेम के क्षेत्र को उन्मुक्त करने में फ़ैज़ की भूमिका को नकारना कठिन है। मानव सभ्यता के समक्ष चाहे जितनी समस्याएं क्यों न आयें, फ़ैज़ की कविताएं सदा सुकून देती रहेंगी। फ़ैज़ ने काव्य-सृजन के जरिये उन तमाम भावलोक को आनंद विभोर किया; जिनकी चर्चा जितनी की जाय, उतनी कम है। फ़ैज़ के महत्त्व को रेखांकित करने के उद्देश्य से पूरी दुनिया में उनके काव्य-सृजन का मूल्यांकन हुआ। इस मूल्यांकन ने एक नया आलोक दिया है। खासकर नौजवानों को एक नयी ऊर्जा प्राप्त हुई है। इसके चलते नयी सोच की तरफ बढ़ने में निश्चित तौर पर युवा पीढ़ी को दिशा मिलेगी।

इस दिशा में आगे बढ़ने में कैसी रुकावटें आती हैं, उन रुकावटों की ओर बाबा नागार्जुन ने संकेत किया है। भाव-शिल्प की नगरी बसाने में बाबा का जोड़ा मिलना मुश्किल है। जन कवि बाबा ने काव्य-सृजन की ऐसी बानगी प्रस्तुत की है, जो हजारों-हजार रचनाकर्मियों को युग-युग तक प्रभावित करेगी। जनता की आवाज को काव्य में किस तरह पिरोया जाय, यह हुनर बाबा के पास है। मुख्यधारा से पूरी तरह कटे लोगों को जीने की ताकत बाबा ने अपने काव्य-सृजन के जरिये दी है। काव्य-सृजन का अनोखापन उनकी गद्यात्मक रचनाओं में भी देखने को मिलता है। बाबा ने काव्यांदोलन को नया रूप दिया।

जब-जब हिन्दी काव्यांदोलनों की चर्चा की जायेगी, तब-तब छायावाद का नाम उठेगा। विगत एक सौ साल में इस काव्यांदोलन ने काव्य के क्षेत्र में एक नया मुकाम तैयार किया है। खासकर मुक्तिबोध ने अपनी आलोचना दृष्टि से इस काव्यांदोलन की व्याख्या को नया रूप दिया है। इस छायावाद का मानस चाहे जो हो, पर इसने जन-इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा है। इस अध्याय पर चिंतन-मनन जारी है। इस चिंतन-मनन की रूप रेखा को प्रस्तुत करने का प्रयोजन है। खासकर इस वैश्वीकरण के युग ने कौन-सी समस्याएं उत्पन्न की हैं। इससे भाषा और भाव पर कैसा प्रभाव पड़ा है।

काव्य-सृजन के विजय-चिह्न किस रूप में इन प्रभावों से मुठभेड़ करते हुए भारतीय वाङ्मय और मनीषा को नये अंदाज में देखने पर जोर देते हैं; इस सवाल की ओर ध्यान देना वर्तमान का तकाजा है। इसलिए कि इसी वर्तमान को कल अतीत का दर्जा हासिल करना है तथा आने वाले कल के लिए रास्ता प्रशस्त करना है। जो हिन्दी कविता के जरिये ही संभव है। यही इसकी पहुंच है। हिन्दी कविता इस वैश्वीकरण का विकल्प प्रस्तुत कर रही है। विकल्प प्रस्तुत करना उसकी सामर्थ्य का सबूत है।

राष्ट्रीय एकता एवं अनुवाद

डॉ.पूरनचंद टंडन

प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

'एकता में बल है'- इस सूक्ति के माध्यम से यह अर्थ अभिव्यक्त होता है कि अगर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एकत्र होकर, संगठित होकर समाज के कल्याण हेतु कोई भी कार्य किया जाए तो वह निःसन्देह सफल होगा। भारत देश है विभिन्नताओं का, यहाँ भाँति-भाँति के खान-पान, वेशभूषा, जाति, भाषा, धर्म, संस्कृतियों, आचारों-विचारों आदि में समन्वय की भावना देखने को मिलती है। यह ऐसा ही है जैसे एक माला के धागे में अनेक रंग-बिरंगे मोतियों को पिरो देना। यह ऐसा ही है जैसे एक गुलदस्ते में रंग-बिरंगें पुष्पों को संजो देना। इस प्रकार भारत में 'अनेकता में एकता' के दर्शन होते हैं। यही एकता इस राष्ट्र की रीढ़ है। किसी भी राष्ट्र की एकता के अन्तर्गत 'भाषा' की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। भाषा भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। भाषा के जन्म के साथ ही, 'अनुवाद' का भी जन्म होता है। अनुवाद के माध्यम से व्यक्ति अपनी संस्कृति के अलावा अन्य संस्कृतियों को भी जान सकता है। अनुवाद के माध्यम से ही वह अपनी सभी समासिक जिज्ञासाओं को शांत कर सकता है। राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में अनुवाद की भूमिका को स्पष्ट करने से पहले 'राष्ट्रीय एकता' एवं 'अनुवाद' के अर्थ, स्वरूप तथा महत्व पर भी विचार करना परम आवश्यक है।

'राष्ट्र' शब्द संस्कृत के 'राजृ' (राज्) धातु और 'ष्ट्रन' प्रत्यय के योग से बना है, जिसका मूल अर्थ है राज्य, राष्ट्र, देश और सामड्ढाज्य। इसी प्रकार 'राष्ट्रीय' शब्द बना है - 'राष्ट्रें भव इति राष्ट्रीयता। राष्ट्र ञ घञ् (रष्ट्रियः)' हिन्दी भाषा में 'राष्ट्रीय एकस्य भाव इति एकता' के रूप में हैं।१ राष्ट्रीय एकता के अभाव में किसी भी राष्ट्र का विकास असंभव है। राष्ट्रीय एकता का मूल आधार सांस्कृतिक एकता को माना जाता है। इसके लिए मनुष्य का साम्प्रदायिक रूप

१. मानवमूल्य-परक शब्दावली का विश्वकोश- संपादक डॉ. धर्मपाल मैनी, पृ १५४

से सहिष्णु होना अतिआवश्यक होता है। 'मानवमूल्य-परक शब्दावली में 'राष्ट्रीय एकता को इस प्रकार परिभाषित किया गया है - समस्त राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधना ही किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय-एकता है। आज देश में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विवशता के कारण राष्ट्रीय -एकता प्रभावित हो रही है। यह हमें नही भूलना चाहिए कि एकता जीवन है, फूट मृत्यु। एकता उन्नति है, फूट अवनति तथा एकता बल है और फूट पतन।''१ इस प्रकार यहाँ एकता को शक्ति, उन्नति एवं जीवन का प्रतीक माना गया है। 'राष्ट्रीय-एकता' जिस देश में होती है, उसे कोई भी अन्य देश जीत नहीं सकता। इसी के माध्यम से देश के चारित्रिक बल का भी पता चलता है। 'राष्ट्रीय एकता का अर्थ एवम् महत्व जानने के पश्चात् अब अनुवाद का अर्थ एवं महत्व जानना भी आवश्यक है।

भाषा के जन्म से ही 'अनुवाद' का जन्म भी जुड़ा है और तभी से इसकी आवश्यकता भी बनी हुई है। यह आज के आधुनिक युग में न केवल प्रासंगिक है अपितु अपरिहार्य भी है। किसी भी समाज और देश का विकास अनुवाद के बिना सम्भव नहीं है। भारत जैसे बहुभाषा-भाषी एवं बहु सांस्कृतिक देश में अनुवाद परस्पर संवाद की सशक्त भाषा है। यदि यह कहा जाए कि प्रत्येक भारतीय चाहे वह पर्वतीय क्षेत्र में रहता हो अथवा समतल भूमि पर,

नगर और शहर में रहता हो या गाँव में, विकसित राज्य का निवासी हो या अविकसित, वह जन्मजात अनुवादक होता है, तो यह गलत न होगा। अनेक जातियों, धर्मों, समुदायों, संस्कृतियों, भाषाओं और बोलियों के इस देश की भौगोलिकता ही अनुवाद की सशक्त आधारशिला रखती है। यदि हम एक-दूसरे से जुड़ना चाहते हैं, बोलना चाहते हैं, परस्पर समझना चाहते हैं, आदान-प्रदान, विचार-विनिमय करना चाहते हैं, और इनसे भी ऊपर एक-दूसरे के साथ एकता की कड़ी में पिराए जाना चाहते हैं तो हमें अनुवाद की शरण में जाना ही होता है।

भारत में बच्चा जब जनम लेता है तो एक भाषा विरासत में उसे माँ के दूध के साथ प्राप्त होती है। 'मातृभाषा' कहलाने वाली इस भाषा को सीखने-जानने के लिए इस बच्चे को

१. मानव मूल्य परक शब्दावली का विश्वकोश; धर्मपाल मैनी , पृ / १५४२

किसी विद्यालय या संस्था में नहीं जाना होता। वह इस भाषा को माँ के हाव-भावों से, आंगिक चेष्टाओं से धीरे-धीरे सीख लेता है। दूसरी भाषा वह बच्चा घर से बाहर निकलकर, पार्क में जाकर, अड़ोस-पड़ोस में जाकर या घर में आने वाले, अतिथियों से संवाद करते-करते सीख लेता है। इसे हम 'सम्पर्क भाषा' (स्पदा संदहनंहम) कहते हैं। इसके लिए शिक्षक बनता है - 'समाज'। स्कूल-कॉलेज की आवश्यकता इसके शिक्षण - अर्जन में भी - नहीं पड़ती। अतः बच्चा सोचता अपनी भाषा में है और बोलता सामने वाले को ध्यान में रखकर 'सम्पर्क भाषा' में है, जबकि सामने वाला यदि उसे ग्रहण करता है तो 'सम्पर्क भाषा' से अपनी भाषा में अंतरित करके ही ग्रहण करता है। इस प्रकार बंगला भाषी बच्चे का संवाद तमिल भाषी या अन्य किसी भाषा-भाषी से होता है तो इसमें अनुवाद की प्रक्रिया शांत भाव से कार्य करती रहती है। यही प्रक्रिया प्रत्येक भारतीय को एकता के सूत्र में बाँधती है, परस्पर जोड़ती है। हमारे त्योहार, हमारे रीतिरिवाज, हमारी वेशभूषा, आभूषण, संस्कार और आस्था-विश्वास से जुड़े अनुष्ठानों का एक-दूसरी संस्कृति में आदान-प्रदान परस्पर भागीदारी और प्रभावशीलता के मूल में 'अनुवाद' ही काम करता है। यहाँ तक की खान-पान और पकवानों का राष्ट्रीय भ्रमण भी इसी अनुवाद प्रक्रिया से उपकृत है।

यहीं नहीं, संस्कृत एवं हिंदी का समस्त नीतिकाव्य इस बात की दुहाई देता रहा है कि "पहले तोलो, फिर बोलो"। सोच समझ कर बोलने की 'एक भाषा' है और उसे मौखिक या लिखित में अभिव्यक्त करने की 'दूसरी भाषा'। वक्ता सोचने और बोलने या लिखने के बीच की दूरी अनुवाद की प्रक्रिया से ही पूरी करता है। शब्द चयन, उनका वाक्य-विन्यास में पिरोया जाना, उचित-अनुचित का बोध इसी प्रक्रिया से सम्बद्ध होता है। इसी लिए कबीर ने कहा भी था-

कबिरा जि?ा बावरी, कह गई सरग पाताल।

आप कही भीतर गई, जूते खात कपाल।।

अनुवाद में भी 'स्रोत भाषा' और 'लक्ष्य भाषा' के बीच अनुवादक को एक सेतु-निर्माण' करना होता है। अनुवाद वस्तुतः राष्ट्रीय एकता, सामाजिक एकता, धार्मिक एकता, सांस्कृतिक एकता, वैचारिक एकता और इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों एवं अनुशासनों में एकता स्थापित करने वाला बहुआयामी, बहुदिशागामी सेतु हैं। एक ऐसा सेतु जो परस्पर जोड़ता है, आदान-प्रदान के लिए, परस्पर विनिमय के लिए प्रेरित करता है। भेद-भावों को, दूरियों को, बाधाओं को दूर करता है। निर्बाध आवागमन एवं अभेद विनिमय का मार्ग प्रशास्त करने वाली यह विद्या एवं विद्या हर तरह से उपयोगी है, प्रासंगिक है। 'वैश्वीकरण' के इस युग में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के मूलभूत भारतीय दर्शन का सार्थक विस्तार 'अनुवाद' द्वारा ही हो पा रहा है।

आज विभिन्न राज्यों की कलाएँ, कलात्मक सौन्दर्य से सुसज्जित यथार्थ, वस्तुएँ, पर्व-उत्सव, संस्कार, आस्था-विश्वास, टोने-टोटके और मान्यताएँ यदि अखिल भारतीय स्तर पर प्रसार पा रहीं हैं तो उसके भी मूल में अनुवाद ही है। अतः अनुवाद को पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, साहित्यिक, शैक्षिक, वैचारिक, दर्शनिक एवं वैधानिक आदि दृष्टियों से हम, एकता स्थापित करने के सशक्त उपकरण एवं साधन के रूप में देखते और पाते हैं।

'अनुवाद' शब्द बना है - अनुत्र्वाद से। संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'वद्' धातु का अर्थ है - बोलना या कहना। 'वद्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय जुड़ने से यह भाववाचक

संज्ञा बन जाता है, जिसके जुड़ने से 'वाद' शब्द का अर्थ होता है 'कहने की क्रिया' या 'कही हुई बात'। 'वाद' से पूर्व अनु उपसर्ग जुड़ने से 'अनुवाद' शब्द बना है। सामान्यतः 'अनु' उपसर्ग का अर्थ 'पीछे' या 'बाद में' होता है। अतः इसका शाब्दिक अर्थ हुआ - 'किसी कही हुई बात को बाद में या फिर से कहना अर्थात् 'पुनः कहना'।

संस्कृत का यह 'अनुवाद' शब्द हिन्दी में आकर 'भाषानुवाद' कहलाने लगा। भाषानुवाद अर्थात् किसी एक भाषा में कही गई बात को बोलचाल की प्रचलित भाषा में पुनः कहना। इस प्रकार पारिभाषिक रूप में अनुवाद का अर्थ हुआ -'किसी एक भाषा की किसी उक्ति या कथन विशेष के अर्थ को अक्षुण्ण रखते हुए दूसरी भाषा में उसे यथासम्भव यथावत् प्रकट करना या

मूल भाषा के शब्दों के स्थान पर लक्ष्य भाषा के शब्दों में प्रकट करना।' भारतीय दर्शन,

मीमांसा, उपनिषद तथा वैदिक साहित्य से 'छाया', 'भाषा', 'टीका', 'व्याख्या', 'भाषानुवाद',

'भाषांतरण, 'तरजुमा' एवम् 'उल्था' आदि अनेक शब्दों की सुदीर्घ यात्रा पूरी करता हुआ यह कार्य उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में आकर परिभाषिक शब्द 'अनुवाद' के रूप में स्वीकृत और मान्य हो गया।

हिन्दी में अनुवाद शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'ज्तंदेसंजपवद' शब्द के पर्याय रूप में प्रचलित है जो वस्तुतः लैटिन भाषा से आगत है। यह ज्तंदे और संजपवद के योग से बना है। 'ज्तंदे' का अर्थ है - 'पार' और 'संजपवद' लैटिन भाषा से आया है, जहाँ यह ले जाने की क्रिया के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः 'ज्तंदेसंजपवद' का अर्थ हुआ - 'इस पार से उस पार या दूसरे पार ले जाना। अभिप्राय यह है कि एक भाषा के कथ्य को अर्थात् 'स्रोत भाषा' की वस्तु को दूसरी भाषा अर्थात् 'लक्ष्य भाषा' में ले जाना ही 'ट्रांसलेशन' कहलाता है। यहाँ भी दोनों ही शब्द जोड़ने, एकता स्थापित करने के प्रतीकार्थ को ही द्योतित करते हैं। जिस मूल भाषा में बात कही जाती है उसे 'स्रोत भाषा' और जिस भाषा में अनुवाद करना होता है, उसे 'लक्ष्य भाषा' कहा जाता है। इस प्रकार अनुवाद एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में यथासम्भव समतुल्य एवं सममूल्य पुनः सृजित करने की प्रक्रिया है। किसी भी सफल अनुवाद की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि अनुवाद का मतलब है किसी बात को एक से दूसरी भाषा में उतारकर कहना। आवश्यक है कि वह बात दूसरी भाषा वाले के पास पहुँच जाए, बात का भाव सही-सही पहुँचे और बीच में कहीं वह अपना प्रभाव न खोए। जिस मात्रा में यह परिणाम आता है उसी मात्रा में अनुवाद सफल कहा जाता है।'' इसलिए ज्तंदेसंजपवद एक प्रकार से 'स्रोत' और 'लक्ष्य' भाषा के बीच की सभी दूरियों को समाप्त कर एक पुल-निर्माण करता है जो बिना किसी रुकावट के आवगमन का मार्ग प्रशस्त करता है। अभेद-दृष्टि को विकसित करता है। तमाम अंतराल एवं खाइयों को पाट देता है।

आज के दौर में भिन्न-भिन्न भाषा समुदायों के अन्तर्गत एक-दूसरे से सम्पर्क बढ़ने के कारण अनुवाद की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विभिन्न शब्दों के मध्य अनेक क्षेत्रों (आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि) में अनुवाद के माध्यम से आदान-प्रदान होता है। इस प्रकार से 'अनुवाद' निरंतर अपना कद ऊँचा कर रहा है। आज अनुवाद मनुष्य की विभिन्न संस्कृतियों के बीच एक महत्वपूर्ण सेतु की भूमिका का निर्वाह कर रहा है। अनुवाद के माध्यम से ही आज 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा सार्थक सिद्ध हो रही है। अनुवाद के महत्व के सन्दर्भ में डॉ. नगेन्द्र 'बाईबल' के ग्यारहवें अध्याय में लिखित एक कहानी का उल्लेख करते हैं कि - ''जब सृष्टि बनी, तब सारी पृथ्वी पर एक ही भाषा और एक ही बोली थी। जब लोग पूर्व से आगे की ओर बढ़े, तब उन्हें शिनार प्रदेश में एक मैदान मिला और वे वहाँ बसने लगे। उन्होंने आपस में कहा ''आओ, हम ईंट बनाकर उन्हें पका लें।'' वे पत्थर के स्थान पर ईट और गारे के स्थान पर मिट्टी का डामर काम में लाए। फिर उन्होंने कहा '' आओ, हम अपने लिए एक नगर बसाएँ और एक ऐसी मीनार बनाए जिसकी चोटी आसमान तक पहुँच जाए। इस प्रकार हम नाम कमा लें और हमें बँटकर पृथ्वी पर इधर-उधर फैलना न पड़े।''१.

उस नगर और मीनार को, जो मानव-पुत्र जलपलावन से बचने के लिए बना रहे थे, देखने के लिए स्वंय प्रभु उतर आए। उन्होंने कहा, ''देखो, अब तक वे एक ही जाति के हैं और उन सबकी एक ही भाषा है। यह तो उनके कार्यों का आरम्भ-मात्र है, आगे वे जो कुछ करना चाहेंगे, करते जाएँगे। इसीलिए अब हम नीचे उतरे और वहाँ उनकी भाषा में एक ऐसा संभ्रम पैदा करें जिससे वे

एक-दूसरे की भाषा ही न समझ पाएँ।'' इस प्रकार प्रभु ने उन्हें वहाँ की पृथ्वी-तल पर दूर-दूर तक फैला दिया। तब शिनार वासियों ने मीनार बनाना छोड़ दिया। लोग उस मीनार को बेबेल की मीनार कहने लगे।'' 'बाईबल' के इस अंश से यह ज्ञात होता है कि उस घटना के बाद मानवता भिन्न-भिन्न राष्ट्रों, धर्मों, जातियों, भूखण्डों, समाजों आदि में विभाजित हो गई और जिसके फलस्वरूप संसार में हजारों भाषाओं की उत्पचि हुई और उन सभी भाषाओं में निहित अमूल्य सम्पदा के आदान-प्रदान हेतु 'अनुवाद' एक महत्वपूर्ण सेतु के रूप में सामने आया। अनुवाद को सम्पूर्ण विश्व का महानतम् एवं महत्वपूर्ण कार्य बताते हुए जे. डब्ल्यू. गेटे कहते हैं कि - '' अनुवाद की पूर्णता के सम्बन्ध में कोई चाहे कुछ भी कहे,

१. अनुवाद विज्ञानः सिद्धांत और अनुप्रयोग - संपादक डॉ. नगेन्द्र, पृ २

अनुवाद विश्व के सभी कार्यों से अधिक महत्वपूर्ण और महानतम कार्य है।''

अनुवाद एक गम्भीर कार्य है इसलिए आज अनुवादक को एक ऐसे ईमानदार इंजीनियर की भूमिका निभानी होगी जिसमें निष्ठा हो, समर्पण हो, जनहित, लोकहित, राष्ट्रहित्। तथा विश्वहित की सात्विक एवं पुनीत भावना हो। उसके समक्ष यह उद्देश्य सदा-सर्वदा रहना चाहिए कि राष्ट्र को विश्व के मंच पर ध्वजारोहण करते हुए युग-युगांतर तक न केवल खड़े रहना है अपितु नेतृत्व भी प्रदान करना है। यदि अनुवादक को अनुवाद के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करनी है और राष्ट्रीय स्तर पर एकता के मूल मंत्र का, राष्ट्रीय चेतना के विस्तार का बीज वपन करना है तो उसमें मुख्यतः निम्नलिखित गुणों का होना परम आवश्यक है -

(१) अनुवादक को अद्यतन एवं अधुनातन खोजों, परिवर्तनों, जानकारियों तथा उपलब्धियों का ज्ञान जुटाते रहना चाहिए। यह सतत् अध्ययनशीलता से समसामयिक जानकारियों से तथा सूचना-तंत्र के माध्यम से ही संभव हो सकता है। जागरूकता अनुवादक की सफलता का मूल मंत्र है। राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय स्तर पर एकता स्थापित करने में यह अत्यंत कारगर उपाय है।

(२) अनुवादक को 'स्रोत भाषा' एवं 'लक्ष्य भाषा' की प्रकृति, व्याकरणिक व्यवस्था शैली एवं अनुप्रयोगात्मकता का आधिकारिक ज्ञान होना चाहिए। इससे भाषाई एकता एवं आदान-प्रदान का मार्ग प्रशस्त होता है।

(३) अनुवादक को धैर्यवान, लगनशील, निष्ठावान, विवेकवान तथा अथक श्रम-साधक होना चाहिए। इससे राष्ट्रीय एकता के मार्ग में आने वाले भ्रमों का निवारण होता है और लक्ष्य की निश्चित प्राप्ति होती है।

(४) अनुवादक को अनुवाद के उपकरणों की, कोश-विज्ञान, कोशों के प्रकार, कोशों को देखने की कला, पारिभाषिक शब्दावली, थिसॉरस, विभिन्न शब्दावलियों की उपलब्धि, कम्प्यूटर अनुवाद की अवधारणा तथा सीमाओं और शक्तियों की अद्यतन जानकारी भी होनी चाहिए। इससे राष्ट्रीय एकता के लिए सभी आधुनिक उपायों की मदद ली जा सकती है।

(५) नए शब्दों के आगमन, गठन, प्रयोग-अनुप्रयोग से, भी शब्द निर्माण की प्रक्रिया तथा आवश्यकता से भी अनुवादक को अवगत होना चाहिए। तभी वह संस्कृतियों में प्रवेश कर सकता है तथा उन्हें परस्पर जोड़ ही सकता है।

(६) अनुवादक को 'स्रोत भाषा' के मुहावरों-लोकोक्तियों की, विशिष्ट प्रयोगों की, सूक्तियों, कथनों की गहन समझ बनानी चाहिए। इस प्रकार के असामान्य प्रयोग भाषा की शक्ति होते हैं। उनके मर्म को समझे बिना उसका अनुवाद दुष्कर और जोखिम-भरा होता है। अतः पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। सांस्कृतिक समन्वय एवम् समभाव की रचना इसी आधार पर संभव हो सकती है।

(७) अनुवादक को अनुवाद कार्य के माध्यम से अनुवाद-अनुशासन की तथा अनुवादक समुदाय की विश्वसनीयता को बनाए रखने का अथक प्रयास करना चाहिए। यदि यह विश्वसनीयता खंडित होती है तो राष्ट्र को इसका भारी नुकसान उठाना पड़ता है। अनुवाद एवं अनुवादक को राष्ट्र की अखंडता बनाए रखने में रचनात्मक योगदान देना होता है।

अतः कहा जा सकता है कि इन गुणों के अभाव में कोई भी अनुवादक, एक सफल अनुवादक की श्रेणी में नही आ सकता। ऐसे में अनुवाद भी राष्ट्रीय एकता के लिए सशक्त भूमिका नहीं निभा सकता।

आधुनिक युग, संचार-क्रांति तथा सूचना

प्रौद्योगिकी का युग है। इस संदर्भ में आज अनुवाद की प्रासंगिकता असंदिग्ध है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्रों में जिस प्रकार निरंतर उन्नति एवं प्रगति होती जा रही है, सम्पूर्ण विश्व सिकुड़ता चला जा रहा है। भूमंडलीकरण की अवधारणा एवं विश्वग्राम की संकल्पना का आधार 'संचार' तथा 'अनुवाद' को माना जा रहा है। आज जिस प्रकार ज्ञान-विज्ञान का क्षितिज विस्तृत होता जा रहा है वैसे ही देश-विदेश के अनेक भाषा-भाषी समुदायों का मिलाप भी सम्भव होता जा रहा है। ज्ञान-विज्ञान के विश्व-व्यापी प्रचार-प्रसार से मानव चेतना नए आयामों को छू रही है। विश्व बन्धुत्व एवं परस्परिक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने के लिए 'अनुवाद' उपयोगी सिद्ध हो रहा है। अनुवाद की इसी निरंतर बढ़ती प्रासंगिकता के कारण भारत सरकार को ''राष्ट्रीय अनुवाद मिशन'' का गठन करना पड़ा। उच्च शिक्षा का भारतीय भाषातरण एवं कालजयी भारतीय साहित्य का भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद देश की एकता को, समन्वय और समभावों को सशक्त बनाएगा। परस्पर दाग-द्वेष को दूर कर एक आत्मीय समझदारी विकसित करेगा।

प्राचीनकाल में अनुवाद सर्जनात्मक साहित्य तक ही सीमित था, परन्तु आज अनुवाद हमारे जीवन-व्यवहार का एवं अनिवार्य हिस्सा बनता जा रहा है। वास्तविकता यह है कि अनुवाद, भाषाओं का न होकर संस्कृतियों का होता है। इस तरह अनुवाद दो संस्कृतियों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान का सशक्त एवं कल्याणकारी 'सेतु' बनता है। ऐसे में अनुवाद एक सांस्कृतिक सेतु का भी काम करता है। इसी लिए 'ट्रांसलेशन' केवल ट्रांसलेशन नही रहता अपितु 'ट्रांसरिलेशन' बन जाता है।

भारत में अनुवाद की बहुआयामी परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। संस्कृत के वैदिक, औपनिष्दिक तथा पौराणिक साहित्य से होती हुई यह अनुवाद परम्परा मध्यकाल तक चली आई। मध्यकाल में संतों ने संस्कृत और पालि के साहित्य, दर्शन, धर्म, नीति, वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण आदि के अनेक ग्रंथो का युगीन भाषा में अनुवाद कर जनजागरण किया। वहीं १९वीं शताब्दी में भारतीय प्राचीन ग्रंथों के अनुवाद के साथ-साथ पश्चिमी साहित्य और विशेषकर अंग्रेजी के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों के भी अनुवाद हुए। भारतीय साहित्यकारों ने अंग्रेजी, संस्कृत, बंग्ला, मराठी, गुजराती, तेलगु, तमिल, मलयालम, पंजाबी, उड़िया आदि भाषाओं के साहित्य को हिन्दी में अनूदित किया। इस प्रकार समग्रतः देखें तो राजनैतिक चेतना, राष्ट्रीय एकता, अखण्डता तथा सांस्कृतिक नवजागरण में अनुवादकों तथा अनुवाद ने निश्चित ही युगांतरकारी कार्य किया है।

आज अनुवाद मनुष्य के जीवन-यापन के सन्दर्भ में भी उपयोगी सिद्ध हो रहा है। वरिष्ठ या कनिष्ठ अनुवादक, तत्काल भाषांतरणकर्ता, हिन्दी अधिकारी, प्राध्यापक, भाषा निदेशक, उपनिदेशक, सहायक निदेशक, राजभाषा अधिकारी, समाचारवाचक, संवाददाता, संपादक, विज्ञापन लेखक, कम्प्यूटर अनुवादक, बैंक अधिकारी, आदि अनेक पदों पर अनुवादकों की नियुक्तियाँ होती या हो सकती हैं। केन्द्र सरकार या राज्य सरकार के कार्यालयों, बैंकों, अस्पतालों, रेलवे, एयर लाइंस, पर्यटन, संसद, विधान सभाओं, राजदूतावासों, अकादमियों, प्रकाशन संस्थानों, सरकारी प्रेस, रेडियो, दूरदर्शन, केबल, विज्ञापन एजेंसियों, शिक्षण- प्रशिक्षण संस्थानों में विज्ञापन-तकनीक तथा प्रौद्योगिकी से सम्बद्ध कार्यालयों, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, भाषा सम्बन्धी निदेशालयों तथा संस्थानों, विश्वविद्यालयों, स्कूलों तथा जनसम्पर्क आदि कार्यालयों, होटलों, प्रदर्शनियों, पुस्तकालयों, खेलों, बाजार भावों, वित्त-वाणिज्य, अर्थशास्त्र में, बीमा, कोश-विज्ञान में पारिभाषिक शब्दावली बनाने वाली संस्थाओं में तथा साहित्य आदि अनेक क्षेत्रों में अनुवाद की उपादेयता एवं प्रासंगिकता असंदिग्ध है। आने वाले समय में अनुवाद की प्रासंगिकता निरंतर बढ़ेगी और मानव जाति के उद्धार तथा कल्याण में इसकी भूमिका और अधिक रचनात्मक होगी। अनुवाद का चैतरफा विकास राष्ट्र की एकता को बल देगा, 'सहृदयता' के धरातल पर सभी को परस्पर जोड़ेगा।

अनुवाद की महत्ता एवं उपयोगिता इस बात से भी प्रकट होती है कि भारत सरकार ने 'अनुवाद' को बढ़ावा देने के लिए 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' की स्थापना की है। यह भारत सरकार की एक पहल है जिसका उद्देश्य ज्ञान-आधारित विषयों का संविधान की अष्टम सूची में शामिल भाषाओं में अनुवाद कराना है। 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' की संकल्पना का विचार भारत के प्रधानमंत्री के एक 'वक्तव्य' से उदित हुआ है, जिसके अन्तर्गत उन्होंने

इस बात पर बल दिया है कि ज्ञान के विविध क्षेत्रों में जानकारी के लिए उसका अनूदित पाठ लोगों तक पहँचना आवश्यक है। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता में अनुवाद अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। 'राष्ट्रीय एकता मिशन' की फरवरी २००६ में दिल्ली में एक सभा के माध्यम से शुरुआत हुई, तब प्रो. उदयनारायण सिंह, निदेशक भारतीय भाषा संस्थान द्वारा कार्यक्षेत्र के मुख्य मसौदे की रूपरेखा तैयार की गई। इस संस्था के उद्देश्य है - तकनीकी एवं वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण करना, अनुवाद-शिक्षण, अनुवाद एवं अनुवादकों की उपलब्धता के विषय में जानकारी देना, अनुवाद एवं अनुवादकों तक अपनी पहुँच सुनिश्चित कर उसका प्रचार प्रसार करना एवं अनुवाद कार्य को प्रोत्साहित करना और जनता तक पहुँचाना। 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' के इन महत्वपूर्ण प्रयासों से ग्रामीण एवं कमज़ोर वर्ग के वे छात्र लाभान्वित होते हैं, जिनकी पहुँच मूल पाठ तक कम होती है क्योंकि वे अधिकांशतः अंग्रेजी में होते हैं। इस संस्था के द्वारा विभिन्न विषयों की जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक, व्यक्तियों को भी लाभ प्राप्त होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' केवल अनुवाद का ही प्रचार-प्रसार नही कर रहा है, अपितु वह राष्ट्रीय-एकता को अधिक मजबूत कर रहा है।

अनुवाद के अन्तर्गत जिन विभिन्न क्षेत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता को बल मिलता है, वे इस प्रकार हैः-

(१) साहित्यिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता

(२) जनसंचार माध्यमों में अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता

(३) वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता

(४) वाणिज्यिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता

(५) भाषा-शिक्षण में अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता

(६) सामाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकता

१. साहित्यिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकताः- ज्ञान साहित्य के अनुवाद की अपेक्षा सर्जनात्मक साहित्य का अनुवाद अधिक जटिल एवं कठिन होता है। ज्ञान के साहित्य की माध्यम भाषा प्रायः अभिधा पर ही आश्रित रहती है। साहित्यिक अनुवाद को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। कोई इसे पुनर्रचना कहता है तो कोई इसे पुनसर्जन या अनुसर्जन। रचनाकार अपने भावों और विचारों को रचना में बद्ध करता है तो वह सृजन करता है और जब अनुवादक उसे दूसरी भाषा में अभिव्यक्त करता है तो वह पुनसर्जन कहलाता है। मूल कृति के अन्तर्गत संवेदना एवं शिल्प के स्तर पर जो विशेषताएँ होती है, अनुवादक उन्हीं विशेषताओं को अपने अनुवाद में पुनसृजित करता है। भारतीय योग दर्शन में एक विशेष प्रक्रिया - 'परकाया प्रवेश' का उल्लेख मिलता है, जिसके द्वारा योगी अन्य मनुष्यों के शरीर में प्रवेश कर उसके अनुभवों का स्वंय अनुभव कर सकता है। साहित्य के अनुवादक को योग समाधि के द्वारा 'परमानस प्रवेश' की साधना करनी होती है जो असाध्य नहीं तो दुःसाध्य अवश्य है। यही क्रिया इस सह-अनुभूति की क्रिया से जोड़ती हं। यही 'स्व' अस 'पर' के भेद से दूर ले जाती है।

साहित्यिक अनुवाद को दो भागों में बाँटा गया है - पद्यानुवाद एवं गद्यानुवाद। पद्यानुवाद के अन्तर्गत अनुवादक को कुछ बातों का ध्यान रखना पड़ता है कि लक्ष्य भाषा के अन्तर्गत अनूदित रचना में न तो फालतू शब्द हों और न ही उसकी भाषा आडम्बरपूर्ण हो। उसमें यति, विराम, का उपयोग होना चाहिए। बिम्ब, प्रतीक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक तत्वों का अनुवाद एवं अलंकारानुवाद सटीक होना चाहिए, साथ ही उसमें लय एवं छन्द भी मूल के अनुरूप होने चाहिएँ। पद्यानुवाद के अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण कृतियों का अनुवाद हुआ है जैसे सर्वप्रथम तुलसी कृत 'रामचरितमानस' का उड़िया, कन्नड़, कुमाऊँनी, गुजराती, तमिल, पंजाबी, मराठी, मलयालम, मैथिली, सिन्धी, हरियाणवी, आदि प्रान्तीय भााषाओं में सहज एवं बोधगम्य अनुवाद हुआ है। आधुनिक काल में जीवनानंद दास की कविताओं को 'स्वदेश भारती ने, विष्णु डे की कविताओं को भारत भूषण अग्रवाल ने बंग्ला में अनुवाद किया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं को 'रवीन्द्र कविता कानन' के नाम से सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने अनूदित किया। प्रसाद कृत 'कामायनी' का तेलगु में डॉ. पांडुरंग राव के अलावा भी वाविलात सामयाजुलु ने अनुवाद किया। इन्होंने 'कामायनी' के अतिरिक्त प्रसाद कृत 'आंसू' का भी अनुवाद किया। वर्तमान समय में हिन्दी भाषी केवल अनुवाद के माध्यम से ही शरतचन्द्र, आशापूर्णदेवी,

महाश्वेता देवी, विमल मिश्र, रवीन्द्रनाथ टेगोर आदि महत्वपूर्ण साहित्यकारों को जान पाते हैं और अन्य भाषा-भाषी जयशंकर प्रसाद, महादेवी, निराला और प्रेमचंद आदि साहित्यकारों को अनुवाद के माध्यम से जान पाते हैं। गद्यानुवाद के अन्तर्गत अनुवाद छन्द, लय और ध्वन्यात्मकता के बन्धन से मुक्त होता है और साथ ही पंक्ति बंधन से भी मुक्त होता है। वह मूल भाव को अधिक पंक्तियों में भी स्पष्ट कर सकता है। गद्यानुवाद की कुछ प्रसिद्ध अनूदित रचनाएँ हैं जैसे सियारामशरण गुप्त कृत 'नारी' को सुधाकांत राय ने, अमृतलाल नागर कृत 'बूँद और समुद्र' को 'बिंदुओ सिंधु' नाम से अर्चना कुमार ने, प्रेमचन्द रचित 'गोदान' और 'निर्मला' का अनुवाद चित्रा देवी ने बंग्ला भाषा में किया। तेलुगु में आचार्य राव ने अमृतलाल नागर के उपन्यास 'अमृत और विष' का 'अमृतम्-विषम्' नाम से अनुवाद किया। हिन्दी उपन्यासकार जैनेन्द्र के उपन्यासों जैसे सुनीता, कल्याणी, सुखदा, त्यागपत्र, एवं जयवर्धन का अनुवाद पुराणम् कुमार राघव शास्त्री ने इन्हीं नामों से किया। इसी क्रम में प्रेमचन्द रांगेय राघव, भगवतीचरण वर्मा आदि के भी उपन्यास तेलुगु भाषा में अनूदित हुए।

उपर्युक्त पद्यानुवाद एवं गद्यानुवाद के कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुवाद ने हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच एक सेतु के रूप में कार्य किया एवं कर रहा है। अनुवाद वर्तमान दौर में एक सशक्त एवं प्रभावकारी विधा के रूप में सामने आया है। वेशभूषा, खान-पान, विश्वास-अंधविश्वास, टोने-टोटके, रीति-रिवाज, दार्शनिक चिंतन, भक्ति, परम्परा, तथा साहित्यिक मान्यताओं आदि की दिशा में कृतियों के अनुवाद ने 'एकत्व' स्थापित किया है।

२. जनसंचार माध्यमों में अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकताः- अनुवाद के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है - जनसंचार माध्यमों में अनुवाद। आज की दौड़-भाग भरी ज़िन्दगी में जनसंचार माध्यमों में अनुवाद की माँग बढ़ी है। संचार शब्द अंग्रेजी के कम्यूनिकेशन, शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। इसका अर्थ है सूचना देना, संदेश देना एवं सम्प्रेषण संचार के पहले 'जन' शब्द जुड़ने से 'जनसंचार' शब्द बना है। इसका अर्थ है जनता तक संदेश या सूचना पहुँचाना। जनसंचार के माध्यमों को दो भागों में विभाजित कर सकते है - प्रिन्ट माध्यम एवं इलैक्टॅड्रानिक माध्यम। प्रिन्ट मीडिया के अन्तर्गत समाचार पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें, पोस्टर, पम्फलेट, बैनर, वॉल-राइटिंग आदि आते हैं। इलैक्ट्रानिक माध्यम के अन्तर्गत रेडियो, टी.वी., फिल्में, कम्प्यूटर, इन्टरनेट मोबाइल, वॉकी-टॉकी, पेज़र, फैक्स, टेलीप्रिंटर आदि आते हैं।

'प्रिन्ट माध्यम' के अन्तर्गत 'समाचार पत्र' एक सशक्त माध्यम है । इसनें समाज में अपनी महत्वपूर्ण जगह बनाई है। १८२० में जुगल किशोर के सम्पादन में हिन्दी का पहला समाचार पत्र 'उदंत मार्तण्ड' कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में 'समाचार-पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका महत्वपूर्ण थी। वर्तमान समय में हर प्रदेश में अनेकों प्रादेशिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं जिनमें राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक विषयों से सम्बद्ध सूचनाओं एवं जानकारियों का अनुवाद हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं में होता है। आज लगभग ५५ हजार से अधिक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन नियमित रूप से हो रहा है। इस प्रकार समाचार पत्र-पत्रिकाएँ अनुवाद के माध्यम से राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में आगे बढ़ रही हैं। कुछ समाचार पत्रों के नाम हैं - बंग्ला के 'आजकाल', 'वर्तमान' आदि। गुजराती के 'गुजराती समाचार', 'दिव्य भास्कर', कन्नड़ के 'जनतावासी', 'प्रभा', 'उषाकिरण' आदि। मराठी के 'कैसरी', 'देशदूत', 'महाराष्ट्र टाइम्स' आदि। समाचार पत्रों के पश्चात् 'पुस्तकें' ज्ञान-विज्ञान का ऐसा खज़ाना हैं जो कभी समाप्त नहीं हो सकता। हिन्दी एवं अन्य भाषाओं में अनूदित पुस्तकें राष्ट्र के वैचारिक परिदृश्य के निर्माण में सहायक होती हैं। इसी प्रकार अनूदित, इश्तिहार भी सूचना का प्रसार करने एवं राष्ट्रीय एकता को कायम करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

'इलैक्ट्रानिक माध्यम' 'रेडियो' का आविष्कार सर्वप्रथम १८९५ में इटली के मार्कोनी ने किया। रेडियो का भारत में आगमन सन् १९२३ में हो गया था। आज़ादी के पश्चात् रेडियो सरकार के अधीन आया। वर्तमान समय में रेडियो के २०० से भी अधिक प्रसारण केन्द्र है, ,जिनके द्वारा देश की ९८.८ प्रतिशत जनता इस प्रसारण सीमा में आती है। आज भारत की अनेक स्थानीय बोलियों और भाषाओं में रेडियो का प्रसारण होता है। इस प्रकार हम यह कह सकते है कि रेडियो सम्पूर्ण देश की जनता को एकता के सूत्र में बांधे रखता है। टी.वी. का पहला उपकरण

१९२५ में बेचर्ड ने बनाया। भारत में दूरदर्शन की शुरुवात १५ सितम्बर १९५९ में यूनेस्को की सहायता से हुई। आज के दौर में केबल के आने से भारत में चैनलों की भरमार हो गई है। किन्तु आज प्रादेशिक भाषाओं के चैनलों के आने से स्थानीय जनता की रुचि टी.वी. में बढ़ी है। आज प्रत्येक घर में टी.वी. सुलभता से उपलब्ध है, इसके माध्यम ये वे सूचनाएँ प्राप्त करते हैं और अपना मनोरंजन भी करते हैं। टी.वी. पर आने वाले कार्यक्रमों में भी राष्ट्रीय एकता की झलक मिलती है। बंग्ला-हिन्दी अनूदित धारावाहिकों में श्रीकांत, चरित्रहीन, मुजरिम, हाजिर, राजदेवता, प्रतिश्रुति आदि उल्लेखनीय है। इसी प्रकार मालगुडी डेज, भारत एक खोज, टीपू सुल्तान, रामायण, महाभारत आदि ऐसे धारावाहिक हैं जिसका अनेक प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद हुआ। टी.वी. में राष्ट्रीय एकता का उदाहरण हमें आजकल प्रसारित हो रहे कार्यक्रम 'कौन बनेगा करोड़पति' में भी मिलता है। हिन्दी में बना यह धारावाहिक अब भोजपुरी में और बंग्ला में भी प्रसारित हो रहा है। भोजपुरी में शत्रुघ्न सिन्हा और बंग्ला मे सौरभ गांगुली इसके 'होस्ट' हैं। टी.वी. के अतिरिक्त कम्प्यूटर एवं इंटरनेट भी राष्ट्रीय एकता में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। आज कम्प्यूटर भारत की अनेक प्रादेशिक भाषाओं में उपलब्ध है। जैसे मराठी, असमिया, बंग्ला, तेलुगु, तमिल, गुजराती, मलयालय, पंजाबी आदि। वर्तमान समय में कम्प्यूटर के माध्यम से 'अनुवादकार्य' भी प्रचुर मात्रा में किया जा रहा है, किन्तु यह सौ फीसदी सही नही है। कम्प्यूटर सिर्फ शब्दानुवाद करता है, सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों को सुरक्षित रखने में यह अनुवाद अभी सक्षम नही है। भविष्य में ऐसा हो सकता है कि कम्प्यूटर 'अनुवाद कार्य' में दक्ष हो जाए। आज इंटरनेट 'वैसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को सार्थक सिद्ध कर रहा है। इसके माध्यम से व्यक्ति कहीं भी कोई भी सूचना मिनटों में पा लेता है। और वह भी अपनी-अपनी भाषा में। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जनसंचार के सभी माध्यमों में अनुवाद राष्ट्रीय एकता को मज़बूत कर रहा है। समाचारों में, विज्ञापनों में, लेखों और अग्रलेखों में, सम्पादकीय में, फीचरों में और इस प्रकार साक्षात्कार आदि में भी हम इसी अखिल भारतीय एकता को देख सकते हैं।

३. वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकताः- मनुष्य के जीवन में जैसे-जैसे विज्ञान का महत्व बढ़ा है, वैसे-वैसे विज्ञान के क्षेत्र में अनुवाद की आवश्यकता भी बढ़ी है। विज्ञान की भाषा को 'सार्वभौमिक भाषा' कहा जाता है क्योंकि वैज्ञानिक सूचनाओं का आधार तथ्य एवं प्रमाण होते हैं। विज्ञान के अन्तर्गत अनेक विषय होते हैं जैसे - भौतिकी, रसायनिक, वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, भू-विज्ञान, अभियांत्रिकी, आयुर्विज्ञान आदि। भारत में वैज्ञानिक अनुवाद के स्तर दो है - भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी से अनुवाद और विभिन्न विदेशी भाषाओं से अंग्रेजी में अनुवाद। आज भारत में विज्ञान के क्षेत्र में अध्ययन और अनुसंधान की मूल भाषा अंग्रेजी है। शिक्षा के क्षेत्र में भी स्नातकोत्तर विज्ञान-शिक्षा की भाषा अंग्रेजी ही है। केवल स्कूली शिक्षा एवं स्नातक स्तरीय शिक्षा भारतीय भाषाओं में है। प्रशासनिक प्रोत्साहन न मिलने के बावजूद हिन्दी में प्रौविज्ञान में बहुत लिखा गया है। १९९८ तक केवल १३ भारतीय भाषाओं में प्रौविज्ञान विषयक लगभग २५,००० पुस्तकें एवं हिन्दी में २००० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थी, और १९९८ के बाद इस प्रकाशन संख्या में वृद्धि हुई है।१ वैज्ञानिक और तकनीकी ग्रंथ के अनुवाद के क्षेत्र में पंत नगर कृषि वि.वि. का पाठ्यपुस्तक वाला प्रयोग भी स्वीकार करने योग्य है। जैसा कि सभी जानते हैं कि, उस कृषि विश्वविद्यालय में कृषि एवं पशु-पालन से सम्बंधित उपाधिस्तरीय पाठ्यक्रम हिन्दी माध्यम से चलता है। इसके लिए उन्हें हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकें तैयार करनी पड़ी हैं। अब भी ये तैयार की जा रही है ।२. आज का युग विज्ञान एवं तकनीक का युग है, विज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर उन्नति हो रही है। विज्ञान की स्थापनाओं एवं निष्कर्षो को अंग्रेजी एवं अन्य विश्व की भाषाओं में अनूदित किया जा रहा है, किन्तु हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के संदर्भ में अभाव ही है। आज उन वैज्ञानिकों एवं प्रौद्योगिकी के विशेषज्ञों की आवश्यकता है जो अपना भाषण भारतीय भाषाओं में दे। सम्पूर्ण राष्ट्र की उन्नति एवं एकता के लिए वैज्ञानिक विषयों का हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद होना आवश्यक है, जिसके लिए प्रशासन को प्रयास करने होंगे। इससे भी राष्ट्रीय एकता और सशक्त हो सकेगी।

४. वाणिज्यिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकताः-

कोई भी देश यदि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न

है, तो उसे शक्तिशाली देश माना

१ स्मारिका-सातवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलल, विश्वमोहन तिवारी, पृ १४५

२ 'अनुवाद' त्रैमासिक का 'अनुवाद-शतक' विशेषांक, संख्या १०२-१०३, - डॉ. पूरनचंद टंडन, पृ ६१

जाता है। आज २१वी. सदी में बाजाऱवाद, औद्योगिकरण, लघु-कुटीर उद्योगों के विकास से वाणिज्य और व्यापार की भाषा का भी संवर्द्धन हुआ है। वाणिज्य और व्यापार की भाषा के संवर्धन के साथ-साथ वर्तमान समय में अनुवाद की मांग और महत्ता दोनों ही बड़ी हैं। वाणिज्यिक साहित्य के अन्तर्गत वाणिज्य, व्यापार, बैंक, बीमा, विज्ञापन, लेखा, क्रय-विक्रय आदि आते हैं। इन सबकी शब्दावली की संरचना करते समय अनुवादक का लक्ष्य भाषा में अधिकार होने के साथ-साथ विषय का विशेषज्ञ होना भी आवश्यक है। वाणिज्यिक साहित्य की भाषा प्रायः तकनीकी, अर्धतकनीकी होती है। बाज़ार तीन प्रकार के माने गए हैं - वस्तु बाज़ार, स्कंध बाज़ार और मुद्रा बाज़ार। इन सभी बाज़ारों की सूचनाओं के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद से देश के राज्यों के विभिन्न भाषा-भाषी लोग लाभान्वित होंगे, एक-दूसरे राज्यों से व्यापारिक सहयोग मज़बूत होगा और राष्ट्रीय एकता को बल मिलेगा। वाणिज्यिक साहित्य के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है - 'बैंक'। आज बैंकों में हिन्दी के साथ-साथ अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के प्रति रुचि एवं सम्मान के माहौल को सदैव बरकरार रखने की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम उठाए जा रहे हैं। ग्राहक की भाषा में अगर बैंक का कार्य किया जाए तो कहीं अधिक प्रगति की जा सकती है। विभिन्न राज्यों में ग्रामीण इलाकों में तथा अंचलों में बैंकिग व्यवहार से सम्बद्ध समस्त सामग्री (पत्र, परिपत्र, चैक-बुक, प्रचार सामग्री, पास बुक आदि।) का संबद्ध क्षेत्रीय भाषा में अनुवाद उपलब्ध कराया जाना राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में सार्थक सिद्ध होगा। वाणिज्यिक अनुवाद की उपादेयता एवं महत्व के संदर्भ में डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी का कथन है - विज्ञप्तियों, अनुदेशों, पत्रों, देयकों, विपणन के माध्यमों, यातायात के संसाधनों, व्यापार की गतिविधियों आदि में अनुवाद की उपादेयता से भला कौन इंकार कर सकता है? निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से लेकर दैनिक बाज़ार तक एवं शेयर बाज़ार से लेकर तमाम वित्तीय संस्थाओं तक जिस व्यावसायिक भाषा का विस्तार है, उसकी सम्यक प्रयुक्ति में अनुवाद की अप्रतिम भूमिका रहती है।१. इस प्रकार कहा जा सकता है कि वाणिज्यिक साहित्य के अनुवाद के माध्यम से विभिन्न ग्रामों एवं राज्यों के स्तर पर सम्बन्ध स्थापित होता है, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एकता भी मज़बूत होती है।

१. अनुवाद - विज्ञानः संपादक - डॉ. बलेन्दु शेखर तिवारीः पृ. २४-२५

४. भाषा शिक्षण में अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकताः- वास्तव में भाषा-शिक्षण का सदैव कोई न कोई महत्वपूर्ण प्रयोजन अवश्य होता है। भाषा शिक्षण, शिक्षार्थी-सापेक्ष होता है। वर्तमान समय में प्रत्येक मनुष्य के लिए यह आवश्यक हो गया है कि अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त कम से कम एक अन्य भाषा का ज्ञान हो। भाषा-शिक्षण के लिए 'प्रत्यक्ष विधि' को सर्वक्षेष्ठ माना गया है। कृष्ण कुमार गोस्वामी इस विधि को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि - ''प्रत्यक्ष विधि सर्वाधिक श्रेष्ठ मानी गई है। इसमें मातृभाषा को मध्यस्थ बनाए बिना शिक्षार्थी को अन्य भाषा सिखाई जाती है। इसमें मातृभाषा की सहायता नही ली जाती और शिक्षार्थी सीखी जाने वाली भाषा के सीधे सम्पर्क में आकर मौखिक अभ्यास के द्वारा भाषा सीखता है। शिक्षार्थी को ड्रिल के द्वारा लक्ष्य भाषा की संरचनाओं का अभ्यास कराया जाता है। वास्तव में वाक्यों को बार-बार सुनना, उनका अभ्यास करना और उन्हें आदत के रूप में ढाल लेना प्रत्यक्ष विधि है।''१. इस प्रकार भाषा का शिक्षण कर व्यक्ति अनुवाद के माध्यम से अपनी सभी जिज्ञासाओं को शांत करता है। अन्य भाषा को कोई व्यक्ति 'सम्पर्क भाषा' के रूप में सीखता है तो कोई अपनी 'रुचि' के लिए सीखता है, कोई जीवन में आर्थिक सम्पन्नता अर्थात 'व्यवसाय' के लिए सीखता है तो कोई दूसरी भाषा में रचित 'साहित्य' को जानने के लिए, तो कोई 'तुलनात्मक साहित्य के अध्ययन' के लिए सीखता है, तो कोई ज्ञान-विज्ञान की नई-नई जानकारियों, को जानने के लिए भाषा को सीखता है। भाषा-शिक्षण के पश्चात् व्यक्ति अनुवाद कार्य मे प्रवृत्त होता है। आज ज्ञान-विज्ञान की हज़ारो पुस्तकों को हम केवल अनुवाद के माध्यम से ही पढ़ पाते हैं। उसी के माध्यम से हम देश,

संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान से जुड़ते हैं। भाषाई

संस्कार का विकास भी इसी से संभव हो पाता है।

यदि किसी राष्ट्र में एक भाषी व्यवस्था है तो केन्द्र से लेकर छोटी इकाई तक केवल एक ही भाषा का प्रयोग शिक्षा, व्यापार, राजनीति, जनसंचार, प्रशासन आदि में होगा और वहाँ

१. अनुवाद विज्ञान की भूमिका - कृष्ण कुमार गोस्वामी, पृ ३९६

प्रांतीय भाषा का कोई महत्व नहीं होगा। इसके विपरीत जहाँ किसी राष्ट्र में बहुभाषी व्यवस्था है तो वहाँ सरकार अनेक स्तरों पर अनेक भाषाओं की व्यवस्था करती है। भारत बहुभाषी देश है। भारत के संविधान में २२ भाषाओं को सम्मिलित किया गया है। 'अनुवाद' के पठन के द्वारा ही व्यक्ति राष्ट्र की भाषाओं में निहित अमूल्य जानकारियों से अवगत हो पाता है और इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषा-शिक्षण में अनुवाद राष्ट्र की एकता का भी परिचायक है। डॉ. नारायणदत्त पालिवाल अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी का प्रयोग' में विभिन्न भाषाओं में निहित एकता के सन्दर्भ में कहते हैं ---'' हमारे देश में कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक तथा गुजरात से लेकर नागालैण्ड तक अनेक भाषाएँ, उपभाषाएँ, बोलियाँ तथा उपबोलियाँ ं बोली जाती हैं। इन भाषओं एवं बोलियों में विभिन्नता के होते हुए भी एकता के दर्शन होते हैं। प्राचीनकाल से ही भावनात्मक एकता के संदेश के साथ-साथ भारतीय साहित्य में देश की सांस्कृतिक गरिमा, यहाँ की सभ्यता, यहाँ के आदर्श और जीवन के शाश्वत मूल्यों को समान रूप से वाणी मिली है। यही कारण है कि सभी भारतीय भाषाएँ भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में इस धरती पर सांस्कृतिक एकता की पावनगंगा प्रवाहित करती हैं।''

५. समाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद एवं राष्ट्रीय एकताः- 'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति के मूल में है - संस्कार और भूमि, जलवायु के अनुकूल आचार-विचार, कार्यकलाप, जीवनशैली और जीवन दर्शन से गृहीत प्रभाव। यही घटक समन्वित रूप से एक देश की संस्कृति को दूसरी देश की संस्कृति से अलग पहचान प्रदान करते हैं।१. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृति के विषय में कहते हैं कि -'' आर्थिक व्यवस्था, संघटन, नैतिक परम्परा और सौन्दर्य-बोध को तीव्रतर करने की योजना में सभ्यता के चार स्तम्भ हैं। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से संस्कृति बनती हैं।२. सामाजिक-सांस्कृतिक

१. अनुवाद पत्रिका - अंक १३३, १३४, पृ १३

२. अशोक के फूल - हजरी प्रसाद द्विवेदी, पृ ८१

विषयों से तात्पर्य उन विषयों से है, जिनका सम्बन्ध मानविकी से है। इतिहास, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, धमर्, नीति, दर्शन आदि ऐसे ही विषय हैं। भारत जैसे बहुभाषी, बहुजातीय, देश में अनेक संस्कृतियों, धर्मों एवं आचारों-विचारों का समन्वित रूप मिलता है। जिस प्रकार गहन, गम्भीर विशाल सागर अनेक नदियों के जल को साथ लेकर चलता है, उसी प्रकार एक देश की संस्कृति में अनेक प्रादेशिक संस्कृतियों का मिश्रण होता है। हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक सामाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद के माध्यम से व्यक्ति विभिन्न संस्कृतियों के बारे में जानता है। भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता के दर्शन होते हैं, और यह राष्ट्रीय एकता का ही परिचायक भी है। सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण अनुवाद इस प्रकार हैं - अज्ञेय द्वारा अनूदित रवीन्द्रनाथ, रोम्यां रोलां। प्रेमचन्द द्वारा अनूदित टालस्टाय, शेख सादी, नागार्जुन-मेघदूत, माखनलाल चतुर्वेदी - 'कृष्णार्जुन युद्ध, महादेवी - ऋग्वेद, कालिदास के अंश आदि। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों का प्रसार होता है और सामाजिक सद्भावना को बल मिलता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में 'अनुवाद' अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 'एकता' ही वह तत्व है, जिसके माध्यम से कोई भी राष्ट्र उन्नति के चरम शिखर तक पहुँचता है। आज अनुवाद एक स्वतंत्र विधा एवं जीवनोपयोगी विद्या के रूप में सामने आया है। अनुवाद जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाहित है। अनुवाद की महत्ता इस बात से भी स्पष्ट हो जाती हैं कि सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' की स्थापना की गई, जिसका उदे्श्य 'अनुवाद-कार्य' को बढ़ावा देना है। अनुवाद के माध्यम से ही भारतीय संदर्भ में वसुधैव कुटुम्बकम्, की अवधारणा सार्थक सिद्ध हो रही है।

'साहित्यिक अनुवाद' के माध्यम से मनुष्य किसी भी प्रादेशिक भाषा के साहित्य से परिचय प्राप्त करता है, तो 'संचार माध्यमों में

अनुवाद' के माध्यम से वह समस्त राष्ट्रीय, आर्थिक, व्यापारिक, सामाजिक-सांस्कृतिक, सूचनाएँ प्राप्त करता है और अपना मनोरंजन भी करता है। 'वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद' के माध्यम से व्यक्ति देश में हो रही वैज्ञानिक गतिविधियों से रूबरु होता है। 'वाणिज्यिक अनुवाद' के माध्यम से व्यक्ति सभी राज्यों में हो रही व्यापारिक हलचलों की जानकारी प्राप्त करता है और राज्यों में व्यापारिक संम्बन्ध भी स्थापित होते हैं। 'भाषा-शिक्षण में अनुवाद' के माध्यम से व्यक्ति अपने अनेक प्रादेशिक भाषाओं में निहित ज्ञान से लाभान्वित होता है और 'सामाजिक-सांस्कृतिक अनुवाद' से व्यक्ति विभिन्न प्रादेषिक समाजों एवं संस्कृतियों की जानकारी प्राप्त करता है। यह सब देश की राष्ट्रीय एकता का ही परिचायक है। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि 'अनुवाद' देश को राष्ट्रीय एकता के सूत्रों में बांधता है।

राष्ट्रीय एकता की इच्छा, और राष्ट्र की उन्नति की कामना, राष्ट्रभाषा प्रेम को विकसित करने से ही होती है, तभी तो भारतेन्दु हरिश्चंद्र को कहना पड़ा था -

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल,।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ।।

किन्तु "निजभाषा" की उन्नति में अनुवाद की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। आज भाषा के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया पर जब हम विचार करते हैं तो पाते हैं कि वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने जो लगभग नौ लाख पारीभाषिक शब्द हिंदी में बनाए हैं, वह सब विदेशी भाषाओं के अवधारणात्मक शब्दों के समतुल्य हिंदी शब्द हैं जो अंग्रेजी भाषा से हिंदी में गढ़े गए हैं। ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार तथा प्रयोग-अनुप्रयोग के लिए इन शब्दों का राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता और एकता की दृष्टि से उल्लेखनीय महत्त्व है। अतः अनुवाद हमें हमारी राष्ट्रभाषाओं के प्रति प्रेम और दायित्व निर्वाह की प्रेरणा भी देता है।

अनुवाद वास्तव में आज के भारत की अनिवार्य जरूरत बन गया हैं। सिनेमा इसका सशक्त प्रमाण हैं जो डबिंग, टाइटलिंग, अनूदित रूप आदि के कारण पूरे देश को तो जोड़ ही रहा है, विदेशों में, बैठे स्वदेशियों और प्रवासी भारतीयों को भी एक सूत्र में बांध रहा है। मामला बाज़ारवाद का हो या चिकित्सा जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र का, योग का हो या हास्य का, व्यंग्य का हो या धर्म और साधना का, सभी में अनुवाद ने पूरे देश को जाड़ेने-बांधने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। धारावाहिकों के माध्यम से भारतीय भाषाओं की अनूदित कालजयी रचनाओं का संदर्भ हो या अखिल भारतीय स्तर पर प्रसारित-प्रदर्शित होने वाले वो समाचार हों जिनका स्रोत अंग्रेजी है और विभिन्न भारतीय भाषाओं में उनका अनुवाद युद्ध स्तर पर नियमित रूप से प्रैस-एजेंसियों में या प्राइवेट स्तर पर किया जाता है। विज्ञप्तियाँ हों या सरकारी-गैर सरकारी विज्ञापन, सूचनाएँ हों या मार्गदर्शन करने वाले निर्देश, प्रचार-प्रसार - सामग्री हो या नीति-निर्धारक सिद्धान्त, पर्यटन हो या गृह-सज्जा, खान-पान हो या वेशभूषा-आभूषण आदि, सभी में परस्पर प्रभावात्मकता पैदा करने तथा आदान-प्रदान करने का कार्य अनुवाद के माध्यम से ही हो रहा है। खेलों की दुनिया हो या आँखों देखा हाल, सीधे प्रसारण हो या समय-समय पर जारी किए जाने वाले सरकारी निर्देश, जनहित का मामला हो या राष्ट्रहित का, सभी में अनुवाद और अनुवादक की भूमिका निरंतर महत्त्वपूर्ण हो रही है।

आज हम पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के साहित्य और साहित्यकारों को जानते हैं तो केवल अनुवाद के कारण। आज हम भारतीय भाषाओं में उपलब्ध नाट्य साहित्य, कथा साहित्य, धार्मिक साहित्य, नीति साहित्य, विज्ञान साहित्य को जानते-पढ़ते हैं तो अनुवाद के कारण। अनुवाद हमें भारतीयता में उतारता है, लगातार डूबने और उसे आत्मसात करने की प्रेरणा देता है। अहंकार-मुक्ति और आत्म-विस्तार का सन्मार्ग भी प्रशस्त करता है।

'भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यासः एक विवेचनात्मक अध्ययन'

१.प्रो॰अशोक सिंह

कुलपति
संत गहिरा गुरू विष्वविद्यालय, सरगुजा,
अम्बिकापुर (छत्तीसगढ़)

२.डॉ॰ अपराजिता मिश्रा

प्रवक्ता
हिन्दी, ए॰ एस॰ वी॰ वी॰ इण्टर कॉलेज,
हरदोइ (उ॰ प्र॰)

हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील धारा के अन्तर्गत कुछ विशेष कवियों एवं साहित्यकारों का उन्मेष होता है जो साहित्य की इस धारा को ही नहीं बल्कि हिन्दी जगत के सम्पूर्ण इतिहास पर अपना अमिट छाप छोड़ने में सफल भी रहें हैं कुछ ऐसे ही विशेष व्यक्तित्त्व के परिचायक ''भैरव प्रसाद गुप्त'' हैं। ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। इन्होंने मानव-हित को सर्वोच्च माना है। मनुष्य, समाज एवं राष्ट्र के हेतु मूल्य पर आधारित साहित्य की रचना करना ही इनके उद्देश्यों में शामिल रहा है।

प्रेमचन्द के बाद के कथा-साहित्यकारों में यशपाल, अमृतराय, फणीश्वरनाथ 'रेणु' एवं नागार्जुन जैसे रचनाकारों के क्रम में 'भैरव प्रसाद गुप्त' का नाम अग्रणी है। 'नई कहानी' नामक आन्दोलन के संस्थापक भी रहे हैं। इन्होने उपन्यास के क्षेत्र में ही नहीं अपितु कहानी, कविता, नाटक संपादन एवं एक अच्छे अनुवादक के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गुप्त जी वामपंथ से प्रभावित होकर भी जनवादी चेतना से लैस हैं। ये आजादी के पश्चात् जो समाज में सामन्तवादी व्यवस्था थी उसका चित्रांकन जनवादी दृष्टिकोण के तहत् रखते हुए इन्होंने किया है। डॉ० राजेश्वर सक्सेना गुप्त जी के विषय में लिखते हैं, ''वे अंधेरे के विरूद्ध रोशनी की लड़ाई के कथाकार हैं हिन्दी के जनवादी कथा-साहित्य में भैरव प्रसाद एक दिशा निर्देशक और दिशा चालक की तरह अंग्रिम पंक्ति में खड़े हैं।''१

वे सर्वहारा वर्ग के रचनाकार हैं। उनके साहित्य में वर्ग आधारित विषमता एवं उनके संघर्षों को उद्घाटित किया गया है।

हिन्दी साहित्य के उपन्यास क्षेत्र में भैरव प्रसाद गुप्त का योगदान महत्वपूर्ण है। इन्होंने अपने उपन्यासों में सम्पूर्ण रूप में मानवीयता से परिपूर्ण वातावरण एवं उससे उद्भूत चेतना को अपने उपन्यासों में विशेष जगह दी है। इनके उपन्यासों का रचाव-बसाव समस्या से परिपूर्ण हैं किन्तु इन समस्याओं का उचित संधान वे मार्क्सवादी दृष्टि से करते है। ''भैरव प्रसाद गुप्त'' ने अपने उपन्यासों में न सिर्फ एक पक्ष को लिया है बल्कि जो भी एक व्यक्ति एवं उसके परिवेश से सम्बन्धित पक्ष होते हैं उन सभी का समायोजन इन्होंने अपने उपन्यास की धारा के अन्तर्गत

किया है। साहित्य के आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिकता पर भी अपना दृष्टिपात किया है।

''भैरव प्रसाद गुप्त'' समाज के प्रति प्रतिबद्ध उपन्यासकार हैं। इन्होने समाज का सामाजिक चित्रण बहुत ही मार्मिक ढ़ंग से अपने उपन्यासों में किया है। कुमारी प्रिया अम्बिका ने लिखा है कि, ''भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यासों में उनकी दृष्टि मार्क्सवादी है और उपन्यासों का विषय है- ''भारत का सामाजिक जीवन।''२

इनकी पहचान सामाजिक समस्याओं के सूक्ष्म चित्रण को लेकर बनी हुई है। ''गुप्तजी ने सामाजिक परिप्रेक्ष्य को लेकर अपनी जिन रचनाओं को प्रस्तुत किया है उनमें 'मशाल' उपन्यास महत्वपूर्ण है। यह उपन्यास सामन्तवादी एवं पूंजीपति वर्ग के लोगों के कारगुजारियों का पर्दाफाश करता है। ''मजदूर बस्तियों में एक ओर कांग्रेस के स्थानीय नेता पुलिस को साथ लिए मजदूरों को धमका रहे थे और दूसरी ओर जेल में हर तरह का अत्याचार कर गिरफ्तार मजदूरों से माफीना में पर दस्तखत की कोशिश चल रही थी।''३

वहीं दूसरी तरफ इसी उपन्यास के अन्तर्गत एक कांग्रेस के मंत्री का महज चुनाव में जीत पाने के लिए नरेन को मुस्लिम नाम को चुनने का जो सुझाव है, '' पालिसी से मजबूर होकर कभी-कभी हमें ऐसा काम करना पड़ता है।''४ इस प्रकार आज के मनुष्य की धनलोलुप दृष्टि ने उसे कितना अधम बना दिया है उसका चित्रांकन किया गया है।

भैरव प्रसाद गुप्त के सामाजिक उपन्यासों में दो पीढ़ियों का संघर्ष भी दिखाई देता है। यह संघर्ष युवा एवं पारम्पारिक पीढ़ियों को लेकर है। 'आग और आसूं' उपन्यास का नायक लल्लन है। (छोटे सरकार) अपने वर्ग एवं पारिवारिक मान्यताओं का निषेध करता है। लल्लन शिक्षित एवं नई चेतना से सम्पन्न युवा होने के कारण अपने पिता की सामन्ती प्रवृतियों का विरोध कर दासियों को मुक्त करना चाहता है। ''छात्रावस्था के समय शकुन्तला से लल्लन का प्रेम, नयी शिक्षा का प्रभाव तथा बड़े सरकार और उनके कारनामों से लल्लन का परिचय, ये सारी बातें उसे एक नये मनुष्य के रूप में ढ़लने में मदद देती हैं।''५

वहीं दूसरी तरफ भैरव प्रसाद गुप्त के सामाजिक उपन्यासों में साम्प्रदायिक भेद-भाव एवं धार्मिक आढम्बर दिखाई देता है। 'सती मैया का चौरा' उपन्यास में हिन्दु मुसलमान के बीच परस्पर विद्वेष को रेखांकित किये हैं। 'सती मैया के चौरे' के प्रसंग में हिन्दू एकजुट होकर मुस्लिम के घर की दीवार का निर्माण नहीं होने देते। मन्ने इस द्वेष की गम्भीरता को जानते हुए इससे होने वाले नरसंहार की कल्पना मात्र से सिहर जाता है। 'सती मैया का चौरा हिन्दुओं की धार्मिक भावना को भड़काया जायेगा...। अनपढ़ गंवार लोग भेड़ों की तरह भड़काने वालों के पीछे आंखे मूंदकर चलेंगे और फिर जाने क्या हो।'' इस प्रकार साम्प्रदायिक द्वेष की भावना को इंगित किया गया है।

भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यासों में नारी जीवन का विशेष महत्व रहा है। उनके सामाजिक उपन्यासों में नारी अपनी विशेष संदर्भों में प्रस्तुत हुई है। इनके उपन्यासों में पूर्वी उत्तर प्रदेश के रूढ़िग्रस्त समाजिक परिवेश किस प्रकार नारियां अपना वैधव्य जीवन झेल रही हैं उसका चित्रांकन किया गया है। उपन्यास 'गंगा मैया' में वैधव्य जीवन के यथार्थ को बड़ी ही मार्मिक ढंग़ से उजागर किया गया है। 'गोपी अपनी विधवा भाभी की सोचकर चिंतित होता है, उसे भाभी से सहानुभूति है। लेकिन क्रूर सामाजिक मान्यताओं से वह डरता भी है, इसलिए उसके अन्तस् में हिन्दू समाज की वर्ण व्यवस्था तथा रूढ़िगत मान्यताओं के विरूद्ध संघर्ष चलता है।''७ इस प्रकार भाभी जैसी नारियां हिन्दू समाज की कुरीतियों का शिकार बनती जा रही हैं इसका चित्रांकन किया गया है।

'भैरव प्रसाद गुप्त' ने नारी एवं पुरूष के बीच होने वाले परस्पर प्रेम एवं विवाह तथा पुनर्विवाह को भी अपने उपन्यासों का आधार बनाया है। वहीं दूसरी तरफ अपने उपन्यासों प्रताड़ना की शिकार एवं शोषित स्त्रियों का चित्रांकन मार्मिकता के साथ किया है। नारी-शोषण के अनेक रूपों को अनेक प्रकार से उद्‌घाटित किया है। 'आग और आंसू' नामक उपन्यास में दासियों का किस प्रकार शारीरिक शोषण किया जाता रहा है इसको दिखाया गया है। ''हवेली में जितनी औरतें थी, सबकी सब अपने दिनों में बड़े सरकार की सेवा में रह चुकी थीं।''८

वहीं 'सती मैया का चौरा' उपन्यास में मन्ने जिसका गाँव की बसमतिया से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है एवं जब इसके कारण वह गर्भवती हो जाती है तो बसमतिया को अपने मार्ग से विस्थापित करने के लिए भिखरिया की

मदद लेता हैं। बसमतिया जो एक निम्नवर्गीय चेतन से लैस नारी का प्रतिनिधित्व करती है सामन्ती व्यवस्था पर व्यंग्य की कराती चोट कर कहती है, ''डरो तुम, तुम्हारी बहुत लम्बी नाक है। हमें कभी किसी का डर नहीं रहा, न कभी रहेगा। जिसको डर हो, वह काहे को किसी से दिल लगाये।''९ इस प्रकार नारी एवं पुरूष की सामाजिक स्थितियों का चित्रण किया गया है।

'भैरव प्रसाद गुप्त' ने अपने उपन्यासों में आर्थिक विषमता से उपजी दुर्दशा का चित्रण किया है। 'सती मैया का चौरा' उपन्यास में पिअरी गांव की आर्थिक स्थिति को उजागर किया गया है। आजादी के बाद गांवों की स्थिति कैसी हो गयी है इस पर गुप्तजी कहते हैं, ''जमींदार खत्म हो गये, महाजन दूर गये, लेकिन गॉव के किसान और मजदूरों में क्या कोई भी परिवर्तन आया है? जमींदार जब तक रहें, उन्हें पीसते रहे। जमींदारी टूटी तो उन्होंने उसके टूटने से पहले ही अपने खेत बेच दिए या झूठे सहकारी फार्म खोल लिए या अपने रिश्तेदारों के नाम खेत लिख दिए।''१०

वहीं 'धरती' उपन्यास में भारतीय कृषक किस प्रकार अपनी धरती से विहीन होता जाता है इसको चित्रांकित किया गया है। 'धरती' उपन्यास में मंगल नामक युवक अपने पिता की रकम को जमा करने के चलते जमींदार का बंधुआ मजदूर बनकर पेट पालता है।

अपने खेत के विषय में जमींदार से कहने पर जमींदार कैसा जवाब देता है उल्लिखित है, ''कैसा घर, कैसे खेत, बे? तेरे बाप पर हमारा जो कर्ज था, उसकी क्यों नहीं पूछता है? चुपचाप बेगार कर और अपना पेट पाल।''११

इस प्रकार मंगल को सदैव के लिए अपनी धरती के प्रति मोह को भंग करना पड़ता है।

''भैरव प्रसाद गुप्त' के उपन्यासों में आर्थिक एवं सामाजिक चेतना ही विद्यमान नहीं है बल्कि राजनीतिक चेतना से भी अनुप्राणित उनके उपन्यासों की सृष्टि की गई है। गुप्तजी स्वतंत्रता आन्दोलन से परस्पर जुड़े रहें एवं आजादी के पश्चात कांग्रेस की विचारधारा से मुक्त होकर कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बनें। इन्होनें 'धरती' नामक उपन्यास में राष्ट्रीय आन्दोलन में छात्रों द्वारा हिस्सा बनने का वास्तविक चित्रण किया गया है। स्कूल के शिक्षक स्वतन्त्रता आन्दोलन में हिस्सा लेने के लिए विद्यार्थियों को उद्वेलित करते हैं। शिक्षक साम्राज्यवादियों के विरूद्ध होने वाली दमन प्रक्रिया का विरोध करते हुए कहते है, ''पूज्य बापू और सरदार बल्लभ भाई पटेल को सरकार ने गिरफ्तार करके यरवदा जेल में बन्द कर दिया है।.......उसका दमन-चक्र चालू हो गया है।''१२

वहीं 'मशाल' उपन्यास में इस्लामिया स्कूल का शिक्षक स्वाधीनता-संग्राम में हिस्सा लेता है एवं अपनी धर्मपत्नी सकीना से स्वतन्त्रता के लिए तत्पर देश भक्तों के त्याग एवं साहस की चर्चा करते हुए कहता है, ''इसी आजादी के लिए मैं और मेरे जैसे लाखों, करोड़ो आज सालों से तरह-तरह की तक लीफें, जेल के कष्ट, कोड़े की चोटें, अत्याचार और जुल्म सहते रहे हैं।''१३

'भैरव प्रसाद गुप्त' ने आजादी के पश्चात आने वाली समस्याओं को भी अपने उपन्यासों में जगह दी है, यथा- भारत विभाजन, साम्प्रदायिकता और मंहगाई तथा जमींदारी प्रथा इत्यादि। 'सती मैया का चौरा' उपन्यास में स्वतन्त्रत होने के बाद भी कृषकों की दुरवस्था एवं जमींदारी प्रथा की जगह लेते हुए कांग्रेस के नेताओं को चित्रित किया गया है। ग्रामीण कृषक एवं बंधुआ मजदूरों की स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। ''विदेशी सरकार का अन्त हुआ, पर किसान पहले की तरह भूखे, नंगे, बेघर बार रोगी और निर्बल दुर्बल बने रहे। उनकी लुटी हुई झोपड़ी, महंगाई के पहाड़ के नीचे दब गयी।''१४

''भैरव प्रसाद गुप्त' ने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी प्रशासन-तंत्र कितनी खामियों से भरा पड़ा है इसका चित्रण 'काशी बाबू' उपन्यास में राव साहब काशी बाबू से समझाते हुए स्पष्ट करते हैं, ''कौन अधिकारी खाता पीता है कि नहीं।''१५

भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यास सांस्कृतिक चेतना के वाहक के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। इनकी सांस्कृतिक चेतना मार्क्सवादी विचारों को समेटे हुए प्रगति शीलता को प्राप्त है। इनके औपन्यासिक पात्र समाज में समान भाव को पाने के लिए संघर्षरत हैं। गुप्तजी सिर्फ सांस्कृतिक धारा को लेकर चलने वाले उपन्यासकार नहीं है बल्कि उन्हांने राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना से परिपूर्ण होकर अपने उपन्यासों की संरचना की है। इन्होने अपने उपन्यास 'नौजवान' में नायक योगेश के द्वारा पाश्चात्यशैली पर

आधारित शिक्षण-विधि को परिवर्तित करने के लिए आन्दोलन का रूप देते हैं। योगेश का कथन है कि, ''यह लड़ाई जारी रहेगी और उस समय तक चलती रहेगी जब तक कि यह पूंजीवादी शिक्षा-व्यवस्था समाप्त नहीं हो जाती।''१६

''भैरव प्रसाद गुप्त' के उपन्यास धार्मिक अंधविश्वासों, परम्परा से परिपूर्ण रूढ़ियों एवं जातिगत भावों के रक्षा कवच को हटाने या खत्म के प्रयास को स्पष्ट करती हैं।

'सती मैया का चौरा' में मन्ने का कहना है कि, ''बाबा आदम के जमाने से अब तक भले ही उनके उन कर्मकांडों का जीवन में कोई उपयोग नहीं, उनसे कुछ बनता बिगड़ता नहीं हो। वह वैसे ही चलता है जैसे सुबह होने पर सूरज उगता है।''१७

'भैरव प्रसाद गुप्त' के उपन्यास 'काशी बाबू' में पूंजीपति वर्ग किस प्रकार संस्कृति को नष्ट करने पर तुले हुए हैं इस बात को काशी बाबू सहज रूप में ग्रहण करते हुए कहते हैं, ''संस्कृति के नाम पर पुरातन-पंथियों का भजन-कीर्तन, अपराध, सेक्स, रोमांस का घटिया साहित्य, फिल्में और टेलीविजन, रेडियो के कार्यक्रम रह गये है.... चित्रकला, विज्ञापन कला का अंग बन गयी है।''१८

इसमें दिखाया गया है कि मनुष्य किस प्रकार आज के परिवेश में सहज नहीं रह गया है तथा अपनी नैतिकता, देश-सेवा, त्याग की भावनाओं को भूल गया है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण तथ्यों के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि भैरव प्रसाद गुप्त किसी एक विधा को नहीं संदर्भित करते हैं अपितु उनकी ख्याति हिन्दी साहित्य की सम्पूर्ण विधाओं पर अपनी अमिट प्रस्तुति के साथ उपस्थित हुई है। उनके उपन्यास अपने समय की समस्याओं को लेकर ही नहीं चलते बल्कि उनका निराकरण भी करते हैं। उपन्यासों में नारी, नारी-पुरूष सम्बन्ध, सामन्ती एवं पूंजीपतियों का वर्चस्व एवं स्वतन्त्रता आन्दोलन तथा इसके बाद भी स्थितियों में अन्तर एवं ठहराव को लेकर प्रस्तुत हुआ है। ये अपने समय के साक्ष्यों का मार्मिकतापूर्ण चित्रण करते हैं।

सन्दर्भः

१. भैरव प्रसाद गुप्तः व्यक्ति और रचनाकार, संपादक विधाधर शुक्ल पृ० ७७

२. भैरव प्रसाद गुप्त के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, कुमारी प्रिया अम्बिका, पृ०२४

३. मशाल, पृ० २२६

४. मशाल, पृ० १७०

५. लेखन, भैरव प्रसाद गुप्तः व्यक्ति और रचनाकार, पृ० १८२

६. सती मैया का चौरा, पृ० २९०

७. मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास, डॉ० गोपाल कृष्ण शर्मा, पृ० १४७

८. आग और आंसू, पृ० ३३

९. सती मैया का चौरा, पृ० ५७९

१०. सती मैया का चौरा, पृ० ५९१

११. धरती, पृ० ६३१

१२. धरती, पृ० १६३

१३. मशाल, पृ० ७३

१४. लेखन, पृ० १६७

१५. काशी बाबू, पृ० १९

१६. नौजवान, पृ० १८२

१७. सती मैया का चौरा, पृ० २८३

१८. काशी बाबू, पृ० १०९

समकालीन कविता की युगीन चेतना और संवेदनशीलता के पारस स्पर्श से झिलमिलाता आकाश : कराहता मुक्तिपथ

डॉ.ममता पंत

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय अल्मोड़ा ,
अल्मोड़ा परिसर, अल्मोड़ा, उत्तराखंड
मेल आईडी - mamtapanth.panth@gmail.com

समकालीन कविता को समझने के लिए यह जानना अति आवश्यक है कि यह साम्प्रतिक के अर्थ में नहीं है बल्कि इसका फलक अत्यंत विस्तृत है। आलोचकों द्वारा सन १९६०-७० के बाद की कविता को समकालीन कविता के नाम से अभिहित किया गया है। यह कविता एक ढंग की नहीं बल्कि इसमें कई विचार सारणियां काम करती हैं जो समकालीन समय की प्रतिध्वनियों की गूंज है । यह कविता अपने व्याकुल समाज की गवाही देती हैं, उसका दुःख समाज का दुःख है, उसके सवाल संस्कृति व मूल्यों में आए परिवर्तन को लेकर हैं; क्योंकि कविता समाज से जुड़ी होती है और जब समाज में संकट गहरा रहा हो तो कविता उससे विमुख कैसे रह सकती है । यह कविता उन संकटों की पहचान कराते हुए उनके प्रति सजग करती है । हिंदी के प्रख्यात आलोचक मैनेजर पांडेय के अनुसार : ' केवल नया ही समकालीन नहीं होता, बल्कि जो सार्थक है वही समकालीन है।'१

'कराहता मुक्तिपथ' लोक जीवन और संघर्ष को समर्पित राष्ट्रीय साहित्यक पत्रिका के मुख्य संपादक गिरीश चंद्र पांडे 'प्रतीक' का दूसरा कविता संग्रह है; जो मई २०२३ में न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है । इसमें कुल ९० कविताएं संग्रहीत हैं । आकार की दृष्टि से कुछ कविताएं लंबी तथा कुछ छोटे कलेवर की हैं। कवि की काव्य धरती का फलक लोक है जिससे जुड़कर वह जन और अखिल विश्व से जुड़ता है । डर, साजिश, पीढ़ियों का अंतराल, पलायन, विस्थापन का डर, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियां, स्त्री, बच्चे, धर्म, जाति, संप्रदाय इत्यादि विषयों को आलोच्य संग्रह में अभिव्यक्ति मिली है। संग्रह पर दृष्टिपात करने से पूर्व कवि महेश पुनेठा के विचार दृष्टव्य हैं : 'गिरीश कथ्य, शिल्प और भाषा के स्तर पर जिस तरह लोक सम्वेदना को अभिव्यंजित करते हैं वैसा केवल एक लोकधर्मी कवि ही कर सकता है जिसे अपनी धरती और अपने लोगों से गहरा लगाव हो...'२ महेश पुनेठा के ये विचार कविताओं के केवल एक छोटे से पक्ष को ही उजागर करते हैं जबकि 'प्रतीक' की कविताओं का फलक अत्यंत विस्तृत है, जिसे हम समकालीन कविता की संवेदना और पहचान का आकाश भी कह सकते हैं। समकालीन कविता की मुख्य विशेषता पर दृष्टिपात करें तो वह है जन संघर्ष की यथार्थ छवि। जन संघर्ष अर्थात जनता का संघर्ष जिसमें वंचित लोग व उनके संघर्ष शामिल हैं । जन संघर्ष को आवाज देती कविताओं में 'अबकी बार', 'नदी', ' है ना', 'पथ-लतपथ', 'विकास आ रहा है या', 'हो गई कुर्की', 'क्या ये है बचपन', 'भीड़ का हिस्सा हूं', 'एक दो', 'जड़ें', 'एक और विस्थापन होगा', 'उड़ते कबूतर', 'मेरी उंगलियां और कलम', 'बसंत

कब आया और कब गया', 'सनद रहे', 'एक दिन', 'गुप्प अंधेरा', 'बर्फ से दबे हरे सपने', और 'चिल्ड्रंस डे' मुख्य हैं। संग्रह की पहली कविता 'अबकी बार' में 'प्रतीक' ने जन संघर्षों के कई रूपों को प्रस्तुत किया है जिसमें मुख्य है - आर्थिक स्थिति और उससे उत्पन्न निराशा। धरती पुत्र कहे जाने वाले किसान की आशा और निराशा की ओर संकेत करते हुए 'प्रतीक' कहते हैं -

'बादल आया था शाम को
हवा के झोंके को सह न सका
और उड़ गया
परिंदों के मानिंद
एक आशा जो जगी थी
वो फिर ...' (पृ. १०) 'नदी' कविता में पहाड़ की स्त्री के संघर्ष को आवाज देते हुए कहते हैं -

'जेठ की झूर दोपहरी में
भरने गई थी नानी
नंगे पांव
गंगलोड़ों से चढ़ते-उतरते
अपने नसीब को कोसते
भर लाई थी पानी' (पृ.१३) 'प्रतीक' की कविताओं में जीवन संघर्ष तो है ही इसके अतिरिक्त उनकी कविता का एक महत्वपूर्ण एवं विशेष स्वर है साहस का, जिसे संग्रह की अधिकांश कविताओं में देखा जा सकता है।जन-संघर्ष की यथार्थ छवि और विकास पथ की सच्चाई का आकलन करते हुए कवि कहते हैं -

'कुछ आक्रोशित हो
आत्महत्या कर चुके
कुछ दोबारा सांस लेने की सोच रहे हैं यही है प्रगति पथ
यही है सत्पथ
लतपथ लतपथ लतपथ' (पृ. २८) 'विकास आ रहा है या' कविता में 'प्रतीक' चिकित्सा व्यवस्था एवं विकास की पोल खोलते हुए नजर आते हैं तो 'हो गयी कुर्की' में किसान के दर्द को उजागर करते हुए। जो किसान धरती का सीना चीरकर अन्न उगाता है, चराचर प्राणियों के पेट की आग बुझाता है, वह किसी भगवान से कम नहीं होता। उसी की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण करते हुए कवि कहते हैं -

'खेतों में खड़ी फसल
न जाने कब धराशाई हो गई
और कब बैंकों के नोटिस
चस्पा हो गए घर के दरवाजों पर क्योंकि पढ़ना नहीं जानता
दरवाजा
× × ×
देखा सामने नीम के पेड़ से
लटकी थी एक लाश
अब उस लाश को जलाएं या चूल्हा' (पृ .३१) 'क्या ये है बचपन' कविता में कूड़ा बीनते बचपन की व्यथा-कथा है। कवि का चिंतन मार्मिक होने के साथ-साथ व्यवस्था पर एक आक्षेप है जो समय की मार का अंकन करता है -

'कूड़ा बीन रहा था
कुछ अद्धे पव्वों
और बोतलों से बूंद-बूंद इकट्ठा कर रहा था
× × ×
अंकल मुझे किताबों से क्या करना
पेट पहले
फिर परिवार
मन करता है
मैं भी जाऊं स्कूल
पर अंकल...' (पृ.३९) 'भीड़ का हिस्सा हूं' कविता में कवि भ्रष्टाचार की ओर संकेत करते हैं ?। आर्थिक विपन्नता और तद्‌जनित जीवनानुभवों को तीखी व विचलित कर देने वाली भाषा से बड़ी ही सजगतापूर्वक आवाज देते हैं, जिसमें आज के क्रूर तथा निर्मम व्यवस्था से आद्योपांत जूझते हुए आदमी की तस्वीर है; जो विपरीत परिस्थितियों में भी अटूट साहस के साथ तन ढकने को प्रयासरत है-

'नहीं है रोटी
न लत्ता कपड़ा
देह है
पेट की आग भी है
जो मुझे
मेरे जन्म के साथ मिली है
मेरा क्या कसूर
नहीं ना

तो फिर पेट की आग बुझाने

और तन को ढकने का पूरा अधिकार है मुझे' (पृ.४१) 'एक और विस्थापन होगा' कविता में कवि ने विस्थापन के दर्द को उजागर करते हुए संस्कृति, जड़ें , आस्था, संघर्ष की गाथा, गांव, छूटती जमीनें , छूटती यादों को मुख्य विषय बनाया है । आम जनता के दर्द को उजागर करते हुए 'प्रतीक' कहते हैं -

'हटा दिए जाएंगे गांव
और उनमें रह रहे लोग
डूब जाएंगे
खेत खलिहान
हिला दी जाएंगी चट्टानें
खोल दी जाएंगी दुकानें
पत्थर तोड़ेंगे किसान
नौकरी का होगा लॉलीपॉप
फिर भी खुश क्यों हो
पंचेश्वरवासियों ...' (पृ.६३) 'उड़ते कबूतर' में कवि राजा और प्रजा के माध्यम से आम जनता के प्रति सत्ताधीशों की असल सोच को उजागर करते हुए कहते हैं कि -

'तुम्हें पंख नहीं लगने चाहिए
ये कबूतर जो उड़ रहे हैं
ये राजघराने के हैं
गलती मत करना
कबूतर बनने की
पर कतर दिए जाएंगे...' (पृ.६६) उपरोक्त पंक्तियां भोजपुरी कवि गोरखपुरी की प्रसिद्ध कविता 'मैना' की याद दिलाती हैं, जिसका भाव इन पंक्तियों से पर्याप्त साम्य रखता है । जिसे भोजपुर में लोकगीत के रूप में भी गाया जाता है । लोक से अप्रतिम प्रेम की बानगी 'मेरी उंगलियों और कलम' में देखी जा सकती है जिसमें जीवन संघर्ष की तपिश है-

'मेरा आसमान मेरी
उंगलियों के बीच
× × ×
मेरा जीवन
संघर्षों की चट्टानें हैं
मेरी आशा
पहाड़
गाड़ गधेरे
जंगल, नदी
और बन घास है
मेरी निराशा
आंगन की घास
बंद दरवाजे
झूलते ताले
धसती जमीन
छिटकती छत है ' (पृ. ६७)

'बसंत कब आया और कब गया' जीवन संघर्ष का ऐसा बयान है जिसमें कवि को बासंती बयार और खिले फूलों व कोयलों की मनुहार से भी डर लगता है -

'उसका बसंत
ज्यादा रोमांटिक और रूमानी था
पीले रंगों में रंग गया था
और मेरा
खून की कमी से जूझ रहा था
× × ×
सामने पतझड़
नई कोंपलों से
डर लगता है...' (पृ.७१)

वास्तव में उपरोक्त पंक्तियां शब्द चमत्कारों से मुक्त जीवन संघर्षों को सही संदर्भ में संदर्भित करती हैं। कविता में व्यक्त भाव बहुत कुछ कह जाने वाले मौन की तरह मुखर हैं। मानवीय संवेदनाओं, विवशताओं व नियति को अस्वीकारती मनः स्थितियों के आक्रोश का चित्रण है। कवि कहते हैं -

'मुझे नहीं सुनना फाग
कौवों का
नहीं सुनना रुदन उद्बिलावों का
नहीं खेलनी होरी
खून की
फिर भी
बसंत तो मेरा भी आया ही है...' (पृ.७१) 'गुप्प अंधेरा' कविता में कवि आज के परिवेश के प्रति संघर्षरत हैं । इस कविता में वे गहन अंधकार के सन्नाटे को तोड़ने हेतु तत्पर एक कतरा रोशनी की बात करते हुए संघर्षरत जीवन के प्रति संशय दृष्टि भी रखते हैं, जो स्वाभाविक है-

'क्या उन कोठरियों से
निकल पाऊंगा
जो घुप्प अंधेरे से घिरी हैं
एक कतरा रोशनी
छटपटा रही है
अंधेरे के सन्नाटे को तोड़ने के लिए' (पृ.८४) 'बर्फ से दबे हरे सपने' कविता में कवि को बर्फ की सफेद चादर में उजास और सुनहली प्रकृति के दर्शन नहीं होते बल्कि उनकी दृष्टि तो बर्फ के नीचे दबी उस हरी-हरी दुबिया घास की ओर जाती है जो अपने अस्तित्व हेतु संघर्षरत है और बर्फ के पिघलने का इंतजार कर रही है। ये कविता 'निराला' की 'अबे...सुन बे गुलाब' सा आस्वाद देती है -

'बर्फ की सफेद चादर के नीचे दबे हैं मेरे हरे सपने
तुम आए और
दूर से देखा
कुछ गोले बनाए
और लुढ़का दिए
हँस लिए
खेल लिए
और चल दिए
मुझे तो बर्फ के पिघलने का इंतजार करना होगा' (पृ. ८६) 'चिल्ड्रन्स डे' के माध्यम से कवि बंद कमरों में सिसकते व दुबकते जीवन की व्यथा का मार्मिक चित्रण करते हैं। यह एक गंभीर कविता है जो अंतर्मन को झिझोड़ते हुए सोचने को विवश करती है कि भूमंडलीकरण के इस दौर में और यंत्रवत् जीवन की आपाधापी में वाकई बचपन खोता जा रहा है-

'मेरे हिस्से के खिलौने
लौटा दो
मुझे खेलना है
लौटा सकते हो
चिल्ड्रन डे
बचपन सुबक रहा है
कोठरियों में दुबक रहा है
क्या लौटा सकते हो
मुस्कुराहट
अगर हां तो
जरूर मनाओ...' (पृ.९३) 'प्रतीक' की कविताएं जहां परिवेशगत विसंगतियों का यथार्थ प्रस्तुत करती हैं वहीं उनके विरुद्ध न केवल संघर्ष हेतु आह्वानित करती हैं अपितु गतिशील ऊर्जा के साथ संघर्षरत मानव में साहस और उम्मीद का संचार भी करती हैं । 'मत कर दिल हल्का' कविता में कवि संघर्ष की तपती रेत में ही निखरने की बात करते हुए कहते हैं-

'ये वक्त भी तेरा ही है
जिसे आज तू अपना नहीं पा रहा होगा यही वक्त है
जो तुझे और मजबूत बनाएगा
ये अमावस्या
पूर्णिमा के आने का संकेत है' (पृ.३६) सकारात्मकता की यह डोर हमें आशान्वित करने के साथ-साथ, विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए, जीवन को नई दृष्टि से देखने की प्रेरणा भी देती है। 'प्रतीक' के लेखन में जीवन की एक अद्भुत धड़कन है। वे कहते हैं -

'बस जुट जा और मजबूती के साथ
धार दे अपने
वर्तमान को
भविष्य तेरा होगा
खुद आएगा तेरा वरण करने
बस तू वर्तमान को वरण कर' (पृ.३६)

जन सामान्य के संघर्षशील जीवन में आत्मविश्वास भरने की आस्था का यह स्वर उम्मीद की रोशनी जगाता है । व्यक्ति कदाचित् हारा भी हुआ हो तो बिखरने को तैयार नहीं होता, खुद को समेटते हुए पुनः - पुनः उठ खड़ा होता है?, जो समकालीन कविता की सबसे बड़ी खासियत है । कवि के अंदर जहां निर्मल निर्माण की आकांक्षा प्रबल दिखती है वहीं उनके चिंतन में अंतिम आदमी की चिंता भी है । 'भीड़ का हिस्सा हूं' कविता में वे व्यवस्था और भ्रष्टाचार की ओर संकेत करते हुए उम्मीद की डोर थामे रखने की बात करते हैं -

'क्योंकि मेरे पास नहीं हैं
गड्डियां फिजूल की
फिर भी खड़ा हूं
एक आस के साथ
कोई तो होगा
पैसों के बागों के बीच

आम लगाने वाला माली
कभी तो आएगा मेरा भी वक्त
जब होगा मेरे हाथों में
काम' (पृ. ४०) 'धूप और छांव' में कवि को उम्मीद है कि एक दिन समानता का सूरज जरूर उगेगा और सबको अपनी गुनगुनी धूप का नर्म मुलायम एहसास देगा -

'कल सुबह जो धूप आएगी
उसका कोई धर्म जाति और संप्रदाय नहीं होगा
उसे धूप की सीमा
उस छाया तक होगी
जो कभी नहीं पूछती
तुम्हारा धर्म जाति और संप्रदाय
धूप और छाया की लकीरें
सबके लिए समान हैं...' (पृ.६१) 'छाया और धूप' के प्रतीकों से बिम्बित समानता और सद्भावनाओं के उम्मीद का यह स्वर अद्भुत है।

कवि के अंदर आत्मालोचन की प्रवृत्ति के भी दर्शन होते हैं। 'विकास आ रहा है या' कविता में विकास के खोखले नारों से व्यथित होकर उनका आत्मालोचन समष्टिगत हो जाता है। 'प्रतीक' कहते हैं -

'पर विकास कम विनाश ज्यादा असंतुलित भौतिक विकास
नहीं हुआ हमारी नैतिकता
और हमारे विचारों का विकास
हम ज्यादा संकीर्ण हुए हैं
पहले से अब' (पृ.३०) आत्मालोचन की यह प्रवृत्ति समकालीन कवियों में विजय देवनारायण शाही, अरुण कमल, केदारनाथ अग्रवाल इत्यादि कवियों में दिखाई देती है। इन कवियों ने जो नए प्रतिमान गड़े उनके स्रोत वंचित जनता में हैं और उनके दुखों से व्यथित होकर वे आत्मालोचन भी करते हैं। 'कैमरे' कविता में 'प्रतीक' कहते हैं -

'मैं कैसा पहाड़ी
मैं कैसे कह सकता हूं कि
मैं पहाड़ी हूं
मैंने कभी पहाड़ को सुना ही नहीं जाना ही नहीं
उन पाहनों के दर्द को समझा ही नहीं जो संभाले हुए हैं
अपने कंधों पर हम सबको
× × ×
उन दरकती चट्टानों के दर्द को
सुनने और देखने का जज्बा
मुझमें नहीं तो
और किसमें होगा...' (पृ. ५५)

समकालीन कविता की एक और विशेषता के रूप में आलोच्य संग्रह में राजनीतिक संदर्भ विभिन्न रूपों में देखे जा सकते हैं। षड्यंत्र, सह और मात के खेल, जोड़ने-तोड़ने की प्रवृत्ति का यथार्थ अंकन कवि ने 'गांव के पंख' कविता में किया है -

'गांव की चौपालें
बदलने लगी हैं
राजनीति का जहर असर कर रहा है अब फसक हो रहे हैं
सह और मात के
तोड़ने और जोड़ने के...' (पृ.१९) वास्तव में त्वरित गति से बदल रहे समय की नब्ज पकड़ना कोई आसान काम नहीं, उससे भी कठिन है विसंगतियों को अभिव्यक्त करने हेतु एक बदली हुई भाषा और रचना का नया विधान पाना। जो ऐसा कर पाने में समर्थ होते हैं उनकी कविता सोच और स्मृति को दर्ज करने का आवश्यक और अनिवार्य माध्यम बन जाती है। कवि राजनेता और जनता के बीच की दूरी की ओर संकेत करते हुए राजनेताओं पर व्यंग करते हैं -

'तेरे और मेरे बीच की
दूरियां अनंत हैं
× × ×
संपूर्ण क्षितिज में जहर घुलता गया
चहुं और तीर बरछी कटार
से टकराते शब्द
सफेदपोश मगरमच्छ
मदमस्त घड़ियाल' (पृ. २७) कवि व्यवस्था से खिन्न हैं। उनका यह आक्रोश व्यवस्थाओं की ही उपज है। राजनेताओं के दोगले चरित्र की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं -

'अरे !! तुम्हें जश्न के ढोल खूब सुनाई देते हैं

कभी मौन हो चुके
दर्द के क्रंदन को सुनो
जो फाड़ देगा कान के पर्दे
× × ×
तुम्हारी पैदा की गई काल्पनिक
आंधियों से
बहुत पलट लिए हैं पन्ने
रच दिए हैं इतिहास
नाप लिए हैं भूगोल
जरा समाजशास्त्र को भी तो देख लो जिस अर्थ की बात करते हो
क्या वह सार्थक है
निरर्थक हो चुके मौन की व्यथा को सुन लो' (पृ. ३४) 'प्रतीक' के ये शब्द चमत्कार से इतर जीवन-संदर्भों को स्वर देते हैं। कविता उस मौन की भांति मुखर है जो बिन बोले ही बहुत कुछ कहने का माद्दा रखती है। मानवीय संवेदनाएं, व्यवस्थाएं एवं मनः स्थितियों के आक्रोश का त्रिकोण इस कविता में मुखरित हुआ है । राजनीतिक पार्टियों द्वारा की जा रही जातीय राजनीति और उसकी भयावहता की ओर संकेत करते हुए कवि कहते हैं -
'झंडे लेकर निकल पड़ी हैं जातियां लेकर रहेंगे
अपना हक हुकूक
अब नहीं दबंगे...
और बांटो रेवड़ियां
एक दिन तुम्हें ही बांटकर खा जाएंगी जातियां...' (पृ. ३७) कवि को डर है कि हमारे जीवन में धीरे-धीरे व्याप्त होता यह जाति रूपी विष कहीं हमारे देश की जड़ें हिलाकर उसे ही न बांट दे-
'कब तक बाँटोगे
कहीं ये देश ही ना बांट दे ये जातियां...' (पृ. ३८) कवि मानवता को सर्वोपरि मानते हुए जिस जाति की आवश्यकता महसूस करते हैं, वह है मानव जाति । वे जाति पर राजनीति करने वाले नेताओं से पूछते हैं -
'क्या नहीं हो सकता यह देश
जातियों के विषय से अलग
जहां हो केवल और केवल
मानवता' (पृ. ३८) 'महा मौन' कविता में कवि सत्ताधीशों के यथार्थ को उजागर करते हुए उन पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं -
'नाम पा गए
जिनका नाम न था
× × ×
लड़ने का हुनर अब भूल गए हैं इसलिए व्यस्त हैं
जातियों संप्रदायों को लड़ाने में' (पृ. ६०) कवि सत्तासीन व्यक्ति के चरित्र से भली-भांति परिचित हैं । सत्ता में आसीन व्यक्ति जो दिखाना चाहता है वही आम जनता देखती है; क्योंकि उन्हें पता है कि सीधी-सादी, भोली-भाली जनता को अपनी अफीम सी बातों की डोज कैसे देनी है -
'उल्टी तस्वीर
सुल्टी दिखा
और समझा पा रहे हो
अब आदी हो गई है जनता
अब डोज बढ़ा दो
कहीं नशा उतर न जाए
बातों का' (पृ.७९) 'एक दिन' कविता में कवि वर्तमान व्यवस्था की असलता और उसके कुचक्र को उजागर करते हुए कहते हैं -
'कुचल दिए जाओगे
अगर हिनहिनाए तो
बोलने वाले घोड़े
दौड़ा दिए जाएंगे
लगाम कस दी जाएगी
चाबुक चला दिया जाएगा' (पृ. ८०)
उपरोक्त पंक्तियां समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर राजीव जोशी की कविता से भावसाम्य रखती हैं । राजीव जोशी कहते हैं -
'कटघरे में खड़े कर दिए जाएंगे
जो विरोध में बोलेंगे
जो सच-सच बोलेंगे
मारे जाएंगे...'३
'एक और गणतंत्र दिवस' में कवि लोकतंत्र की असल परतें उघाड़ते हुए कहते हैं कि गणतंत्र आमजन के लिए नहीं है । इस कविता में 'प्रतीक' एक उधेड़बुन सी बुनते नजर आते हैं जो आम आदमी का एक यथार्थ भी है -

'मुझे झंडे पकड़ा दिए गए हैं
आजाद भारत के
और मुझे गुलाम बना दिया गया है मानसिकता से
× × ×
बायनामों से
खरीद लिया जाता हूं
पैमानों से
मुझे वोट देने का हक मिला है
पर बोलना तो गिला है
क्या मैं सिस्टम का हिस्सा हूं
या फिर
केवल एक किस्सा हूं' (पृ.८५) 'बाढ़ और उनके घर का हिमालय' में कवि सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों को उजागर करते हुए भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी से सने विकास और सत्ता की पोल खोलते हुए सत्ता के ठेकेदारों को फटकार लगाते नजर आते हैं -

हिम खंडों से पिघल कर जो नदी
तुम्हारे आंगन को
सींचती और पोषित करती है
उसी को तुमने
अहिल्या बना दिया
और राम बनने का ढोंग कर रहे हो
कोसना बंद करो हिमालय को
अपने अंदर के रावण रूपी उपभोक्ता को कोसो
जिसने पिघला दिए हैं
ढहा दिए हैं
संघर्ष के हिमालय...' (पृ.१२५) 'प्रतीक' के यहां राजनीतिक संदर्भ और पक्षधरता की यह प्रवृत्ति व्यापक रूप से देखी जा सकती है । उनकी पक्षधरता जनता के प्रति है, वंचित लोगों के प्रति है । 'अंतर' कविता अपने कलेवर में बहुत छोटी सी है, मात्र चार लाइनों की; जिसमें कोलाहल और हलाहल शब्दों के प्रयोग से अमीर और गरीब के जीवन के अंतर को रेखांकित किया गया है -

'कितना कोलाहल है
गरीबों की बस्ती में
कितना हलाहल है
अमीरों की मस्ती में ।' (पृ.१०४) 'प्रतीक' ने उपरोक्त पंक्तियों से समाज की उस विसंगति को उजागर किया है जिसमें एक ओर तो गरीबों की वह बस्ती है जहां वे जीवन की छोटी-छोटी जरूरतों को जुटाने की उहापोह के कारण अपने मन-मस्तिष्क के कोलाहल से उबर ही नहीं पाते; वहीं दूसरी ओर अमीरों का वह मस्ती भरा जीवन है जिनके हृदय में गरीबों के लिए हलाहल के सिवाय कुछ नहीं! शब्दगत चमत्कार से कवि ने बिहारी की भांति गागर में सागर भरकर हमारे समाज के यथार्थ को उजागर किया है। 'तुम हार नहीं सकते' कविता में कवि अपनी परिस्थितियों से हार मानने और साहस रखने की बात करते हुए कहते हैं -

'भूख को भूख न कह
खेत बना लेना
प्यास को प्यास न कह
कुआं खोदने का साहस रखना ही तो हमारे सपनों को जिंदा रखे हुए है' (पृ. १४४) 'बाजार में एक दिन बेडू भी आएगा कविता के माध्यम से कवि वंचित विमर्श की बात करते हैं । उनके चिंतन के केंद्र में आम आदमी है । बेडू यहां पर वंचित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है उसे आवाज देते हुए 'प्रतीक' कहते हैं -

'यार बेडू
तुम इतने हेय क्यों बन गए
बारू मास पकते रहते हो
और झरते रहते हो
गीतों में सुनाई देते हो
यार बेडू तुम गूंगे क्यों बन गए...'(पृ. १४५)

'प्रतीक' की कविताओं में स्थानीयता एवं वैश्विकता के प्रति सजकता के व्यापक दर्शन होते हैं। लोकल और ग्लोबल दोनों का एक साथ दिखना समकालीनता की एक महत्वपूर्ण विशेषता है । उनके यहां स्थानीयता एवं वैश्विकता की आवाजाही को एक साथ देखा जा सकता है -

'सूखे की चपेट में हैं रिश्ते
अकाल है भावों का
बहुत बदल गया है गांव
शहर को देखकर
बाजार को घर ले आया है गांव
खुद बिकने को तैयार बैठा है
हर हाल में

हरी घास भी
खरीद लाए हैं
शहर वाले...' (पृ.१९) स्थानीयता एवं वैश्विकता की आवाजाही के तनाव 'प्रतीक' को विशेष रूप से आंदोलित करते हैं । अपने समय के अर्थतंत्र को प्रतिबिंबित करती उनकी कविताएं, रिश्तो के अंतर्गत विश्व बाजार के दबाव को महसूसती हैं । 'है ना', 'गांव के पंख', 'विकास आ रहा है या', 'बदल गया', 'बदलाव', 'जड़ें', 'यह मैं नहीं कह रहा', 'ताड़ रहा है', 'शब्द उतर आए सड़कों पर', 'बहरी फाइलें', 'आमा एक कविता थी', 'कराहता मुक्तिपथ', 'एक पत्थर जो पड़ाव है' इत्यादि कविताओं में स्थानीय एवं वैश्विकता के प्रति सजगता के दर्शन होते हैं । वैश्वीकरण के कारण अपनी पहचान खो रहे गांवों की स्थिति और हमारे जीवन में हो रहे बदलाव की ओर संकेत करते हुए 'प्रतीक' लोक मानस की भूमि पर कविता की संवेदना की बुनियाद खड़ी करते हैं -

'हाथ का हटिन्डा
वो कुल्हाड़ी का बिंडा...
वो रामी वो बौराणी
टांडी भांडी
सब स्तब्ध है
खर्क की धुरानी में ध्वांर खा रही है। इन नरम हाथों को
इनकी जरूरत अब कहां...' (पृ. ४४) कवि अपने समय का द्रष्टा होता है। आने वाले वर्षों में होने वाली त्रासदी की भनक उसे लग जाती है । 'यह मैं नहीं कह रहा' कविता में कवि सन् २०५० की आगत परिस्थितियों को भांपते हुए परिवेश के प्रति सजग कर रहे हैं । कवि की भविष्यवाणी है कि -

'प्यासे हैं कुंए
प्यासी हैं नदियां
ये २०५० बोल रहा है
मैं नहीं
× × ×
देखो ना कितनी स्मार्ट हो चले हैं
ये मैं नहीं
२०५० बोल रहा है
हो रहा है युद्ध
आकाश और जमीन के बीच
मशीन और मानव के बीच
सूक्ष्म और स्थूल के बीच
× × ×
पश्चिम में चीख रहे हैं लोग और भोग यह मैं नहीं
२०५० बोल रहा है...' (पृ. ५७) 'एक और विस्थापन होगा' कविता में संस्कृति, जड़ें, आस्था, संघर्ष की गाथा, गांव, छूटती जमीनें, छूटती यादें इत्यादि को आवाज देते हुए विकास की अंधी दौड़ में शामिल होने वाली सत्ता की अंधी नीतियों के प्रति आम जनता को सजग करते हुए कवि कहते हैं -

'रुकी हुई नदी
इतनी शांत और शालीन
नहीं होगी
आंगन में समुद्र होगा
तुम बड़े-बड़े शूशों को
आमंत्रित कर रहे हो
तैयार हो
उसके मुंह में जाने को
अभी भी वक्त है
अपनी नदी और पहाड़ को
बचा सको तो बचा लो' (पृ. ६४-६५) 'ताड़ रहा है' कविता में एक ओर तो उत्तरोत्तर प्रगति कर रहे लोगों को देख जलने वाले लोगों और उनकी सोच का पर्दाफाश हुआ है और वहीं अंतिम पंक्तियों में बिंब एवं प्रतीकों के माध्यम से शोषक और शोषित वर्ग को वर्गीकृत कर उनका यथार्थ चित्रण किया गया है-

'...सोच
नोच नोच नोच
नंगों को नोचना आसान होता है
नाग तो फुफकार रहा है
देखो भाई...' (पृ.८२) 'हितेन सहितम् साहित्यम्' के अनुसार 'प्रतीक' अपने कवि धर्म के प्रति सजग हैं । वे शब्द को उसके अर्थ के साथ बचाना चाहते हैं । 'शब्द उतर आए सड़कों पर' कविता में वे आज के समय का चरित्रांकन मारक एवं गंभीर व्यंग्य के साथ करते हैं -

'किताबों में पड़े शब्द
उतर आए हैं सड़कों पर

चौराहों पर
अब नहीं भटकेंगी लाठियां
अब नहीं सोयेगा
कोई भी बच्चा भूखा
शब्द अब भारी नहीं होंगे
कूड़े के ढेर से लदे कट्टे
हल्के हो जायेंगे
नैतिक शिक्षा बिक रही है बल बाजार में' (पृ. ९४) कवि अपनी लेखनधर्मिता के प्रति सजग हैं । एक ओर वह हाशिए पर पड़े लोगों के प्रति समर्पित हैं तो दूसरी ओर व्यवस्थागत विसंगतियों के प्रति संघर्षरत । वे उनके विरुद्ध भी संघर्षरत हैं जो रेत के महापुल बनाते हैं । 'नहीं कर सकता' कविता में 'प्रतीक' मात्र दो लाइनों में ही बहुत गंभीर बात और लेखन के सार को रख देते हैं -

'पहाड़ पर रहता हूं
रेत कैसे लिखूं' (पृ. ९५) 'प्रतीक' शब्दों की सार्थकता के प्रति सजग हैं । शब्दों से खेलकर कीर्ति, सम्मान एवं यश प्राप्ति हेतु जोड़-तोड़ में लगे लोग प्रायः भूल जाते हैं कि एक दिन उनके द्वारा बोले गए शब्द ही उन्हें रौंदेंगे-

'शब्दों से खेलने वाले लोग
ज्यादा जिंदा नहीं रह पाते
यही शब्द रौंदेंगे
एक दिन
सनद रहे' (पृ. ७८) क्योंकि कवि महसूसते हैं कि शब्द को उसके अर्थ के साथ न बचाया जाए तो मंचों से बोले गए यही शब्द उन्हें नंगा भी कर सकते हैं -

'तुम लिखते हो ना
तो समझ लो तुम नजरों में हो
और मौका मिलते ही
तुमको नंगा किया जा सकता है चौराहे पर
× × ×
हां शब्द बेवफा नहीं होते
जो यहां भी ढाल ही होते हैं आपके भले ही
आप शब्दों को छोड़ दें
या वापस ले लें
शब्द नहीं बदलते
बदल जाते हैं
आप और हम' (पृ.१२४)

'बहरी फाइलें' कविता में धार्मिक संदर्भों को उजागर करते हुए विस्थापित समाज की पीड़ा और सामाजिक विसंगतियों पर करारी चोट की गई है । परोक्ष रूप से मंदिरों पर चढ़ाई जाने वाली सामग्री पर व्यंग्य करते हुए कवि किसी जरूरतमंद की मदद करने की बात करते हैं । ये कवि के अपने जीवन मूल्य हैं जो सार्थक होने के साथ-साथ मानवता को बचाने हेतु जरूरी भी हैं । 'प्रतीक' कहते हैं- 'प्रशंसा गीत गा गा कर
पत्थर को घी दूध पिलाकर
नालियां ही बदबू मारेंगी
किसी भूखे प्यासे को क्या कभी दोगे पेट भर खाना
उसका खून और पसीना काम आएगा...' (पृ.१११) हमारी आस्थाएं, संवेदनाएं, जीवनराग, आत्मीयता, मानवता की नमी सब दुष्चक्रों के वशीभूत हैं । जिससे भय की स्थिति निरंतर बनी सी रहती है । '३८...' कविता में कवि ने पिघलते मोम के प्रतीक का सहारा लेकर इस सच को व्यक्त किया है, जो कवि की अपनी विशेषता है -

'हो सकता है
मोम पिघल जाए
जीरो डिग्री में
क्या लोहा ढल सकता है
उसी डिग्री में' (पृ.११३) 'आमा एक कविता थी' किसी के चले जाने के बाद की यादों का रीतापन है । प्रतीक की कविताएं मर्मस्पर्शी संवेदनाओं की तरोताजा अनुभूतियां हैं जो अपने परिवेश के ताने-बानों से बुनी गई हैं जिन्हें एक-दूसरे से विलग नहीं किया जा सकता -

'घर का रीतापन
अंधेरे कोनों का सूनापन
उदास देहली
बाट जोहता चाक का फाटक
× × ×
मांगती रही
अपने परिवार के लिए
समाज के लिए
× × ×
आदमी बोना किसे कहते हैं
ये तूने ही तो सिखाया

शायद घर की चीजें

हमसे कहीं ज्यादा तुझे याद कर रही हैं।' (पृ.११४ -११५) कविताओं की संवेदना जीवन-दर्शन के व्यापक फलक को छूती है । 'धूप और छांव' में कवि की संवेदना अंतस् के तारों को छूकर भिगोती है -

'चले जाने से कोई छूटता नहीं
यादों के डेरे
वहीं जमे रह जाते हैं...' (पृ.११८) ये पंक्तियां ग़ज़ल सम्राट जगजीत सिंह की ग़ज़ल 'हाथ छूटे भी तो रिश्ते नहीं छूटा करते...' की संवेदना का संस्पर्श ही नहीं करती अपितु मानव जीवन के सत्य का उद्घाटन करते हुए जीवन दर्शन के उस चिरंतन सत्य को छूती हैं जो हर युग में प्रासंगिक है जिसके यथार्थ को झुठला पाना असंभव है । 'कराहता मुक्तिपथ' मुक्ति और जिंदगी के बीच के कोलाहल को आवाज देती है । परिवर्तित परिवेश के अंतरालों की सच्चाई को उद्घाटित करती ये कविता पाठकों से सीधा संवाद करते हुए परंपरा की सौंधी याद दिलाती है जो अतीत व वर्तमान समय का बीता हुआ अंतराल मात्र नहीं अपितु कई जीवनानुभवों व दृष्टिकोणों के बीतने का यथार्थ है । कवि के अंतर्मन में चल रहा द्वंद्व दृष्टव्य है -

'युग चिल्ला रहा है
और मुक्ति मौन है
ये कैसा द्वंद्व है
युग और मुक्ति का...'(पृ.११७)

'कविता कोई तख्तो ताज नहीं' में कवि-कर्म की जातीयता को स्थापित करते हुए उसे खेल व उत्पादन से जुड़ी सामग्री समझने वाले खेमेबाजों पर तंज़ कसते हैं और काव्य के औचित्य की बात करते हुए कहते हैं कि -

'कविता सत्ता नहीं
सत्ता के पुजारियो
नागार्जुन त्रिलोचन और पाश की कविताएं
तुम भला क्या साध पाओगे
तुमको तो गीत चाहिए
गुदगुदाने वाले
× × ×
कविता वो कांटा है
जो कांटे को निकालने का दम रखती है '(पृ.१२०)

कविता के इस प्रसंग में नागार्जुन, त्रिलोचन और पाश का आना मतलब चिंतन की पूरी गहनता और परिवेश के उलझे एवं जटिल संवादों का विशद विश्लेषण है; क्यों कि वैचारिकता, सघनता और कलात्मकता के अधीन उन्होंने साहित्य के जिस रूप की व्याख्या की थी वह मूलतः सृजन और सामाजिकता के जुड़ाव पर आधारित थी । कवि की प्रेरणा का मूल उत्स पूर्ववर्ती कवियों की चिंतनशीलता, संवेदनशीलता और समकालीनता है । डॉ नरेन्द्र मोहन के अनुसार : 'समकालीन कविता का अर्थ किसी कालखंड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण, निरूपण या बयान भर नहीं है । बल्कि उनको ऐतिहासिक अर्थ में समझना, उनके मूल स्रोत तक पहुंचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है ।'४ निर्णय ले सकने के जिस विवेक की बात डॉ. नरेंद्र मोहन कर रहे हैं,वे प्रतीक की कविताओं में व्यापक रुप से दृष्टिगोचर होता है। ग्लोबलाइजेशन की अंधी दौड़ के चलते गांव अपना अस्तित्व खोते जा रहे हैं । कवि को गांवों के खत्म होने की पीड़ा है-

'ऐसे ही टुकड़ों और लोनों से तो बनी है
राजधानियां
और महानगर
और उजड़े हैं
गांव
× × ×
बदल रहा है महानगर में
और खाली हो गयी है
जेब और गांव'(पृ.१२७) प्रतीक अपने लोक के प्रति संवेदनशील हैं। उनकी लोक चेतना अभिनवगुप्त के 'लोकानां जनपदवासी जनः' तक सीमित नहीं है । उनकी कविताओं का लोक कस्बाई, नगरीय, महानगरीय से लेकर ग्रामीण अंचल तक फैला हुआ है । वे अपनी लोक की मिट्टी के सौंधेपन को महसूस ही नहीं करते अपितु अपनी कविताओं के माध्यम से उसकी खुशबू जन-जन को अनुभूत कराते हैं । लोक के प्रति उनकी संवेदनशीलता व्यष्टि से लेकर समष्टि तक की है । इनकी कविताओं में लोक कवि नागार्जुन की भांति जनोन्मुखी संवेदना और सहज लोकधर्मिता का पुट दृष्टव्य है -

'पहाड़ रोता है

खुद के लिए नहीं
खुद से बिछुड़े लोगों के लिए
उन बंद पड़ी बाखलियों के लिए
उन सांकलों के लिए...'(पृ. ५५) गहरे अर्थ में प्रतीक अपने लोक व अपनी मिट्टी की संस्कृति के कवि हैं। उनके चिंतन के केंद्र में लोक में व्याप्त सामाजिक, राजनीतिक पतन ही नहीं अपितु नये सिरे से मानव मूल्यों को बचाने वाले शक्ति-स्रोतों की तलाश भी है। वे उन परंपराओं, स्मृतियों, प्रकृति में व्याप्त उन ध्वनियों को जीना चाहते हैं जिससे कभी कल-कल संगीत बहकर चराचर जगत को आप्लावित करता था। कवि को अपनी मिट्टी से उखड़ने के दर्द का एहसास है, वह उसे थामे रखना चाहते हैं -

'मिट्टी से मिला पत्थर ही तो पहाड़ है
मिट्टी जहां छूटी नहीं कि
पत्थर पहाड़ नहीं रहते
आखिर मिट्टी ही पहाड़ है
पत्थर तो
उसे हमेशा दबाकर ही पहाड़ कहलाया
अरे मेरी मां भी यही कहती है
मिट्टी ही पहाड़ है ' (पृ.१५२) मिट्टी यहां कोई कामचलाऊ मुहावरा नहीं अपितु कवि की रचनाधर्मिता और जीवन-यथार्थ से धड़कते जीवन का ताप है।

समकालीन कविता की महत्त्वपूर्ण विशेषता लोक से जुड़ाव है। लोक से तात्पर्य उस लोक साहित्य से है जिसमें संवेदनाओं का व्यापक धरातल तो है ही साथ ही जो शौरसेनी अपभ्रंश की उन बोलियों से जुड़ी है जिनमें लोक की अपार शब्द-संपदा है। प्रतीक की लोक संवेदना का चरम लोक को धारण करने, व्यक्त करने और उसे बचाने की चिंता से संबद्ध है जिसे 'बाटुली', 'है ना', 'जाना ही होगा', 'कैमरे', 'मेरी उंगलियां और कलम', 'रस जो भरा है', 'शहर बदल गया', और 'आमा एक कविता थी' में देखा जा सकता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है जिसमें प्रतीक लोक की उस सांझी विरासत की ओर संकेत करते हैं जो धीरे-धीरे खत्म सी हो रही है -

'पूरे गांव की साज्जी
जो धुलती थी
ब्या बरात
नवान पर
× ×
आज सब कुछ है
पर विश्वास नहीं...' (पृ.१८) प्रतीक का लोक आत्मसंघर्ष का है, जो घर-परिवार की छोटी-छोटी जरुरतों के लिए उस व्यवस्था के विरुद्ध संघर्षरत है जिसने सद्भावना से परिपूर्ण जीवन के बीज अपनी दराजों में बंद कर दिए हैं। कवि प्राचीन और आज के समय की तुलना करते हुए आज के स्वार्थपूर्ण और विश्वासरहित जीवन और जिंदगी की जद्दोजहद की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि मानव उस पुतले के समान बन चुका है जो जीवित होने का ढोंग मात्र करते हैं -

'नहीं होती थी
ताला कुच्ची
चूल्हा किसी का आग किसी की
ऐंचा पैंचा
दिलों से लेकर नून तेल तक
बहुत आसान था जीना
आज सब कुछ है
पर विश्वास नहीं
लिपी पुती देहों
दिखावे के भावों
से ढका आवरण
जिंदा होने का ढोंग करते पुतले
है ना जिंदगी की जद्दोजहद' (पृ.१०३) लोक संघर्ष की अभिव्यक्ति के साथ-साथ कुमाउनी लोक संस्कृति का विशद चित्रण खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज एवं परंपराओं के संदर्भ में हुआ है।

कविता किसी दायरे में आबद्ध न होकर अपने समय के विराट सत्य को उजागर करती है, जिसे प्रतीक की कविताओं में देखा जा सकता है। 'गांव के पंख', 'बदल गया', 'बदलाव', 'जड़ें', 'बस्तड़ी से बिछुड़ते बच्चे', 'मौन बाखली का' कविताओं में ग्लोबल गांव के आगमन के उपरांत उत्पन्न आइडेंटिटी क्राइसेस के प्रति अस्मिता बोध के व्यापक फलक दृष्टिगत हैं। इनकी कविताओं में अस्मिताबोध के मूल में परिवेशगत संघर्ष, लोक जीवन में फैले रीति-रिवाज, परंपराएं, संस्कार और संवेदनाओं का संस्पर्श है-

'छांस की खकोड़ा खकोड़
नहीं आती अब सुनने में
धिनाली अब नहीं पूछी जाती
भेंट होने पर
× × ×
गांव की हवा कुछ है अब अनजानी'(पृ.४३)
जिसे बचाने हेतु वे संघर्षरत हैं -
'क्योंकि जिम्मेदार कोई और नहीं
मैं ही हूं
और किससे कहूं
खुद से ही कह लेता हूं।' (पृ.१३६) प्रतीक महानगरों में बैठकर दीन-हीन लोगों की दुर्दशाओं को उजागर कर बड़ी-बड़ी बात करने वाले लेखकों को उलाहना देते हुए आह्वानित करते हैं -

'आओ
जम चुके
महानगरों में रम चुके
दम खम दिखा चुके
लेखनी वीरो
अब तो आ जाओ
बंद कमरों से बाहर
जिसे लिखते हो
उसे जीने के लिए
जो खोया है
उसे पाने के लिए...' (पृ. ४७) क्योंकि प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह के शब्दों में कहें तो :'अस्मिता दया नहीं चाहती है, अस्मिता हक़ चाहती है।'५

प्रतीक की कविताओं में पाश्चात्य काव्यशास्त्री इलियट के परंपरागत बोध के भी व्यापक दर्शन होते हैं। इलियट के अनुसार कवि अतीत की परंपरा को अर्जित करके उसे आधुनिक बोध के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तित कर उसे विकसित करता है। कोई भी साहित्यकार अपनी परंपरा से विलग होकर सृजन नहीं कर सकता क्योंकि परंपरा रचनाकार की रचना को प्रभावित करती है। 'शब्द लौटे' में नयी कविता की भाषीय चेतना और समकालीन कविता की संवेदना का सम्मिश्रित स्वर ध्यान आकृष्ट करता है-

'शब्द लौटे हैं
अपनी सार्थकता के साथ
साथ में ले आये हैं
मात्राएं
अर्द्ध और पूर्ण विराम
संबोधन किया है
आज उत्तम पुरुष ने
प्रथम पुरुष को
मध्यम तो बस माध्यम बना है
शब्द को लाने का
× × ×
स्वर को पा व्यंजन
आज पूर्ण हुआ
शब्द लौटे हैं।' (पृ.५२-५३) इलियट के अनुसार : 'व्यक्ति परंपरा के साथ जन्म नहीं लेता उसे सायास ग्रहण करना पड़ता है। उसकी सिद्धि के लिए मेहनत जरूरी है। यह लेखक को उसके समय, स्थान एवं समकालीनता का परिचय देती है।' परंपरा से इलियट का मतलब इतिहास एवं संस्कृति से है जिसमें विकास के भाव अंतर्निहित हैं। प्रतीक की कविताओं में इन भावों को व्यापक रूप में देखा जा सकता है। डॉ. नरेन्द्र मोहन लिखते हैं : 'समकालीन की जमीन वर्तमान है, आज है, आज का परिदृश्य और घटनाएं हैं। यह आज न बीते हुए कल से कटा हुआ है, न आने वाले कल से।'७ जिसे प्रतीक की कविताएं मुखरता से अभिव्यक्त करती हैं। परंपरा का स्वीकार और विकास हेतु उसे तोड़ने-बदलने की बेचैनी कवि की मुख्य विशेषता है। वे वर्तमान दौर की विवशताओं से जहां अपनी असहमति प्रकट करते हैं वहीं बिखरने को तैयार नहीं होते। कदाचित हारने पर भी आत्मविश्वास रूपी उम्मीद का दिया जलाए उसका उजास फैलाते हैं जो उनकी आस्था को निरंतर बल देता है -

'घोंसले बनते रहेंगे
और सपने दिखते रहेंगे
जिंदा रहे तो
होंसलों को पंख लगते रहेंगे
आकाश अपना होगा
और हां
चील कौवे आज भी हैं
और तब भी रहेंगे।' (पृ.१२३) परिवेश और

वातावरण में आए बदलाव के कारण जीवन-मूल्यों में भी परिवर्तन स्वाभाविक है और तदनुरूप रचना में भी परिवर्तन आता है। इन्हीं के बीच अपनी समकालीनता को समझते हुए प्रतीक इस परिवर्तन से न केवल जूझ रहे हैं वरन् इसकी शिनाख्त करते हुए समकालीन यथार्थ को उजागर कर रहे हैं। मूल्य संक्रमण के इस दौर की जांच -पड़ताल करते हुए प्रतीक कवि-कर्म पर गंभीर व्यंग्य कसते हुए कहते हैं -

'क्यों लिखना है
फुटपाथ को
बलात्कार को
खुदकुशी को
अब भी संभल जा
अगर तुझे जिंदा रहना है तो
लिख !
धोखे को धोखे से
प्यार को आडंबर से
इज्जत को उछालकर
बड़ा पैसा है
इस धंधे में...' (पृ.१५)

उपरोक्त पंक्तियां भवानी प्रसाद मिश्र की 'गीत फरोश' कविता की याद दिलाती हैं । 'प्रतीक' अपने समय के चरित्र का यथार्थ अंकन करने के साथ-साथ इन सबके बीच हो रही संवेदनाओं के क्षरण को रोके रखने का प्रयास भी करते हैं । मानवीय गुणों का परित्याग कर चुके लोगों को फटकारते हुए कहते हैं -

'तुम मानव नहीं
होने के लायक भी नहीं
मानव होने का ढोंग कर रहे थे, हो और शायद रहोगे ' (पृ.१०२)

समकालीन कवि आज के समय को विसंगत, कठिन और क्रूर परिभाषित करते हैं जिसका मुख्य कारण बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति है जिसने जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं में इजाफा ही किया है । ये आवश्यकताएं मनोवैज्ञानिक दबाव और विवशता के तहत आम आदमी को अपने छद्म में फंसा रही हैं । आलोच्य संग्रह में कवि 'है ना', 'समय बदलेगा', 'लम्हों के फासले', 'उसका लोकतंत्र', 'बीहड़ से बीहड़ तक', 'शहर बदल गया ', 'बाजार में एक दिन बेडू भी आएगा', और 'धार का मशरूम', कविताओं के माध्यम से समय के इस क्रूर रूप से पहचान कराते नज़र आते हैं-

'आज तो है रिफाइंड
न सुगंध न दुर्गंध
आज के अचेतन हो चुके रिश्तों की तरह' (पृ.१८)

बाजार व उपभोक्तावादी संस्कृति ने हमारे जीवन में इस तरह पैर पसार लिए हैं कि हम अपना जीवन-दर्शन भूलते जा रहे हैं । कवि को डर है कि -

'पॉप और रॉक के तिलिस्म में
खो जायेगी मानवता
और जन्म लेगा
वो लम्हा
जिसे चले जाना है' (पृ. ८९) लोकल से ग्लोबल के तिलिस्म को इंगित करते हुए कवि कहते हैं -

'तब तुम हमारे नहीं होगे
बस बाजार के होगे
बाजार जिंदा होगा
और तुम अचेतन
तुम्हारा चोप
सूख चुका होगा
बाजार की गर्मी से...' (पृ.१४६)

शब्द चित्र कवि के अभिव्यक्ति कौशल की सामर्थ्य को रचते हैं । उनसे कोई भी चीज नहीं छूटी है । अपने परिवेश के हर बदलाव को महसूस करते हुए स्थानीय एवं धुर आंचलिक शब्दों के प्रयोग से कथ्य को जीवंत बनाने का अद्भुत कौशल उनके पास है ।

समकालीन कविता की विशेषता ओं में स्त्री विमर्श के विभिन्न रुप दृष्टिगोचर होते हैं । आलोच्य संग्रह में 'नदी', 'उसके लिए नहीं था', 'मुझे उड़ना आ गया', 'उसका लोकतंत्र', 'उस छोर पर', 'पत्थर नदी में आवाज़ नहीं करते', 'वो फिर शीर्षक न बन सकी' कविताओं में कवि ने स्त्री विमर्श को समसामयिक घटनाचक्रों के सापेक्ष आवाज दी है । 'उसके लिए नहीं था' कविता लड़की के साथ किए जाने वाले पक्षपातपूर्ण व्यवहार और उसके अधूरे सपनों की कहानी है -

'एक रोज
वो बांध दी गई एक खूंटे से

उसे दिया गया बहुत सारा सामान
फिर भी नहीं दी गई
पाठी, दवात और कलम
और उसे विदा कर दिया गया
अधूरे ख्वाबों के साथ' (पृ.६९)

'उसका लोकतंत्र' में ग्रामीण स्त्रियों के जीवन संघर्षों को व्यापक अभिव्यक्ति मिली है तो 'वो फिर शीर्षक न बन सकी' में स्त्रीगत परेशानियों की सघन रेखाएं, कई चुनौतियां, आत्मसंघर्ष व उनसे निपटने के अपने तरीके हैं । इनकी कविताओं में चित्रित स्त्री अपने जीवन-संघर्षों से दुखी होकर रोती-बिलखती नहीं, अपितु उनसे उभरकर अपने अस्तित्व को संभालती नज़र आती है । कवि कहते हैं -

'जिंदा है
अपने बलबूते...
सिंदूर के रहमो-करम पर नहीं
अपना वजूद
अपने दम पर सम्हाल पायी है
पहाड़ की
पहाड़ सी औरत' (पृ.१०६)

'मुझे उड़ना आ गया' कविता की स्त्री हिम्मत परस्त असहाय नहीं वरन् साहस और आत्मविश्वास से लबरेज संघर्षशील है, जो परिस्थितियों को बदलने का माद्दा रखती है । इस कविता में कवि ने लड़कियों की उड़ान व उस पर तथाकथित सामाजिक ठेकेदारों की मनोदशा के सत्य को चित्रित किया है । उत्तर आधुनिक स्त्री विमर्श की ओर संकेत करते हुए स्त्री की अनंत गगन में उड़ान और उसके सकारात्मक व नकारात्मक पक्षों को बड़ी ही यथार्थता से उद्घाटित किया है । स्त्री को काव्य वस्तु न बनाकर उसके वास्तविक रूप को पूरे परिवेश के साथ चित्रित किया है । इनकी कविताओं में स्त्री जीवन के हंसते-गाते और संघर्षशील जीवन को अभिव्यक्ति तो मिली ही है साथ ही स्त्री के प्रगतिशील और परंपरित रूप के सम्मिश्रित दर्शन भी होते हैं -

'उसके दांये हाथ में आंसी थी
बांये में मोबाइल
वो जा रही थी
धंधुरा के जंगल
मानो उड़ रही हो
अनंत गगन में...' (पृ.७५)

सृष्टि का आधार जहां प्रेम है वहीं यह सृजन का रहस्य भी ; जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता । यह आत्मगत चेतना हिंदी साहित्य की कालावधियों में विभिन्न रूपों में दृष्टिगत है । आधुनिक काल में जब कविता ने विस्तार पाया तो प्रेम जीवन मूल्य की तरह शामिल हुआ । समकालीन कविता में प्रेम जीवन की संभावनाओं के आस-पास है । 'माफ करना नहीं लिख पाता' कविता में प्रेम की पराकाष्ठा देखने योग्य है । कवि के अनुसार प्रेम वह भाव है जिसे महसूस कर जिया जाता है । प्रेम को शब्दों में समेटना उनके बस की बात नहीं है । 'प्रतीक' कहते हैं -

'जब-जब तुझे समेटने लगा
अपने शब्दों में
तू बिखर गई
अबूझ हो गई
मुक्तिबोध की कविता की तरह ...
प्यार के पैमानों में
उन भावों के ज्वार भाटो को समेटना
मेरे बस में नहीं' (पृ.८३)

आलोच्य संग्रह में समकालीन कविता की अन्य प्रवृत्तियां भी दिखाई देती हैं । जैसे श्रम की महत्ता, प्रश्नाकुलता, अस्वीकृति और विद्रोह का भाव, परिवार का महत्व इत्यादि ।

कहीं-कहीं पर व्याकरणिक अशुद्धियां भी देखने को मिलती हैं, पदों व वाक्यों का संस्कार ठीक से नहीं हो पाया है या फिर प्रुफ संबंधी गलतियां जिससे अर्थप्रतीति हेतु थोड़ा जोड़-तोड़ करनी पड़ती है । (पृ.५०), (२३), (पृ.३१), (पृ.७०) की त्रुटियां इसके उदाहरण हैं, लेकिन कथ्य की सशक्तता के कारण इन त्रुटियों को अनदेखा किया जा सकता है । दूसरी कमी यह है कि एक कविता के अंश दूसरी कविता में ज्यों के त्यों लिए गए हैं (पृ.१८) और (१०३) इसके उदाहरण हैं। इसी तरह 'कहो' (पृ.७९) कविता की पुनरावृत्ति शीर्षक बदलकर 'अफीम हो क्या' (पृ.९०) कविता में हुई है जिसे जल्दबाजी और प्रुफ संबंधी गलती ही कहा जाएगा । आशा है कि आगामी संग्रहों में 'प्रतीक' इन बातों का विशेष ध्यान रखेंगे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि

'कराहता मुक्तिपथ' में समकालीन कविता की संवेदना एवं प्रतिध्वनियों की गूंज है। अपने व्याकुल समाज की गवाही के साथ-साथ संकटों की पहचान भी है। कवि ने जहां रोजमर्रा की जिंदगी में होने वाले सामान्य जीवन प्रसंगों का निरूपण किया है वहीं अपनी लेखनी से वैश्विक परिदृश्य को भी समेटा है; जो कवि की अनुभवजनित और दृष्टि के बीच की साम्यता का परिचायक है। संग्रह की प्रत्येक कविता को अपने आप में प्रतिनिधि कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि प्रासंगिक होने के साथ-साथ जीवन तत्वों की व्यापक पड़ताल करते हुए अद्भुत साहस से मानव विरोधी ताकतों का पर्दाफाश करती है और समकालीन कविता की संवेदना को विस्तार देती है। संग्रह के शीर्षक की बात करें तो कवि के शब्द दृष्टिगत हैं -

'आखिर उस ओर इतना सन्नाटा क्यों है
क्या मुक्ति की चाह
उन पुलों के ढह जाने का इंतजार कर रही है
युग हर दिन
चीख रहा है
मुक्ति की चाह मुक्ति की चाह मुक्ति की चाह' (पृ.११७)

समकालीन कविता की युगीन चेतना और संवेदनशीलता के पारस स्पर्श से झिलमिलाता यह आकाश पठनीय एवं संग्रहणीय है।

संदर्भ -

१. मैनेजर पांडेय, अनभै सांचा;
पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, २००२, पृ. २
२. गिरीश चंद्र पांडेय प्रतीक, कराहता
मुक्तिपथ, न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २०२३, पृ. ६
३. राजीव जोशी, प्रतिनिधि कविताएं;
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१५, पृ. ७९
४. डॉ. नरेन्द्र मोहन, कविता की
वैचारिक भूमिका, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, १९८०, पृ. २३
५. समीक्षा ठाकुर (सं.), बात बात में
बात; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००६, पृ. २९२
६https:// ugcnethindi.blogspot.com
७. नरेन्द्र मोहन (सं.), समकालीनता और हिंदी कहानी का छठा दशक; इंद्रप्रस्थ भारती पत्रिका, दिल्ली, पृ. ३८

पुस्तक : कराहता मुक्तिपथ
प्रकाशक : न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली
संस्करण : २०२३
मूल्य : रु. २५०/
पृष्ठ : १५२

पत्र व्यवहार का पता -

Dr. Mamta Pant
'Avantika'
A - 302
APS Apartments
Heeradungri Almora
Post - Almora
Dist.- Almora
Uttarakhand
Pin - 263601
Mo. 9897593253

स्वच्छता एवं पर्यावरण संरक्षण का महत्वः एक विश्लेषण

डॉ.दीपा त्यागी

असिस्टेंट प्रोफेसर
निरंजनी अखाडा मायापुर हरिद्वार उत्तराखंड
E.Mail: deepatyagi205@gmail.com

प्रस्तावना

पर्यावरण का संबंध उस वातावरण से है जिससे सम्पूर्ण जगत अवतरित हुआ है। पर्यावरण का निर्माण जल, वायु, भूमि तथा उनके बीच संबंधों एवं अन्य वस्तुऐं जैसे - जीवों, सम्पत्तियों तथा मनुष्यों के पारस्परिक संबंधों से मिलकर हुआ है। सभी जीवधारी अस्तित्व तथा कल्याण के लिए इस पर निर्भर है। स्वच्छता हमारे पर्यावरण को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण योगदान देती है जो न केवल इनके लिए बल्कि सभी जीवधारी के लिए भी अति आवश्यक है। एक ओर पर्यावरण हमें संतुलित मार्ग प्रदान करती है तो दूसरी ओर इनके असंतुलन से सभी समाज तथा मानव संसाधनों का विनाश होने लगता है। प्रकृति में सजीव एवं निर्जीव वस्तुऐं रहती है जो पर्यावरण से जुड़ी होती है और पर्यावरण असंतुलन का कारण परिस्थितिक असंतुलन ही है। आधुनिक युग व्यक्ति का स्वार्थ, आगे बढ़ने की लालसा, महत्वाकांक्षा तथा भौतिक सुख-सुविधा इतनी बढ़ चुकी है कि न तो वे स्वच्छता के प्रति सतर्क हैं और न ही पर्यावरण के प्रति गंभीर है।

पर्यावरण संरक्षण मानव विकास एवं सभी जीवों हेतु अति आवश्यक जिसे स्वच्छता दृारा प्राप्त किया जा सकता है। स्वच्छता द्वारा प्रकृति में सामंजस्य तथा मानव जीन की जीवन प्रत्याशा में वृद्धि कर सकते हैं। पर्यावरण तथा स्वच्छता एक दूसरे पर निर्भर है जिसमें एक के बिना दूसरे का अस्तित्व एवं विकास संभव नहीं है। पर्यावरण के प्रति पूरा विश्व सजग है और समय-समय पर इनके संरक्षण हेतु कानून बना रहे हैं। स्वच्छ वातावरण हेतु एवं व्यक्ति व समूह के स्वस्थ रहने के लिए साफ-सफाई आवश्यक है। समकालीन वैश्विक समाज में साफ-सफाई द्वारा ही वैश्विक महामारी कोविड-१९ से निजात पाया जा सका है। प्रकृति को माँ का दर्जा दिया जाता है जो जीव के लिए भोजन, कपड़ा, मकान एवं जीने सं संबंधित सभी प्रकार की आवश्यकता को पूरा करती है।

भारतीय समाज में वैदिक युग से ही पर्यावरण का वर्णन है तथा इनकी महत्ता को स्वीकार किया गया है। वृक्ष की पूजा यहाँ की परंपरा रही है तथा जीने के लिए इन पेड़-पौधों का प्रयोग खाने, दवाई बनाने, रहने एवं सभी जीवों से पारस्परिक संबंध बनाने हेतु किया जाता है। पर्यावरण एवं स्वच्छता द्वारा व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास संभव है। आज के दौड़ में भी तथा भविष्य में भी पर्यावरण हमेशा सभी जीवो का संरक्षण करती रहेगी। पर्यावरण में जल, भूमि, क्षेत्र तथा वायु आदि होती है और सभी के स्वच्छ रहने से ही मानव जीवन को स्वस्थ एवं सभी बिमारियों से निजात दिलाया जा सकता है। पहले मानव पर्यावरण को सुन्दर एवं स्वच्छ रखता था, उनका जीवन सरल एवं सीधा था, मेहनत करता था पेड़ पौधों को उगाने एवं देखभाल करने में तो प्रकृति भी बेहतर थी, यानि स्वच्छ पानी, स्वच्छ वायु, स्वच्छ मृदा तथा स्वच्छ वातावरण मनुष्यां प्रदान करती थी। समय पर ठंढा, गर्मी, वर्षा एवं खाद्यान्न पदार्थ प्रदान होता था, परन्तु अभी परिस्थिति अनुकूल नहीं रही है। अभी शहरीकरण, प्रकृति का अत्यधिक दोहन, असीमित यातायात के साधन, औद्योगिकीकरण एवं जनसंख्या वृद्धि के कारण जलवायु परिवर्तन पर भारी असर हुआ है। ग्रामीण समाज में शहर की अपेक्षा पर्यावरण प्रदूषण की मात्रा कम है कारण अभी भी वहाँ पर्यावरण को जीवन से

जोड़ने की कोशिश की जाती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने पर्यावरण तथा स्वच्छता दोनों में घनिष्ट संबंध को बताते हुए परिभाषा प्रस्तुत किये हैं ' मानव के भौतिक विकास, स्वास्थ्य एवं जीवन पर दुष्परिणाम डालने वाले कारकों जो कि मानव के भौतिक वातावरण में विद्यमान रहते हैं, पर नियंत्रण पाने की कला को पर्यावरण स्वच्छता कहते हैं। 'स्वच्छता का अर्थ रोगों का रोकथाम करना एवं स्वास्थ्य होता है। इसके लिए व्यक्ति को घर के अन्दर एवं बाहर, जल पर आहार पर में सुधार लाना तथा अपनी दैनिक गतिविधि पर नियंत्रण रखने की आवश्यकता है।'

वैश्विक स्तर पर, सार्वजनिक स्तर पर तथा व्यक्तिगत स्तर पर स्वच्छता अति आवश्यक है। समकालीन समय में पर्यावरण तथा स्वच्छता एक वैश्विक संकट बनकर उभरी है। मानव स्वार्थवश अपने जरूरत को पूरा करने में इतना मगन हो गया कि उन्हें ध्यान ही नही रहा कि उनका जीवन स्वयं संकट ग्रस्त हो गया है, कारण ये कि पर्यावरण प्रदुषण से कोई भी चीज अछूता नही रहा है। वनां की अत्यधिक कटाई के कारण कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में वृद्धि, ग्रीन हाउस गैस में बढ़ोतरी हुई है जिसके कारण ग्लोबल वार्मिंग हुई। जलवायु परिवर्तन अब पहले की तरह नहीं रहा कहीं पर अत्यधिक गर्मी तो कहीं बाढ़ कही सुखा तो कही तुफान का सामना करना पर रहा है अत्यधिक गर्मी के कारण ग्लेसियर पिघल रहा है और समुद्र तल में वृद्धि हो रही है। कल- कारखानों में वृद्धि से वायु प्रदुषण की समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और व्यक्ति कई प्रकार की बिमारी से ग्रसित होते जा रहे है जैसे- फेफड़े एवं स्वास संबंधी रोग । जीवो के बिमारी को बढ़ाने में जल अस्वच्छता या जल प्रदुषण का भी बहुत बड़ा हाथ है। वृहद् आबादी के कारण औद्योगिकी के कारण तथा जल के असीमित उपयोग के कारण भूमिगत जल नष्ट होते जा रहे है। अब आजकल से भी गर्मी के समय में पीने का पानी नहीं निकल रहा है। पानी को हमेशा दूषित किया जाता है कल कारखानों के अवशिष्ट को नदीं में डालने से उसमें रह रहे प्राणी का जीवन संकट ग्रस्त हो गया है। ग्रामीण समाज में भी पानी का सुरक्षित तथा सामंजस्यपूर्ण रूप से उपयोग नहीं हो पाता है और गंदा पानी के इस्तेमाल करने से व्यक्ति डायरिया, हैजा, पेचिस मलेरिया चर्म रोग तथा कई तरह के समस्या से ग्रसित हो रहे हैं।

जल हमारी समाजिक संपत्ति से आर्थिक संपत्ति हो गई है जिसे खरीद कर पीने की अवश्यकता प्रतीत होती जा रही है। नगरीय समाज तथा ग्रामीण समाज में अस्वच्छता के कारण पर्यावरण को जोखिम उठाना पड़ रहा है । अत्यधिक प्लास्टिक का उपयोग हमारे समाज के लिए चुनौती बनती जा रही है। लोग पानी तक प्लास्टिक के बोतल से पीते है तथा उसे कही फेंक देते है जिसमें अधिकतर प्लास्टिक बोतल का पुणर्चक्रण नहीं हो पाता है और समुद्र में एक जगह इकट्ठा होने कारण उसमें रह रहे प्राणी को खतरा है।

भारत देश विविधताओं का देश रहा है जहाँ कई जाति, धर्म, क्षेत्र, धूमधाम से मनाया जाता है तथा विभिन्न वर्ग के लोग निवास करते हैं । यहाँ पर्व त्योहारों को है, परन्तु कुछ कमियाँ भी देखने को मिले है। लोग सार्वजनिक स्थल पर जब इकट्ठा होते है तो इसका दुरूपयोग करते है कही पर थूक देते तथा सार्वजनिक संपति की रक्षा नहीं करते जिसके कारण अस्वच्छता की स्थिति उत्पन्न हुई है और भी कई सार्वजनिक स्थल जैसे- रेलवे स्टेशन, बस, सुलभ शौचालय का उचित उपयोग नहीं करते और कही भी प्लास्टिक या कचड़ा फेंक देते है, इसी अस्वच्छता के कारण वातावरण तथा मानव जीवन पर खतरा उत्पन्न हो गया है। पर्यावरण असंतुलन से तथा अस्वच्छता से लोगों में शारीरिक मानसिक बिमारियाँ उत्पन्न हो गई है। लोगों में स्वयं जागृति का अभाव है। वे अपने लालच एवं खुद को बेहतर बनाने के पीछे लगे है। नगरीय समाज में गरीबी के कारण स्लम बस्तियों में वृद्धि हुई है। गरीबी तथा अस्वच्छता के कारण यहाँ के लोग तरह-तरह की बिमारियों का सामना करने पर मजबूर है गंदा पानी पीने के कारण यहाँ के लोग हैजा, मलेरिया, डेंगू, पोलियो से ग्रसित है। ग्रामीण महिलाओं में शिक्षा के अभाव के कारण स्वच्छता पर जागरूक होते नही देखा गया है। उन्हें खाना बनाने एवं खाने से पहले हाथ धोना एवं ईंधन जलाने में जागरूक होने की आवश्यकता है । परन्तु हमारे भारतीय समाज में ही पर्यावरण संरक्षण के प्रति कुछ महिलाओं का अतुलनीय योगदान रहा है जैसे- बिश्नोई आंदोलन में अमृता बाई, नर्मदा बचाओ आंदोलन में मेधा पाटकर नवदान्या आंदोलन में वंदना शिवा तथा सेवं साइलेंट बेली आंदोलन में सुगता कुमारी । निजी स्थानों पर बड़ी जिम्मेदारी महिलाओं की होती है और इनके सचेत रहने से कई तरह की समाजिक आर्थिक तथा व्यक्तिगत समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। आज की महिलाओ

को घर के साथ-साथ सभी चीजो का ध्यान रखना भी जरूरी हो गया है। महिलाएँ समाज की आत्मा है जो पर्यावरण सरंक्षण एवं स्वच्छता में अपना योगदान दे सकती है।

आज के आधुनिक समय में स्वच्छ भोजन से लेकर स्वच्छ वातावरण, स्वच्छ भोज्य पदार्थ, स्वच्छ जलवायु, स्वच्छ पर्यावरण स्वच्छ जीवन शैली तथा स्वच्छ रहन-सहन आवश्यक हो गया है क्योकि स्वच्छता तथा पर्यावरणीय शुद्धता ही जीवन का आधार है। स्वतंत्रता के पश्चात केन्द्र तथा राज्य सरकारो ने कई अभियान चलाये हैं। निर्मल भारत टोटल सेनिटेशन कैम्पेन ग्लोबल सेनेटाइजेशन प्रोग्राम नेशनल रूलर हेल्थ मिशन द्वारा निजी व्यक्तिगत या सर्वाजनिक स्वच्छता एवं शैचालय निर्माण का प्रचार प्रसार किया जाता है। वर्तमान में हमारे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी समस्त लोगो के बीच स्वच्छता अभियान को कायम करने में सफल रहे है। स्वच्छता अभियान में केवल भारत में ही नही बल्कि विश्व के अनेक देशो में अपनी ओर से विविध नीतियाँ, गतिविधियाँ एवं परियोजना को संचालित किया है। भारत में भी इस संबंध में राज्यों की भूमिका अद्वितीय रही है जैसे अन्तराष्ट्रीय संस्थानों ने भी विविध नीतियाँ एवं विधियो का गठन कर देशो को वित्तीय सहायता प्रदान करता है। आज उसी का परिणाम है कि काफी तीव्र गतिविधियो के कारण ही स्वच्छता स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेशण से स्पष्ट होता है कि स्वच्छता एवं पर्यावरण संरक्षण मानव जीवन के लिए महत्वपूर्ण है इसके बिना स्वस्थ्य मानव जीवन अंसभव सा प्रतीत होता है। अतः सरकार एवं समाज तथा अन्य संस्थाओं के द्वारा स्वच्छता एवं पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करना नैतिक दायित्व बन जाता है। अपने आस-पास के वातावरण को स्वच्छ रखना हमारी जिम्मेदारी बन जाती है ताकि इसके द्वारा हम खुद को स्वस्थ्य एवं पर्यावरण को सुरक्षित रख सके। सरकार द्वारा प्राथमिक माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में पर्यावरण विषय को शामिल किया गया है, ताकि छात्र - छात्राएँ पर्यावरण के प्रति जागरूक हो सके। बच्चे पर्यावरण की शिक्षा द्वारा खुद के शरीर को स्वस्थ्य रखेगे एवं प्रकृते से खुद को जुड़ा हुआ महसुस करेगे और वो सीखेगे कि पर्यावरण की देखभाल किस प्रकार से करेगे। पर्यावरण को स्वच्छ रखकर हम कई प्रकार की समस्या जैसे- हृदय रोग, कैंसर, सांस की समस्या एवं पेट की समस्या के खतरे को काफी हद तक कम कर सकते है। पर्यावरण संरक्षण के द्वारा अन्य प्राणी भी सुरक्षित रह सकते है जैसे- पानी में रहने वाले जीवो या वनो में रहने वाले जीवो को जो अभी प्रदुषण के कारण विलुप्त होते जा रहे है। सरकार के द्वारा स्वच्छता तथा पर्यावरण संरक्षण में सफल कदम बनाए गए है परन्तु ये प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक कर्त्तव्य हो जाता है। कि वे इस के जागरूक हो अपने आस-पास के वातावरण को साफ रखे, सार्वजनिक स्थानों को पवित्र रखे तथा सरकार द्वारा चलाए गए कार्यक्रमों में अपनी स भागीदारी सुनिश्चित करें। ऐसा करने से हमारा समाज, राष्ट्र एवं विश्व के सभी प्राणी स्वस्थ जीवित तथा खुशहाल जीवन व्यतीत करेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. सिन्हा, मेधा, पर्यावरण संरक्षण, वंदना पब्लिकेशन, द्वितीय संस्करण (२००७)

२. राय, प्रकाश तथा सिंह, धर्मेन्द्र पर्यावरणीय समस्याएँ, शिवा प्रकाशन, प्रथम संस्करण (२०२०)

३. सिंह, हरिश्चन्द्र, पर्यावरणीय अध्ययनय, ग्रीन लीफ पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण (२००९)

४. रावत, ज्ञानेन्द्र, पर्यावरण एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण (२००६)

५. कुमार, अमित, पर्यावरण अध्ययन, विश्वभारती पब्लिकेशन, प्रथम (२००६ तथा २००९)

६. सिन्हा, मेधा, पर्यावरण और परिस्थितिकी तंत्र, वंदना पब्लिकेशन, द्वितीय संस्करण (२००७)

७. गोयल, एम. के., प्राथमिक पर्यावरण, अग्रवाल पब्लिकेशन, प्रथम (२०१२-१३)

८. शर्मा (भृंगी), ब्रजराजय पर्यावरण अध्ययन शिक्षण (भैतिक एवं जैविक सत्यवत्य) व अग्रवाल पब्लिकेशनः द्वितीय संस्करण (२०१०-११)

९. सिंह, उमा, पर्यावरण शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकशन, तृतीय संस्करण (२०१०-११)

१०. बघेला, अनिल, स्वच्छता का समाजशास्त्र, वंदना पब्लिकेशन प्रथम संस्करण, २०१५

गोपाल सिंह नेपाली के फिल्मी गीतों के विविध आयाम

ऋचा पुष्कर

शोध छात्रा , हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी
ईमेल -richapushkar1049@gmail.com

बीसवीं शताब्दी के मध्य से ही हिन्दी फिल्मों के गीतों ने भारतीय जनजीवन को प्रभावित करना शुरू कर दिया था। उनके गीतकार फिल्मी ग्लैमर की और खींचकर चित्रपट की दुनिया में अपनी साहित्यिकता की छाप लेकर अवतरित हुए उनमें एक नेपाली भी थे। इनकी गीतों का जादू सन् १९४३ - ४४ में मुंबई में हुए 'महाकवि कालिदास शताब्दी समारोह' से महसूस किया जाने लगा था। इस समारोह के कवि सम्मेलन में गोपाल सिंह नेपाली ने अपनी अनूठी काव्य शैली एवं मधुर कंठ से श्रोताओं को ऐसे मंत्र मुग्ध किया कि उसके दूसरे दिन समाचार पत्र में वही छाए रहे। इनके गीतों की चर्चा से प्रभावित हो फिल्म जगत के शशिधर मुखर्जी और निर्देशक पी. एल. संतोषी होटल जा पहुंचे जहाँ नेपाली जी ठहरे थे। पी. एल. संतोषी फिल्म के निर्माताओं में से एक होने के साथ-साथ एक श्रेष्ठ गीतकार भी थे, नेपाली के गीतों से प्रभावित होकर उन्हें फिल्मीस्तान में आकर उनसे भेंट करने हेतु आमंत्रित किया। पी. एल संतोषी और एस मुखर्जी ने न केवल इनके काव्य पाठ की भूरी भूरी प्रशंसा की बल्कि इन्हें ४ वर्षों हेतु ? २००० प्रति माह पर अनुबंधित कर लिया। सन् १९४८ तक अनुबंध के अनुसार नेपाली ने मात्र फिल्मों के लिए गीत लिखे। तत्कालीन समय में हिन्दी काव्य में प्रदीप शैलेंद्र और भरत व्यास ही अधिक लोकप्रिय थे। शायरों के साम्राज्य में अपने लिए स्थान बना पाना किसी हिन्दी के साहित्य कवि के लिए इतना सरल कार्य न था। शैलेंद्र के अतिरिक्त प्रायः हिन्दी गीतकारों को धार्मिक फिल्मों के लिए ही सम्मान किया जाता था। नेपाली ने सर्वप्रथम 'तिलोत्तमा' फिल्म हेतु गीत लिखे जब यह फिल्म दर्शकों के सामने आई तो इस फिल्म के गीत काफी चर्चित हुए और हिन्दी के कवि गोपाल सिंह नेपाली फिल्म में जी० एस० नेपाली के नाम से लोकप्रिय गीतकार हुए। सन् १९४८ से १९५६ तक नेपाली ने बिना किसी अनुबंध के स्वतंत्र होकर गीत लिखना आरंभ किया । भक्ति फिल्मों के अतिरिक्त इन्हें अनेक सामाजिक फिल्मों के गीत लिखने का शुभ अवसर भी मिला जिसमें नेपाली पूर्णतः सफल रहे।

गीत साहित्यिक हो या फिल्मी नेपाली अपने गीतों में प्रत्येक दृष्टिकोण से गीत को प्रकृति अनुसार उसे स्वच्छंद विचरण करने देते हैं । इनके गीतों की अपनी एक और विशेषता है कि वह ग़ज़ल रूप में होती है और इसके साथ-साथ अनुशासित एवं संयमित भी होती है। दूसरी

महत्वपूर्ण विशेषता नेपाली की गीतों की यह है कि ये गीत उन्हें अपने समकालीनों में अलग पहचान प्रदान करती है। नेपाली फिल्मी गीतों एवं साहित्यिक गीतों की रचना एक साथ ही कर रहे थे। उनके साहित्यिक गीतों एवं फिल्मी गीतों में स्वाभाविक अंतर के अतिरिक्त अन्य कोई अंतर नहीं है। इस संदर्भ में राज कन्या फिल्म का यह गीत देखा जा सकता है-

'पहचान हुई अनजाने में, जब साथ हुआ, हम बिछुङ गए

तस्वीर नैन में थी जिनकी वो आँसू बनकर बिखर गए

जिंदा करके बहारों में जो गीत यहाँ वह गीत वहाँ

संगीत बने नस नस में जो प्रीत यहाँ वह प्रीत वहाँ ।'□

गोपाल सिंह नेपाली एक ऐसे जनकवि थे, जो आम आदमी की किसी भी मनोदशा को बहुत सहजता के साथ गीतों में बड़ी सुगमता से ढाल देते थे। उन्होंने एक तरह से अपने जीवन के फक्कड़पन और मस्त मौलपन को भी गीतों में ढाल दिया था। उनकी गीतों का यदि आदि से अंत तक अध्ययन कर लिया जाए तो उनकी आत्मकथा की कमी नहीं अखरेगी। उन्होंने अपने साथ-साथ दूसरों के सुख दुख को मात्र निकट से ही नहीं देखा था, अपितु समझा भी था और उसे अपने गीतों के माध्यम से, जिससे जो कुछ लिया था, बड़ी विनम्रता और स्वाभिमान से लौटा भी दिया था। इस संदर्भ में 'नाग चंपा' के गीतों की गहराई में जाकर उसे सहज महसूस किया जा सकता है-

'किसी छलिये के नैनो के जाल में
मोरे नैना उलझ गए मैं क्या करूं
मैंने सब से छुपाया जिस बात को
उसे सब समझ गए तो मैं क्या करूं? '□

नेपाली जी के फिल्मी गीतों में श्रृंगार , प्रेम प्रधान और भक्ति प्रधान , मुख्यतः तीन प्रकार के गीत आते हैं। श्रृंगारी गीतों में नायक एवं नायिका के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का सांगोपांग निरूपण हुआ, जिसके अंतर्गत नायक - नायिका के हास - परिहास एवं विभिन्न भाव भंगिमाएं , क्रीड़ाएं आदि आते हैं तो कहीं-कहीं अत्याधिक कारूणिक और मार्मिक प्रसंग भी हैं। एक उदाहरण 'सती मदालसा' फिल्म के इस प्रसंग से लिया जा सकता है जहाँ मदालसा अपने पति के मृत्यु के बाद उसकी अर्थी के साथ शमशान की ओर सती होने जाती है -

'अर्थी नहीं नारी का संसार जा रहा है
भगवान तेरे घर का सिंगार जा रहा है ।'□

इस गीत की मार्मिकता पर शायर हाफिज जालंधरी ने कहा था-

'विश्व में आज तक किसी भी कवि ने एक बेजान मुर्दे पर इतना गजब का गीत नहीं लिखा । धन्य है कवि नेपाली।'४

इसी प्रकार श्रृंगार के संयोग एवं वियोग वर्णन में नेपाली जी का जवाब नहीं है । उनकी कुछ फिल्में- 'तुलसीदास', 'जय भवानी',' नागचंपा' , ' राजकन्या' , 'गजरे' आदि के गीतों में प्रेम के संयोग एवं वियोग पक्ष का बड़ा ही जीवित मनोहारी एवं आकर्षक चित्रण हुआ है। फिल्म 'तुलसीदास' में तुलसी अपनी पत्नी रत्ना के लिए कंगना ले आए और उन्हें नदी पार करनी है ताकि रत्ना से जल्दी से जल्दी मिलकर उसे अपने प्रेम की निशानी पहना सके यहां तुलसी की आतुरता तब देखने की बनती है जब वह नाविक से कहते हैं-

'आज जल्दी ले चलो मुझे सैया के अंगना
उसके लिए दौड़ के ले आया हूं मैं कंगना
असली के जन्म की पास मेरे आई हैं
मेहंदी के हाथों में नंगी कलाई हैं।
लाज से बेचारी बैठी सखियों के संगना '४

आगे की पंक्तियों में तुलसीदास यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यहाँ कंगना प्रेम मात्र की निशानी नहीं वरन् सोने जैसे शुद्ध और सात्विक प्रेम का परिचायक भी है-

'किसी के प्यार में रत्ना दीवानी
तुलसी की रत्ना को कंगना निशानी
सोना जैसा प्यार मेरा कभी लंगे जंग ना
उसके लिए दौड़ के ले आया हूं मैं कंगना।'५

आगे की भी कुछ गीतों में नायक तुलसी और नायिका रत्ना की मनोदशा का चित्र नेपाली जी कुछ इस प्रकार खींचते हैं

'रहूं कैसे मैं तुमको निहारे बिना

मेरा मन ही ना माने तुम्हारे बिना।'६

'नई राहें 'और 'नरसी भगत' फिल्मों में नेपाली जी के मधुर गीतों को अपने ह्रदय स्पर्शी धुनों से संगीत देने वाले विख्यात संगीतकार रवि ने एक चर्चा के दौरान नेपाली के विषय में कहा कि -

' नेपाली जी की उपलब्धियों से हिन्दी जगत परिचित है लेकिन हिन्दी फिल्म संगीत में भी उनकी पकड़ कम नहीं है। वह प्रस्तुति और पात्रों की मनोदशा के मुताबिक ऐसे सहज ढंग से जुबान पर आसानी से चढ़ाए जाने वाले गीत लिखते थे कि हमे भी धुन बनाने में आसानी होती थी। जितने सहज गीतकार उतने ही सहज और निश्छल इंसान भी।'७

रवि जी ने उनके गीत सृजन की प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए यह भी बताया कि वह एक गीत के सात , आठ बंध तक बैठे - बैठे लिखकर दे देते और कहते आप इनमें से चयन कर लो । यही नहीं अपनी मीठास से भी भरी आवाज में गुनगुना कर गाकर धुन में बतला देते थे जिन्हें हम लोग थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ स्वीकार कर लेते थे। उन्होंने ' दर्शन दो घनश्याम मेरी अंखियाँ प्यासी रे' गीत के लिए आठ बंध लिख कर दिए थे। हिन्दी फिल्मों में लोरियों में सर्वोत्तम लोरी की रचना करने वाले गीतकार भी नेपाली हैं जिसकी मधुर धुन रवि जी ने बनाई है । यह गीत स्वर साम्राज्ञी लता मंगेशकर एवं हेमंत कुमार ने अलग-अलग गया है। लोरी में भविष्य की पीढ़ी के लिए ही मार्मिक संदेश में हैं-

'कल के चांद आज के सपने
तुमको प्यार बहुत सा प्यार लाल
तुम्हारे ही दम से जगमग होगा ये संसार।'८

'प्रेम' शब्द अपने आप में बहुत व्यापक शब्द है। इसी कारण इसके अनेक अर्थ एवं रूप हैं। प्रेम में श्रृंगार रस की प्रधानता होती है और उसमें करुण रस परोक्ष रूप में आ ही जाते हैं। यही स्थिति भक्तिपरक गीतों की भी है। प्रेम परक गीतों एवं भक्ति परक गीतों में श्रृंगार एवं करूण का होना सामान्य बात है। नेपाली ने अपने फिल्मी जीवन में इन दो महत्वपूर्ण रसों का भरपूर एवं सटीक उपयोग किया है ।

'कभी याद करके गली पार करके चली आना हमारे अंगना

राजा के मन में रानी तेरी बनके चली जाऊं तुम्हारे अंगना

नाता लगाकर अब मुंह न मोड़ना
चढ़ती जवानी में वादा ना तोड़ ना
अब मुंह न मोड़ना
ष्ठ
चली आना हमारे अंगना ।'?

उस काल का यह उनका गीत लोकप्रियता के शिखर को स्पर्श कर रहा था। यह युगल गीत फिल्म 'सफर' का था। इस गीत के माध्यम से प्रेमी प्रेमिका की श्रृंगारिक भावनाओं को इतने सुंदर ढंग से अभिव्यक्त किया गया था कि प्रत्येक प्रेमी प्रेमिका को ऐसा प्रतीत होता था जैसे उन्हीं के मन की भावनाओं को कवि ने सार्थक शब्द दे दिए हो।

नेपाली के प्रेम परक गीतों में 'नाग पंचमी' के गीतों को विस्मृत नहीं किया जा सकता। सन् १९५५ के आसपास इस फिल्म का यह गीत भी लोकप्रियता के शिखर तक जा पहुंचा था। गीत की पंक्तियां इस प्रकार है-

'ओ नाग कहीं जा बसियो रे
मेरे पिया को न डसियो रे
नील गगन में तारे सोए यहाँ नैन मतवारे
अब तो जनम जनम भर मेरे दो नैना रखवारे
फूल के जैसा मेरा प्रीतम मैं प्रीतम की छाया
मधुर रात को विष भरने क्यों आया
यह पाप कभी ना करियो रे
मेरे पिया को न डसियों रे।'१०

ख्यातिलब्ध गायिका आशा भोंसले के स्वर में यह गीत काफी लोकप्रिय हुआ। यही वह फिल्म थी जिस फिल्म द्वारा अनेक असफलताओं के पश्चात बिहार के ही पुत्र चित्रगुप्त की संगीत निर्देशक के रूप में पहचान हुई और फिर चित्रगुप्त ने जीवन पर्यंत पीछे मुड़कर नहीं देखा।

फिल्मों में जी० एस नेपाली ने भक्ति गीत अधिक लिखें। इसके दो कारण हैं एक तो तत्कालीन फिल्मी माहौल जिसमें कवियों को भक्ति भाव की फिल्मों में ही अधिकतर उपयोग किया जाता था। दूसरा कारण यह है कि इनके घर परिवार का माहौल पूरी तरह आस्तिक था।

नेपाली के परिवार के सभी लोग ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते थे। किंतु साहित्य में नेपाली ने जन समाज, राष्ट्र और प्रकृति को ही अपने काव्य का विषय बनाया था। क्योंकि वहां इन्हें भक्ति गीत लिखने का अवसर नहीं मिला और तब फिल्मों में जब ऐसा सुअवसर नेपाली के हाथ में आया तो उन्होंने उसका भरपूर लाभ उठाया। सन् १९५५ में फिल्म 'नाग पंचमी' में भगवान शंकर की स्तुति बहुत लोकप्रिय हुई थी ।

एक सच्चा कवि शक्ति का उपासक होता है और विश्वकल्याण तथा मानव प्रेम की सुरक्षा के लिए शक्ति की उपासना करता है। 'नेपाली' तो कुल से भी शक्ति के उपासक रहे हैं। 'जय भवानी' फिल्म में उनके आरती गीत उन्हें एक सच्चा भक्त कवि घोषित करती है । नेपाली ने राम और कृष्ण से संबंधित भक्ति गीत भी लिखे हैं। नेपाली' के गीतों की लोकप्रियता को समझने के लिए 'जनकवि' का समानार्थी बनाकर उन्हे 'लोक कवि' कहना होगा। उनका जनकवि लोकमय था, यही लोकमयता ही उनकी जन-जन प्रियता एवं फिल्मी गीतों के हिट होने का असली कारण हैं। इस प्रकार हम गोपाल सिंह नेपाली के फिल्मी गीतों के विविध आयाम को समझ सकते हैं ।

संदर्भ सूचीः

१.स्वाधीन कलम नेपाली , अवधेश अरुण एवं रामप्रवेश सिंह, पृष्ठ संख्या - ५१,हंसराज प्रकाशन, मुजफ्फरपुर प्रथम संस्करण, १९८२

२.गोपाल सिंह 'नेपाली' जीवन और साहित्य, डॉ. बलराम, पृष्ठ संख्या - ८,विद्यार्थी साहित्य संगम, बेतिया,प्रथम संस्करण १९८३

३.गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह ' नेपाली'- संस्करण और श्रद्धांजलि, डॉ दिवाकर, पृष्ठ संख्या - २३, दीपम प्रकाशन, नवादा , प्रथम संस्करण १९८७

४.नेपाली की काव्य चेतना, डॉ बलराम मिश्रा एवं डॉ सतीश कुमार राय, पृष्ठ संख्या - १०६, बिहार ग्रंथ कुटीर प्रकाशन, पटना प्रथम संस्करण १९९२

५.गायक स्वच्छंद हिमाचल का, डॉ नंदकिशोर नंदन, पृष्ठ संख्या - २४,राजेश प्रकाशन नई दिल्ली

६.गोपाल सिंह 'नेपाली' डॉ सतीश कुमार राय, पृष्ठ संख्या-५६, प्रथम संस्करण २००८ किताब पब्लिकेशन , मुजफ्फरपुर

७.गोपाल सिंह नेपाली विशेषांक-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना ४ प्रकाशनः मार्च २०००

८.अलाव (नेपाली जन्मशती विशेषांक)- मार्च-अप्रैलः २०१२ संपादक रामकुमार कृषक

९.चंपारण की साहित्य- साधना, रमेश चंद्र झा, पृष्ठ संख्या - १२, भारती प्रकाशन, सुगौली, १९५६

१०.वही, पृष्ठ संख्या - ४१

सिंह सेनापति उपन्यास में नारी-चित्रण

कु. सुषमा

शोध-छात्रा
ए. पी. सेन मेमोरियल गर्ल्स कॉलेज,
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

'मेरा चेहरा खिले क्यों नहीं? हम गांधारियों के लिए वह सबसे आनंद का समय होता है, जब हमारा प्रिय रणक्षेत्र के लाल कर्दम से सने शरीर के साथ लौटता है। जानते हो, मैं अपनी सहेलियों से बड़े अभिमान के साथ तुम्हारे हाथ के उस खड्ग-चिह्न के बारे में कहा करती हूं। खड्ग-चिह्न से बढ़कर भूषण नहीं, उससे बढ़कर गौरव का कोई चिह्न नहीं।'

आधुनिक युग के महान समाज सुधारकों- राजा राममोहन राय, पण्डित ईश्वरचंद विद्यासागर, सावित्री बाई फुले एवं ज्योतिबाफुले आदि विभूतियों- के सत्प्रयासों से समाज में उत्पन्न स्त्री-मुक्ति की चेतना साहित्य में स्त्री-विमर्श बनकर धीरे-धीरे परन्तु सधे कदमों से आने लगती है। अंततः स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ दशकों में स्त्री-विमर्श के बहुसंख्यक विद्वान साहित्यकार सामने आते हैं। पुरुष एवं महिला दोनों प्रकार के साहित्यकारों में स्त्री-विमर्श की महिला साहित्यकार अधिक हैं क्योंकि उनकी अनुभूति अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक एवं यथार्थ मानी जाती है। हिंदी साहित्य में एक तरफ मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, रामनरेश त्रिपाठी, अमृतलाल नागर, यशपाल, जैनेंद्र एवं आचार्य चतुरसेन शास्त्री जैसे कवि-कथाकार हैं, जिन्होंने स्त्री-साहित्य की संभावना की पहचान कर उसका एक सुदृढ़ ढाँचा खड़ा किया तो दूसरी तरफ मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान, मन्नू भंडारी, अनामिका, मृणाल पांडेय, रमणिका गुप्ता प्रभृति आत्मकथाकार एवं चिंतक हैं जिन्होंने उस ढांचे में प्राण फूँककर उसे सजीव बनाया। राहुल सांकृत्यायन हिंदी साहित्य के विराट ऐतिहासिक बोध एवं संवेदनशील चेतना सम्पन्न साहित्यकार हैं। उन्होंने अपनी अद्भुत रचना धर्मिता से इतिहास के उन कालखण्डों में जाकर स्त्री जाति की दारुण दशा का जीवंत अंकन किया जो आर्यों के धर्म, राजसत्ता, साहित्य और संस्कृति के गौरवपूर्ण आख्यान एवं मिश्रित जातियों की दुर्दम पराजय के नीचे सहस्त्राब्दियों से छिपी हुई है, जिसे संभवतः किसी इतिहासकार ने आँख उठाकर भी नहीं देखा।

राहुल सांकृत्यायन ने अनेक उपन्यास लिखा है। जिनमें कुछ मौलिक और कुछ अनूदित उपन्यास हैं। मौलिक उपन्यास की बात करें तो उसमें बाइसवीं सदी, राजस्थानी रनिवास, दिवोदास, जीने के लिए, विस्मृति यात्री और सिंह सेनापति है। वहीं अनूदित उपन्यास में शैतान की आंख, विस्मृति के गर्भ में, जादू का मुल्क, शादी, आदीना और जो दास थे आदि है। इन सभी उपन्यासों में राहुल सांकृत्यायन ने नारी की महत्वपूर्ण भूमिका दिखाकर नारी के अस्तित्व को स्वीकार किया है। तथा उन्हें समाज

में सशक्त ,दृढ़ एवं मजबूत दिखाया तथा पुरुषों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर बराबर का हकदार बनाकर प्रस्तुत किया है। राहुल सांकृत्यायन नारी के अस्मिता हेतु संघर्ष और उसकी पराजय का बोध कराते हुए लेखक उसकी आर्थिक स्वतंत्रता की ओर संकेत करते हैं। नारियों को वह पीड़ित, शोषित और पराधीन देखने के विरुद्ध थे। वह सती प्रथा और पर्दा प्रथा के घोर विरोधी हैं। उनका मानना है नारियों को पुरुषों के समान समाज में अधिकार मिले। उनका विचार है 'स्वतंत्रता', 'स्वतंत्रता' चिल्लाना बनावट और व्यंग्य की बात से बढ़कर और कुछ नहीं है, जब तक स्त्रियां आर्थिक तौर से स्वतंत्र नहीं, जब तक विवाह उनके लिए जीवन निर्वाह का एक पेशा बना हुआ है। इसके लिए जरूरी है नारी को समुचित शिक्षा मिले, आर्थिक आधार मिले, समाज में स्वतंत्रता का दर्जा भी। यह सब तभी संभव होगा जब पुरुष की मानसिकता और सामाजिक व्यवस्था बदले, क्योंकि सामाजिक ढांचे को बदले बिना नारी मुक्ति की कामना करना बहुत ही हास्यास्पद जान पड़ता है। उनका कहना है- 'औरत आज दुनिया में हाथ की खरीदी सादी लौंडी है। मर्द जब तक राजा है, तब तक तो दासी भी जो जी चाहे कर सकती है। लेकिन जैसे ही मर्द की तेवरी बदली, वैसे ही रानी सिंहासन से धूल में पटक दी जाती है।

'सिंह सेनापति' राहुल सांकृत्यायन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसकी कहानी वैशाली महाजनपद के समय की है। स्वच्छंद जीवन-वृत्ति के समर्थक राहुल सांकृत्यायन का जीवन दर्शन पूर्णतः प्रकट हुआ है। इस उपन्यास के पात्र एक अद्भुत ऊर्जा सम्पन्न एवं मनस्वी व्यक्तित्व के है। इस उपन्यास की नायिका तो राहुल जी के स्त्री-चिंतन का जीवंत रूप है। साम्यवादी राहुल सांकृत्यायन सबको समान एवं किसी भी प्रकार के भेद भाव से रहित मानने के पक्षधर हैं। उनका यह दृष्टिकोण आलोच्य उपन्यास की नायिका रोहिणी में स्पष्टतः उभरकर आता है जब वह कहती है-'नहीं कपिल भैया! हँसी न करो ,मुझे नारीत्व की निरीह अवस्था उसकी बुद्धिहीनता पर अफसोस आ रहा था।'

राहुल जी श्रम को सबसे बड़ी शक्ति मानते हैं और इस श्रम से स्त्री को वंचित रखने के विरोधी हैं। चाहे कृषि कार्य हो, चाहे आखेट हो, चाहे नृत्य आदि ललित कला हो, चाहे युद्ध राहुल सांकृत्यायन हर जगह स्त्रियों की उपस्थिति अनिवार्य मानते हैं। रोहिणी राहुल सांकृत्यायन की आदर्श नारी पात्रों में से एक है। वह हर प्रकार के कार्य में बढ़कर भाग लेती है, यहाँ तक कि दो बार अपने पति की प्राण रक्षा भी करती है। जब वह श्रमशील तरुणी अपनी प्रथम वैशाली यात्रा के दौरान आपाद मस्तक गहनों के भार से झुकी, पुष्प की तरह कोमल दास-दासियों से घिरी राजकुमारी को देखती है तो उसका मन एक प्रकार की जुगुप्सा से भर जाता है। राजकुमारी के लाल-लाल कोमल हथेलियों से वह अपनी खुरदुरी हथेलियों को अधिक सुंदर मानती है।

मगध की राजकुमारी से रोहिणी कहती है -'भूषण हमारे काम में बाधक हो सकता है, राजकुमारी! अपनी हथेलियों और तर्जनी तथा अगुंष्ठ के कर्कश गट्ठों को दिखलाते हुए रोहिणी ने कहा - हमें धनुष तानना है, खड्ग चलाना पड़ता है, खेत और बाग में भी काम करना होता है, ऐसी अवस्था में हमारे काम में भूषण बाधक हो सकता है।'

राहुल सांकृत्यायन अतीत के माध्यम से वर्तमान स्त्रियों को एक मार्ग प्रदान करते हैं- समानता का मार्ग, प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों से बराबरी का मार्ग। वे चाहते हैं कि वर्तमान स्त्रियां प्राचीन भारतीय स्त्रियों की तरह स्वाभिमानी, कर्मठ, नृत्य-कला से लेकर युद्ध-कला तक ,पाक-कला से लेकर आखेट-कला तक सबमें पूर्णतः कुशल बनें।

'सिंह सेनापति' उपन्यास की नायिका रोहिणी के शब्दों में निहित, राहुल सांकृत्यायन का विषमता विहीन समाज का आदर्श दृष्टव्य है- 'हम तक्षशिलीय तरुणियाँ भी अपने को तैयार कर रही हैं जैसे तक्षशिला के बालक को पहले-पहल मधु खड्ग की नोक पर चाटने को भी मिलती है, उसी तरह बालिका को भी तक्षशिला के नर-नारी समान रूप से आयुधसेवी बनते हैं'।

'सिंह सेनापति' उपन्यास में केवल रोहिणी ही नहीं उपन्यास की अन्य स्त्री-पात्र भी उतना ही सशक्त और जीवन्त रूप में आती हैं जितना कि उपन्यास की नायिका। उपन्यास की एक पात्र सिंह से कहती है कि -' मैं और

बहिन भामा सलामत रहीं, तो फिर तुम लिच्छावियनियों की सेना भी देख लोगे। हम सिर्फ अंडा सेने के लिये नहीं हैं।'

उपन्यास का नायक सिंह लिच्छवी गणतंत्र की नारियों की प्रशंसा और उनकी वीरता का गुणगान करते हुए अपने आचार्य से कहता है कि लिच्छवी गणतंत्र की स्त्रियां न केवल पाक कला और घरेलू कार्यों में कुशल हैं बल्कि वह युद्ध में भी उतनी ही कुशल हैं जितना की अन्य कार्यों में । सिंह कहते हैं कि-'रणक्षेत्र में तो जरूर, नहीं तो रथ और डेंगियों का प्रबंध है आचार्य। तो भी मैं देखता हूँ, लिच्छावियनियां न रात गिनती, न दिन, न दोपहर की तपती धूप। वह तीरों की वर्षा में कूदने से भी नहीं झिझकती। एक भी घायल को थोड़ी देर के लिये भी रणक्षेत्र में छोड़ रखना पसंद नहीं करती ।'

वहीं उपन्यास में स्त्रियां राजा के सामने उपयोग की वस्तु मात्र समझी जाती हैं। राजा का भोग विलास करना ही राजतंत्र की स्त्रियों का एक मुख्य कार्य है। राहुल सांकृत्यायन नारी की ऐसी घृणित दुर्दशा देखकर स्त्री को अपने अधिकार के लिए लड़ना और अपने लिए जीने की सीख देते है । सिंह रोहिणी से कहते हैं कि-'प्यारी रोहिणी! राजतंत्र नर-नारियों का बंदीगृह है । वहाँ राजा के सामने किसी मनुष्य का कोई मूल्य नहीं । वहां नारीत्व क्रीड़ा कामुकता के लिए खिलौना है। वहां स्वतंत्र मानव के लिए कोई स्थान नहीं है।'

राहुल सांकृत्यायन अपने अन्य उपन्यास में स्त्री को पूर्ण रूप से चेतना सम्पन्न, स्वच्छन्द, उन्मुक्त, साहसी, कर्मठ रूप में अभिव्यक्त करते हैं। 'सिंह सेनापति' ही नहीं बल्कि उनका अन्य उपन्यास जैसे 'जय यौधेय' की नायिका व अन्य स्त्री पात्र को पूर्ण रूप से साहसी, निडर, निर्भीक, श्रमशील, कर्मठ, रूप में अभिव्यक्त किया है। वहीं 'राजस्थानी रनिवास' उपन्यास में नायिका गौरी का चरित्र भी राहुल सांकृत्यायन के चिंतन का जीवन्त रूप है। गौरी एक ऐसी पात्र है जो पूरे उपन्यास में जुझारू पात्र के रूप में दिखाई दी है। गौरी अपने कर्तव्यों का पालन बखूबी करती है ।

राहुल सांकृत्यायन हिंदी साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। उनका लेखन उस विमर्श के आदिम स्वरूप पर अपनी सम्पूर्ण अर्थवत्ता से प्रकाश डालता है जिसे आधुनिक हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श कहते हैं। यद्यपि उन्होंने इस विषय पर अल्प लिखा किन्तु जो लिखा वह अनुभव संपृक्त एवं सारगर्भित लिखा। उन्होंने स्त्री-मन की चिर पीड़ा का शब्दांकन करते हुये उससे मुक्ति के रहस्यों का मूल्यांकन करते हुये उससे मुक्ति के रहस्यों का विशलेषण भी किया। कुल मिलाकर उन्होंने स्त्री-पुरूष को समान मानने की वकालत की है और साथ ही स्त्री को पुरूष की सम्पत्ति समझने का स्पष्ट विरोध भी किया है। राहुल सांकृत्यायन ने एक ऐसे समाज की कल्पना की जहां जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री-पुरूष कन्धे से कन्धा मिलाकर परस्पर सहयोग पूर्वक कार्य करेंगे और अपने देश, समाज और संस्कृति का विकास करेंगे।

संदर्भ ग्रन्थ

?१ सिंह सेनापति, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९४

?२ जय यौधेय, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद,१९४४

?३ राजस्थानी रनिवास, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद

?४ राहुल सांकृत्यायन का कथा साहित्य, डॉ प्रेमशंकर मिश्र

?५ हिंदी का गद्य साहित्य(राहुल सांकृत्यायन), डॉ रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

भारत की बहुभाषिक बौद्धिकता और डॉ.राममनोहर लोहिया
(हिंदी के संदर्भ में)

अनुराग भारती

शोधार्थी- हिंदी विभाग
(हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय)
E.Mail: anusce26@gmail.com
Mob.: 9154079935

भारत की सुदीर्घ चिंतन परंपरा में भाषा को लेकर कभी संकीर्णता नहीं रही है। अभी हाल तक के शब्दकर्म इस बात की तस्दीक करते हैं कि वर्तमान चिंतक, लेखक या सामाजिक कार्यकर्ता एक से ज्यादा भाषाओं में सक्रिय बने रहे हैं। हालांकि उनकी सक्रियता शैक्षणिक क्षेत्र में अंग्रेज़ीबद्ध ही रही है परंतु सार्वजनिक जीवन में मातृभाषा में देखने को मिलती है।

बहुभाषिक बौद्धिकता के इस पहलू को मैंने प्रयोजनमूलक बहुभाषिकता(functional bilingualism) और बौद्धिक बहुभाषिकता(intellectual bilingualism) के लेंस से देखने का प्रयास किया है। गांधी जी ने यंग इंडिया के वर्ष १९२१ के अंक में लिखा है कि- ''The process of displacing the vernacular has been one of the saddest chapter in the British connection. As a result of the system of education introduced by the English, the tendency has been to dwarf the Indian mind, body and soul ''.

किसी समाज की प्रगति के लिए मात्र ज्ञान का विकास जरुरी नहीं है उससे भी जरुरी है कि जो भी ज्ञान अर्जित किया जा रहा है वह समाज के सभी वर्गों तक पहुंचे । ज्ञान के विस्तार और उसकी ग्राह्यता में भाषा बाधक रही है और रही सही कमी को जाति व्यवस्था ने और दुष्कर बनाया है, हिंदी भाषा (हिंदी पट्टी क्षेत्र के सन्दर्भ में) ने ज्ञान के विस्तार को विस्तृत और समावेशी बनाने का कार्य किया है, अंग्रेजी इस देश में आज भी आंशिक तौर पर आर्थिक भेदभाव की पोषक है । सभी प्रकार की शिक्षा के माध्यम के रूप में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओँ के प्रयोग से कुछ वर्गों का ज्ञान पर बना एकाधिकार टूटने से यक़ीनन इसका असर वर्ण व्यवस्था पर भी होगा । क्योंकि जनसाधारण के लिए अजनबी भाषा का चयन पृथकता को ही प्रोत्साहित करेगा इसलिए भारतीय भाषाओँ को ज्ञान सृजन और शासन की भाषा के रूप में उपयोग समाज के हित में होगा ।

महात्मा गांधी के भाषाई चिंतन की धुरी भारतीय भाषाएँ रही हैं, उसमें भी राष्ट्र की संपर्क भाषा के तौर पर वे हिंदी को वांछनीय मानते हैं । अंग्रेजी भाषा की भयावह भूमिका से महात्मा गाँधी और लोहिया दोनों परिचित थे । महात्मा गांधी के उपरांत डॉ. लोहिया आजाद भारत के

ऐसे अकेले चिन्तक हैं, जिन्होंने अपनी भाषा के प्रश्न को राष्ट्रीय सन्दर्भ से जोड़ा और हिंदी को राष्ट्र के सशक्तीकरण से संबद्ध किया । डॉ.लोहिया भाषा, साहित्य और अपने समय में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप करते हैं । डॉ. लोहिया ने १९६०-७० के दौर में भारतीय भाषाओं को लेकर जो आंदोलन चलाए शायद उसी का परिणाम था कि १९६७ ई. के आसपास आने वाले शिक्षा आयोग की सिफारिश में अपनी भाषाओं में पढ़ने की बात पुरजोर तरीके से की गई । शायद उसी आंदोलन के ताप का असर था कि १९७९ ई. में कोठारी आयोग की सिफारिशें संघ लोक सेवा आयोग ने स्वीकार कीं जिसके कारण सिविल सर्विस तथा अन्य केन्द्रीय सेवाओं की परीक्षाओं में भारतीय भाषाओं को माध्यम के रूप में अवसर उपलब्ध हुए ।

डॉ. लोहिया ने सामंती भाषा बनाम लोकभाषा' शीर्षक निबंध में उन्होंने विस्तार से और सूत्रात्मक ढंग से (कुल २४ सूत्रों में) अपने भाषा संबंधी विचार व्यक्त किए हैं. इनमें प्रमुख सूत्र निम्न हैं,-

१. अंग्रेजी हिन्दुस्तान को ज्यादा नुकसान इसलिए नहीं पहुंचा रही है कि वह विदेशी है, बल्कि इसलिए कि भारतीय प्रसंग में वह सामंती है । आबादी का सिर्फ एक प्रतिशत छोटा सा अल्पमत ही अंग्रेजी में ऐसी योग्यता हासिल कर पाता है कि वह उसे सत्ता या स्वार्थ के लिए इस्तेमाल करता है । इस छोटे से अल्पमत के हाथ में विशाल जन -समुदाय पर अधिकार और शोषण करने का हथियार है अंग्रेजी (लेहिया के विचार, पं. ओंकार शरद) ।

२. अंग्रेजी विश्व भाषा नहीं है. फ्रेंच और स्पेनी भाषाएं पहले से ही हैं और रूसी ऊपर उठ रही है. दुनिया की ३ अरब से ज्यादा आबादी में ३० या ३५ करोड़ यानी, १० में १ के करीब, इस भाषा को सामान्य रूप में भी नही जानते । (वही)

३. जब हम 'अंग्रेजी हटाओ' कहते हैं तो हम यह बिलकुल नहीं चाहते कि उसे इंग्लिस्तान या अमरीका से हटाया जाए और न ही हिन्दुस्तानी कालेजों से, बशर्ते कि वह ऐच्छिक विषय हो. पुस्तकालयों से उसे हटाने का सवाल तो उठता ही नहीं । (वही)

४. दुनिया में सिर्फ हिन्दुस्तान ही एक ऐसा सभ्य देश है जिसके जीवन का पुराना ढर्रा कभी खत्म ही नही होना चाहता. जो अपनी विधायिकाएं, अदालतें, प्रयोगशालाएं, कारखाने, तार, रेलवे और लगभग सभी सरकारी और दूसरे सार्वजनिक काम उस भाषा में करता है, जिसको ९९ प्रतिशत लोग समझते तक नहीं । (वही)

५. कोई एक हजार वर्ष पहले हिन्दुस्तान में मौलिक चिन्तन समाप्त हो गया, अबतक उसे पुनः जीवित नहीं किया जा रहा है. इसका एक बड़ा कारण है अंगेरेजी की जकड़न । अगर कुछ अच्छे वैज्ञानिक, वह भी बहुत कम और सचमुच बहुत बड़े नहीं, हाल के दशकों में पैदा हुए हैं तो इसलिए कि वैज्ञानिकों का भाषा से उतना वास्ता नहीं पड़ता जितना कि संख्या या प्रतीक से पड़ता है । (वही)

६. उद्योगीकरण करने के लिए हिन्दुस्तान को १० लाख इंजीनियरों और वैज्ञानिकों और १ करोड़ मिस्त्रियों और कारीगरों की फौज की जरूरत है । जो यह सोचता है कि यह फौज अंग्रेजी के माध्यम से बनाई जा सकती है, वह या तो धूर्त है या मूर्ख । (वही)

७. हिन्दी या दूसरी भारतीय भाषाओं की सामर्थ्य का सवाल बिल्कुल नहीं उठना चाहिए । अगर वे असमर्थ हैं, तो इस्तेमाल के जरिए ही उन्हें समर्थ बनाया जा सकता है । पारिभाषिक शब्दावली निश्चित करने वालों या कोश और पाठ्य पुस्तकें बनाने वाली कमेटियों के जरिए कोई भाषा समर्थ नहीं बनती । प्रयोगशालाओं, अदालतों, स्कूलों जैसी जगहों में इस्तेमाल के द्वारा ही भाषा सक्षम बनती है । (वही)

लोहिया जितना हिन्दीन के पक्ष में हैं उतना ही दूसरी भारतीय भाषाओं के भी. वे साफ कहते हैं कि यह आंदोलन हिन्दीम की स्थापना के लिए नहीं, लोक भाषाओं की स्थापना के लिए है. वे बार-बार एक ही बात कहते हैं कि अंग्रेजी हटे कैसे ? प्रांतीय भाषाएं कैसे आगे बढ़ें ?

पं. नेहरू की भाषा नीति की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं,

' लेकिन यह नेहरू साहब चतुर आदमी हैं. यह कभी अपने को साफ नहीं करते, छुपा कर रखते हैं, क्योंकि वे तो नेता आदमी हैं. उनको करोड़ो को साथ रखना है. इसलिए वे चालाकी के शब्द बोलते हैं. वे यह नहीं कहते कि अंग्रेजी को लाओ. वे कहते हैं कि नहीं अंग्रेजी को हटाओं, लेकिन धीरे धीरे. नेहरू साहब ऐसे राजगोपालाचारी हैं जो दोस्त के कपड़े पहन कर आए हैं लेकिन हैं दुश्मन. जो दुश्मन है वह दुश्मन के कपड़े पहन कर आता है तो उसको पहचान लेते हो, उससे बच सकते हो. लेकिन जो दुशमन, दोस्त के कपड़े पहन कर आए वह बहुत ही खतरनाक है. '

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भारत के सबसे पहले आधुनिक व्यक्ति की श्रेणी में आने वाले राजा राममोहन राय ने अपने बहुविध विचारों को अनेक भाषाओं में व्यक्त किया है। वे संस्कृत, फारसी और अंग्रेज़ी भाषा पर विद्वतापूर्ण अधिकार रखते थे, साथ ही अरबी और अन्य भारतीय भाषाओं की भी गहरी समझ थी। वहीं दूसरी तरफ भारत में मुस्लिम नवजागरण के पुरोधा सर सैयद अहमद खान भी उर्दू और अंग्रेज़ी भाषा के सुविज्ञ जानकार थे। बौद्धिकता के क्षेत्र में बहुभाषिकता की इस परंपरा का अविच्छिन्न क्रम २० वीं शताब्दी तक सतत रही है।

उसी परंपरा में आगे चलकर टैगोर और गांधी भी आते हैं, जो पिछली सदी के सबसे बड़े वैश्विक विचारकों की श्रेणी में आते हैं, दोनों यूरोप में लंबे समय तक रहे हैं, दोनों ने यात्रा भी काफी की है। आगे चलकर गांधी मातृभाषा के सबसे बड़े पैरोकारों में से एक रहे हैं। गांधी के पसंदीदा रचनाकर लियो टॉलस्टॉय के साथ साथ नरसी मेहता और तुलसीदास हैं। बौद्धिकता का ये संगम यहाँ की सामासिकता के ही अनुरूप है। भारत में मानवीय अधिकारों के प्रबल पैरोकार और भारत के संविधान की मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. बी आर अंबेडकर मराठी के साथ साथ अंग्रेज़ी में भी दक्ष थे। संत कबीर, संत रविदास और संत तुकाराम जहां अंबेडकर के लिए भारतीय सूत्र हैं वहीं जॉन स्टुअर्ट मिल इत्यादि उनके लिए अंग्रेज़ी के सूत्र हैं।

भारत के संदर्भ में एक रोचक विशेषता यह भी देखने को मिलती है कि बहुत सारे ऐसे शहर रहे हैं जो बहुभाषिकता और बौद्धिकता के केंद्र में रहे हैं, मैसूर और कोलकाता, दिल्ली और प्रयागराज (इलाहाबाद) ऐसे ही शहर हैं। समकालीन कस्बे और शहर के बीच जो दरार है वो १९९१ से पहले नहीं थी । १९२० से १९७० की अवधि के दौरान हम पाते हैं कि भारत की बौद्धिक दुनिया कुछ अपवादों के साथ अंग्रेज़ी के साथ साथ अन्य भारतीय भाषाओं में अपने आप को पल्लवित और पुष्पित करती रही है। इसके अनेकों उदाहरण वी. डी सावरकर, डी पी मुखर्जी और गिरीश कर्नाड इत्यादि जैसे समाजविज्ञानी और रचनाकारों के यहाँ हम देखते हैं।

भारत की साहित्यिक परंपरा में कुछ सूत्र हरेक भाषा में सामान्य हैं, जैसे रामायण और महाभारत की प्रवृति। तमिल, तेलुगु,ओडिया आदि भाषाओं में इन विषयों से संबंधित साहित्य प्रचुरता में व्याप्त हैं। सी राजगोपालाचारी ने महाभारत की आधुनिक व्याख्या अंग्रेज़ी में की थी फिर उसी व्याख्या का तमिल में अनुवाद हुआ तदन्तर उसका अनुवाद हिन्दी में किया गया। जब हम २०वीं शताब्दी के रचनात्मक लेखन को देखते हैं तो पाते हैं उनमें से अधिकांश मूल रूप से अंग्रेज़ी के अध्यापक रहे हैं और रचनाकर्म में वे हिन्दी के चुनिन्दा या यों कहें कि भारतीय साहित्य के चमकदार नक्षत्र रहे हैं। इनमें से कुछ ने तो ब्रिटेन के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों से अंग्रेज़ी में पीएचडी की उपाधि तक प्राप्त की है। हरिवंश राय बच्चन ने ब्रिटेन के विश्वविद्यालय से अँग्रेजी साहित्य में डब्लू. वाई.बी येयट्स (ॅ. ँ.ईंऊंए) के ऊपर पीएचडी की उपाधि प्राप्त की है। फिराक गोरखपुरी, निर्मल वर्मा सभी अँग्रेजी के अध्यापक रहे हैं। हालांकि आज के बौद्धिक परिवेश में भाषाओं के बीच दरारें बढ़ी हैं। डॉ. राममनोहर लोहिया भारत की बहुभाषी बौद्धिकता के अंतिम प्रामाणिक प्रतिनिधि प्रतीत होते हैं।

२० वीं शताब्दी वर्तमान सदी के बरक्स काफी उठापटक भरा दौर रहा है, उस सदी ने ध्रुवीकरण, सांप्रदायिकता, उपनिवेशवाद का उत्तर दौर जैसी नई प्रवृति को सिर उठाते देखा है जो आज अपने उत्थान पर है। २६ दिसम्बर १९९१ को सोवियत रूस के विघटन के बाद वैश्विक परिदृश्य में शक्ति का संतुलन एकपक्षीय रहा फिर उस शक्ति में ध्रुवीकरण का दौर आया। दुनिया में सभी

तेजी द्रुत गति से परिवर्तित हुई हैं हाल है ये है कि हम अपने परिवेश से ज्यादा दुनिया को जानते हैं ऐसा सूचनाओं के विस्फोट की वजह से भी संभव हुआ है।

भारत में बहुभाषी बौद्धिकता के स्खलन का इतिहास देखें तो इसकी शुरुआत स्वतंत्रता के बाद भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन से होता है, हालांकि इससे भारत की एकता मजबूत हुई है लेकिन भाषा के एकीकरण पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इसके साथ ही कस्बे और महानगर के बीच सांस्कृतिक अंतराल में भी वृद्धि हुई है, इस वृद्धि में आर्थिक विकास की असमानता का भी योग है। गाँव आज भी भाषा के संदर्भ में स्थानीय भाषा तक ही सीमित हैं परंतु शहरों में शहरों में प्रयोजनमूलक बहुभाषिकता(Functional bilingualism) में वृद्धि हुई है, इसके पीछे का मूल कारण है अर्थव्यवस्था के उत्तरआधुनिक घटकों (जैसे सेवा क्षेत्र, विनिर्माण क्षेत्र इत्यादि) का विकास, जिसका लाभ मूल तौर पर बड़े शहरों को ही मिल पाया। कार्यालय और फ़ैक्टरी की दुनिया कई भाषाओं के घालमेल से बन और बढ़ रही है। यहाँ कार्य करने वाले कई भारतीय अब एक से ज्यादा भाषा बोलने और जानने लगे हैं। इसके अतिरिक्त पब्लिक पॉलिसी जैसे कि गुजरात और पश्चिम बंगाल में क्रमशः मोरारजी देसाई और ज्योति बसु द्वारा एक भाषा की नीति से भी अन्य भाषाओं को ग्रहण करने के प्रति अरुचि बढ़ी है और कहीं न कहीं यह बहुभाषी बौद्धिक स्खलन के लिए जिम्मेदार है, साथ ही प्रिंट पूंजीवाद ने भी एक ही भाषा के उपभोग करने की प्रवृति को आगे बढ़ाया है जिससे अंग्रेज़ी और सुदृढ़ हुई है। उत्तर औपनिवेशिक संदर्भों में अंतर सामुदायिक विवाह से भी प्रयोजनमूलक बहुभाषिकता मजबूत हुई है परंतु इससे भाषा का बौद्धिक पक्ष मजबूत नहीं हुआ है।

राममनोहर लोहिया ने बहुभाषिकता को भारत की विविधता के अनुरूप माना है। उनका मानना था कि स्कूली शिक्षा बच्चों को मातृभाषा में दी जाए। इसकी व्यवस्था वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा नीति में की गयी है। इसके अतिरिक्त बच्चों को दो अन्य भाषाएँ भी सीखनी चाहिए, एक हिन्दी तथा दूसरी कोई अन्य भारतीय भाषा या विदेशी भाषा।

भाषा अनुभव आधारित विज्ञान है, अनभिज्ञ से भिज्ञ का मार्ग भाषा ही खोलती है। भारत की सांस्कृतिक संपन्नता में विभिन्न भारतीय भाषाओं का अभिन्न योगदान है। बौद्धिकता का भाषायी पक्ष अभी भी अपने सीमित रूप में सक्रिय है और भारतीय भाषाओं के आपसी संबंध सूत्रों का विकास, भारत की सांस्कृतिक एकता को और मजबूत एवं पुष्ट करने का एक माध्यम हो सकती है।

यंग इंडिया १९२१ अंक

लोंहिया के विचार, पं. ओंकार शरद, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण

लोंहिया के विचार, पं. ओंकार शरद, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण

डॉ.भगवतशरण अग्रवाल और स्नेहरश्मि के हाइकु - काव्य की मूल संवेदना : तुलनात्मक दृष्टि से

मोरावाला साईनबानुं आई.

शोध छात्रा
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
सरदार पटेल विश्वविद्यालय,
वल्लभविद्यानगर,
आणंद-गुजरात,३८८१२०

डॉ. भगवतशरण अग्रवाल (जन्म-२३ फरवरी, सन्-१९३०) साहित्य के प्रति, हिन्दी कविता के प्रति और खासकर हाइकु के प्रति समर्पित एवं अत्यंत ही लोकप्रिय व्यक्ति है। जो कि पूरे हाइकु जगत में हाइकु के प्रति उनकी कर्मनिष्ठा अद्वितीय रही है। उनका हिन्दी में प्रथम प्रकाशित हाइकु-संग्रह है - 'शाश्वत क्षितिज' (सन्-१९८५) में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह हिन्दी का पहला हाइकु- संग्रह है।डॉ. अग्रवाल जी ने जापानी हाइकु को भारतीय आत्माप्रदान की है। 'शाश्वत क्षितिज' आधुनिक इतिहास में पहला संग्रह है। इसके अलावा भी इनके अन्य भी हाइकु - संग्रह है - 'टुकड़े-टुकड़े आकाश' सन्-१९८७), 'अकह' (सन्-१९९४),'अर्घ्य' (सन्-१९९५), 'सबरस' (सन्-१९९७), 'इन्द्रधनुष' (सन् -२०००),'आस्ति नास्ति' (सन्-२००४),'हूँ भी; नहीं भी!' (सन् -२००४) आदि। लेकिन शाश्वत क्षितिज में संग्रहित हाइकु मौलिकता, भावाभिव्यक्ति आदि कीदृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। डॉ. अग्रवाल जी ने कविता के अलावाभी कहानी, उपन्यास, आलोचना, व्यंग्य - स्केच, एकांकी, निबंध, शोध एवं समीक्षा आदि सभी क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाई है।

डॉ. अग्रवाल जी ने डॉ.सत्यभूषण वर्मा को हिन्दी हाइकु का प्रेरणा स्रोत माना है। लेकिन भारतीय भाषाओं में सबसे पहले हाइकु के रूप- बन्धन को अपनाते हुए मौलिक हाइकु, गुजराती के झीणाभाई देसाई 'स्नेहरश्मि' ने लिखे जो उनके काव्य-संग्रह 'सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज' के नामसे सन्-१९६७ में प्रकाशित हुआ। इसमें मूल हाइकु की तरह उन्मेष भाव और प्रकृति का चित्रण सर्वत्र देखा जा सकता है। इस दृष्टिमें स्नेहरश्मि जी भारतीय साहित्य के प्रथम सफल हाइकुकार है।

झीणाभाई देसाई 'स्नेहरश्मि' का सामान्य परिचयः-

हिन्दी हाइकु जगत में डॉ. भगवतशरण अग्रवाल का नाम प्रमुख है उसी तरह गुजराती हाइकु कवियों में झीणाभाई देसाई 'स्नेहरश्मि' (१६ अप्रैल-सन् -१९०३-मृत्यु, ६ जनवरी, सन्-१९९१) का नाम पहले आता है। गुजराती साहित्य में हाइकु के प्रथम प्रयोगकर्ताओं में दिनेश कोठारी और अनिरुद्ध ब्रह्मभट्ट का नाम लिया जाता है, लेकिन गुजराती में कविता की इस विधा को लोकप्रिय बनाने में 'स्नेहरश्मि' का योगदान महत्वपूर्ण है। कहा जाता है कि हाइकु की शुरूआत सन्-१९६५ में गुजराती में हुई थी और स्नेहरश्मि को उनका प्रथम प्रस्तावक माना जाता है। 'सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज' (सन्-१९६७) स्नेहरश्मि का ३५९ हाइकु तथा ६ ताँका कविताओं वाला पहला हाइकु- संग्रह है। हाइकु शैली की अपनी प्रतिष्ठा है। हाइकु मूल ताँका से ली गई एक जापानी काव्य शैली है जो १७ अक्षरों वाली एक सुंदर रचना है। इसमें क्षण का सौंदर्य, कल्पनात्मक ढंग से अभिव्यक्त होता है। तत्वों की मूर्तता,वस्तु निष्ठता,विस्फोटकता और ताज़गी

की विशेषता है। इस संग्रह में उक्त विशेषताओं के साथ-साथ काव्यात्मक कल्पना एवं काव्य शक्ति का भी अद्भुत परिचय मिलता है। कई रचनाएँ कवि की सुंदरता, परिष्कार, लय और हाइकु की श्रेणी में महारत हासिल करने का संकेत देती है। अनेक रचनाओं में कल्पना की प्रधानता से अभिव्यंजना प्रकट होती है।

पहले स्नेहरश्मि जी का जीवन एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप में शुरू हुआ था और सच्ची देश भक्ति के साथ इसमें सक्रिय भी रहे। सन्-१९३४ से उनके जीवन की दिशा बदल गई और वे सक्रिय राजनीति छोड़कर शिक्षा के क्षेत्र में आ गए। तब से वे जीवन भर उसी क्षेत्र में डूबे रहे। अपने साहित्यिक जीवन की शुरूआत कविता से की । सन् - १९२१ में शुरु हुई उनकी काव्य यात्रा का पहला चरण १९३५ में प्रकाशित उनका पहला काव्य संग्रह 'अर्घ्य' था। सन्-१९४८ में एक और कविता संग्रह 'पनघट' प्रकाशित हुआ । बहुत लम्बे अंतराल के बाद सन् - १९७४ में 'अतीत के पंख' (अतीत नी पांख माथी), सन् -१९८४ में 'क्षितिज लंबाव्यो हाथ' प्रकाशित हुआ । उन्होंने कविता के अलावा कहानी, उपन्यास आदि क्षेत्रों में भी कार्य किया है। उनका पहला कहानी संग्रह 'गाता आशोपालाव' (सन् -१९३४),'टूटेला तार'(सन् -१९३४), 'स्वर्ग और पृथ्वी'(सन् -१९३५), 'बड़ी बहन'(सन् -१९५५)तथा सन् -१९६२ में 'हिराना लटकणीयाँ, काला टोपी आदि संग्रह प्रकाशित हुए । स्नेहरश्मि का महत्त्वपूर्ण योगदान उनकी आत्मकथा के चार खण्ड है। 'मारी दुनियाँ' (सन् -१९७०), 'साफल्य टाणुं' (सन् -१९८३), 'उघड़ेनवीं क्षितिज' (सन्-१९८७) तथा 'वणीनवाआ श्रृंग' (सन् -१९९२)। इस आत्मकथा में उस समय के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, और शैक्षिक वातावरण का वर्णन किया गया है ।

सातवें दशक के मध्यमें अपनी बेटी के मृत्यु के कारण परेशान मन को सांत्वना देने के लिए उन्होंने जापानी काव्य विधा हाइकु की और रूख किया तथा सन् -१९६७ में उन्होंने पहला ऐतिहासिक हाइकु-संग्रह 'सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज' लिखा । गुजराती भाषा साहित्य में सन् -१९८४ में उनका दूसरा हाइकु-संग्रह 'केवण विज' प्रकाशित हुआ । उसी वर्ष उनका सबसे प्रसिद्ध कविता संग्रह 'सकल कविता' भी प्रकाशित हुआ । सन् - १९८६ में उनके कुछ हाइकु के अंग्रेजी अनुवादों का एक संग्रह 'सनराइज ऑन सनोपिक्स' शीर्षक के तहत प्रकाशित हुआ ।

डॉ. भगवतशरण अग्रवाल के हाइकु का व्यकी मूल संवेदनाः-

'शाश्वत क्षितिज' हाइकु-संग्रह में कवि ने जीवन की कुछ शाश्वत संवेदनाओं को रेखांकित करने का सफल प्रयोग किया है ।

प्रेम, प्रकृति, मृत्यु, आस्था, अनास्था, जिजीविषा, अकेलापन की अनुभूति, संघर्ष, अदम्य उत्साह, अनंत की अनुभूति, आम जनता की पीड़ा, अनाशक्ति, आसक्ति, अभावबोध, तप, आधुनिक संस्कृति, स्थापित परंपराओं की निस्सारता, प्रवचना, प्रतिरोध, आशा-आकांक्षा, सत्य की प्रतिष्ठा, भय और उसका निरसन, अध्यात्म की अनुभूति, स्मृति का माधुर्य एवं समृति जनित पीड़ा, त्याग और भोग के बीच का द्वंद्व, कुटिलता और सरलता की युगपत अनुभूति, वृद्ध की विभीषिका, वफ़ा, बेवफ़ाई, स्वप्न शीलता, सुख की कामना, मुग्धता आदि नजाने कितनी सूक्ष्म तथा अनंत संवेदनाओं की अभिव्यक्ति इस संग्रह में हुई हैं। इन संवेदनाओं को कभी प्रतीकों द्वारा, कभी सपाट-सीधे सरल शब्दों में तो कभी व्यंजना का आश्रय ले कर व्यक्त किया गया है। प्रत्येक संवेदना अपने लिए एक खास तरह की अभिव्यक्ति का तकाज़ा करती है और कभी- कभार रचनाकार चाहे तो भी उस तकाज़े को ठुकरान हीं सकता है । जहाँ अनुभूति अभिधा या लक्षणा द्वारा भी प्रबल एवं प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त हो नहीं सकती उसे डॉ. अग्रवालजी ने व्यंजना या ध्वनि द्वारा ही प्रस्तुत किया है । डॉ. अग्रवाल जी अपनी पुस्तक'टुकड़े-टुकड़े आकाश' में लिखते है कि -'मेरे हाइकु दो भागों में विभाजित किये जा सकतेहैं। एक तो वे जिनका कथ्य और शिल्प,दोनों ही जापानी- काव्य विधा के समान है और दूसरे वे, जिनका शिल्प जापानी हाइकु शिल्प के समान है, किन्तु कथ्य मेरा

डॉ. भगवतशरण अग्रवाल के हाइकु- काव्य में संवेदना के विविध आयाम ः-

डॉ. अग्रवालजी के इस संग्रह में 'प्रेम' से संबंधित हाइकुओं की संख्या विशेष है। प्रेम के ना- ना रूपों, पक्षों ,प्रतिपक्षों, प्रभावों,अवस्थाओं आदि का इतना भीताक्षरी हैं कि उनकी इस प्रेमानुभूति की दाद देनी पड़ती है। कहीं ललक व प्यास है, कहीं अद्वैत की अनुभूति है, कहीं पीड़ा सहकर भी प्यार की पवित्रता का निर्वाह है, कहीं-कहीं बेवफाई से घायल प्रेमी के हृदय की चित्कार है। कहीं प्रकृति के माध्यम से तो कहीं प्रतीकों के द्वारा इसकी सशक्त अभिव्यक्ति

हो पाई है । यहाँ पर कुछ उदाहरण देख सकते है-

तुम से मिल/सौ सौ वसंत खिले/अंतरमन मैं।२

तुम क्या आए/मरू में फूल उगे/चांदनी गाए।३

मेरे द्वार पै/गलबहियाँ डालें/नीम औ' आम। ४

वफा के वादे/कभी वफ़ा हुई भी/फूलों से पूंछों। ५

सांत भाँवरे/शादी;धरती घूमी/कितनी बार। ६

यहाँ पर प्रसन्नता,, परंपरागत विवाहकीव्यर्थता की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति सहज बोध्य है।

प्रेम की ही भाँति 'मृत्यु' पर भी डॉ. अग्रवालजी ने बहुत हाइकु लिखे हैं । मृत्यु से कवि को भय नहीं है। बल्कि वह तो उसका स्वागत करने के लिए तैयार बैठे है। यहाँ पर एक उदाहरण है-

प्रतिफल हूँ/तैयार सफर को/जाना ही जब। ७

उपर्युक्त हाइकु में हमें कवि की मृत्यु के प्रति भय रहित मानसिकता का परिचय मिलता है।

डॉ. अग्रवालजी ने कुछ समसामयिक स्थितियों पर व्यंग्य भी किए हैं जो यहाँ दृष्टिगत है-

चढ़ा के फूल/मांगे तुम्ही से लक्ष्मी/वाह रे भक्त। ८

यहाँ पर हमें भक्तों की जो लोभवृत्ति होती है उस पर करारा व्यंग्य किया हुआ दिखाई देता है। थोड़े बहुत फूल भगवान को चढ़ा कर उसे लक्ष्मी मांगते हैं।

आधुनिक युग की संग्रह - वृत्ति, व्यवसायिक व अर्थपिसाची-वृत्ति को बहुत कम शब्दों में किंतु प्रहारक ढंग से प्रस्तुत किया हैं -

सूरज को भी/लॉकर में रखते/वश न चला। ९

कुछ हाइकु संस्कृति -क्षय पर और कुछ संस्कृति-गौरव पर लिखे गए है -

बैठती टिड्डे/गेहूँ की बालियों पै/किसान सोते।१०

संस्कृति की फसल पर आक्रमण हो रहा है और रक्षक सोये हुए हैं।

गंगा-यमुना/मेरे देश की माता/उन्नत शीश। ११

हर भारतवासी के दिल में हिमालय और गंगा - यमुना के लिए गर्व-गौरव और श्रद्धा है। यहाँ पर वही अभिव्यक्त हुआ है।

इन विषयों के अलावा भी युद्ध की निस्सारता, एकाकीपन आदि अनेक विषयों को डॉ. अग्रवालजी ने प्रस्तुत किया है।

स्नेहरश्मि के हाइकु-काव्य की मूल संवेदनाः-

'सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज' स्नेहरश्मि की हाइकु-काव्य का पहला पड़ाव है।जिसमें ३६५ हाइकुओं का समावेश हुआ हैं । प्रस्तुत संग्रह में कवि ने जीवन के शाश्वत- क्षणों को भोगकर उन्हें हाइकु विधा में मूर्त रूप प्रदान किया है। स्नेहरश्मि जी एक जागरूक एवं संवेदनशील कलाकार होने के नाते उनकी सूक्ष्म संवेदनाओं ने समाज, संस्कृति, धर्म, विविध जीवन मूल्यों, जीवन-मृत्यु, उतार-चढ़ाव, एकाकीपन, सौंदर्य बोध, प्रकृति आदि जीवन से संयुक्त विविध विषयों को बहुत ही नज़दीक से पकड़ा है। यही कारण है कि इनकी ये लघु अभिव्यक्तियाँ हमारे अंतर्मन को छू जाती हैं। हाइकु के बारे में स्नेहरश्मि जी ने हाइकु- काव्य रूप के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किए है कि- 'हाइकु कवि को जीवन के प्रति सचेत रहना चाहिए। विषय,समय और स्थान के बीच संबंध और संवाद इसी लिए हाइकु में तीनों के बीच जिस तत्व पर ध्यान केंद्रित किया जाता हैं उसकी स्थिति बहुत सटीक रूप से निर्धारित की जानी चाहिए। कविता के इस छोटे रूप में शब्दों की व्यथा को इस तरह से बदलना मुश्किल नहीं है कि अर्थ सुरक्षित रहे, लेकिन इसके व्यंग्य के आवश्यक रूप में बाधा नहीं आनी चाहिए और इस लिए इसके आधार शब्द की स्थिति लग-भग अपरिवर्तनीय है'।१२

स्नेहरश्मि के हाइकु-काव्य में संवेदना केविविध आयामः-

'सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज' प्रस्तुत संग्रह के हाइकुओं में प्रकृति सम्बन्धित हाइकुओं की संख्या अधिक रही है और वैसे भी स्नेहरश्मि जी प्रकृति के कुशल चितेरे हैं। उन्होंने प्रकृति का वर्णन विविध रूपों में किया है। प्रकृति का विकास और विलास तथा उसका प्रतिपल परिवर्तित परिवेश मानवीय संवेगों और क्रिया कलापों से आरोपित प्रकृति चित्रण के कुछ उदाहरण देखिए-

वादणी नानी/रमतां रमतां गै/क्षितिजों आंबी।१३

सुखेली डाणे/पोपट बेठोः पान/चोगम लीला।१४

अहो!फूलों नी/केडी रंगीन ऊँची/डुंगर धारे।१५

प्रकृति की विशालता, व्यापकता और विराटता का दिग्दर्शन कराता निम्न हाइकु दृष्टव्य हैं -

गाता खेतरे/चणता पंखीःमूक/चाडियों वीलो।१६

रूपाणा धरा/शांत जणः मगर/नीचे लणके।१७

पाणपे मोरः/पड़घानी ल्हेरोंमा/रमती केका।१८

गोरंभे वृक्ष/पड़छायोंः रमता/किरणों टोंचे।१९

स्नेहरश्मि के हाइकु में प्रेम से सम्बन्धित हाइकु भी मिलते हैं। प्रणय का प्रस्फुटन हो जाने पर प्रेम के अनुभवों में

जो परिवर्तन होते हैं, निम्न हाइकु में मूर्तिमंत हो उठे हैं -

नाजुक तारी/आंगणी चूंटे फूल/घवाय नेण।२०

समाज में व्याप्त बुराईयों,कुरूढियों आदि को दूरकर ने के लिए साहित्यकार व्यंग का सहारा लेता है। स्नेहरश्मि जी ने भी समाज में व्याप्त बदियों को दूर करने के लिए व्यंग्य का सहारा लिया। स्नेहरश्मि जी एक जागरूक एवं संवेदनशील कलाकार हैं। उन्होंने समाज में व्याप्त दुराचारों को, अन्यायों को बड़े ही करीब से देखा है और समाज की गतिविधियों पर वेधक दृष्टि भी रखी है -

बकरो मस्त/रमे डुंगरेः ईद/एनी ढूंकड़ी।२१

स्नेहरश्मि के प्रस्तुत संग्रह में व्यंग्य प्रधान हाइकुओं की संख्या बहुत ही कम है। उनके व्यंग्य प्रधान हाइकुओं की विशेषता यह भी हैं कि उनमें न तो किसी प्रकार की विद्वेष-भावना परिलक्षित होती है और न किसी प्रकार की आशिस्टता ही दिखाई देती है। इनमें सर्वत्र भावोत्कर्षता और प्रभावोत्पादकता विद्यमानहै।

इस संग्रह में ऋतु संबंधी हाइकु भी मिलते है। इनके हाइकुओं में कहीं ऋतु का संकेत स्पष्ट है, तो कहीं ऋतु बोधक शब्दों (ओसआदि) द्वारा ऋतु का बोध होता है।

यहाँ पर उदाहरण दृष्ट है-

रमे खेतरे/वर्षा जणे मेढ़क/पीठी चोणेला ।२२

उपर्युक्त हाइकु में वर्षा ऋतु का वर्णन है।

पतझर का वर्णन लिखिए-

पर्ण विनानी/डाणीओं मां सूरज/टिंगातो जाय।२३

तथा

खरतुं पान/जोता नीचे भेटतुं/निज छायाने।२४

उपरोक्त हाइकु में पतझर की ऋतु का प्रकृति पर क्या प्रभाव पड़ता है , यह स्पष्ट हो जाता है पत्तों के झर जाने से उसका रूप, रंग,गंधसब नष्ट हो जाता हैं,वह वृक्ष सुखे ठूंठसा प्रतीत होता है।

यहाँ पर स्नेहरश्मि के हाइकु को प्रस्तुत करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक हाइकु में अलग -ढंग से प्रभावित करता है। स्नेहरश्मि के अनेक हाइकु हमारे हृदय में जा उतरते हैं।

डॉ. भगवतशरण अग्रवाल और स्नेहरश्मि के हाइकु-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन (संवेदनाव विषय की दृष्टि से)

डॉ. भगवतशरण अग्रवाल तथा स्नेहरश्मि के हाइकु की तुलना हम निम्नांकित रूप में कर सकते हैं-

कितनी बार/बारी से झाँका चन्द्र/तोड़ ने नींद।२५

फोरम मीठी/बारी खोलूँ त्यां चन्द्र/झांखों आथमे।२६

यहाँ पर दोनों कवियों की रचनाओं में साम्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। चन्द्र की कल्पना दोनों कवियों ने अपनी-अपनी दृष्टि से की है।

प्रेम जीवन का सौंदर्य है। प्रेम के बिना यह समाज निस्सार है । हमारी स्नेहिल बातें किसका मन नहीं मोह लेती। स्नेहकी इस मधुर अनुभूति को डॉ. अग्रवालजी और स्नेहरश्मि ने अपने हाइकु में महसूस किया है।

हर मोड़ पै/फूल ही फूल खिलें/यदि साथ दो।२७

नाजुक तारी आंगणी चूँटे फूल/घवाय नेण।२८

जापानी कवियों की भाँति हिन्दी तथा गुजराती कवियों ने भी हाइकु में प्रकृति के अनेक रंग उकेरे हैं ।हाइकु के सत्रह अक्षरों के वर्ण- अनुशासन में डॉ. भगवतशरण अग्रवाल तथा स्नेहरश्मि ने बड़ी कुशलता से प्रकृति चित्रों की सजीवता को रेखांकित किया है।

हिन्दी में डॉ. भगवतशरण अग्रवाल के प्रकृति संबंधी हाइकु दर्शनीय है-

किसे रिझाने?/बदलती श्रृंगार/प्रकृति नित्य।२९

गुजराती कवि स्नेहरश्मि ने अपने हाइकु में प्रकृति के कार्य व्यापारों को बड़े भव्य रूप में अंकित किया है-

दक्षिणा निले/आलिंगी पृथ्वीः रंग/राग पराग।३०

फूल खिल्या ने/रमे पंखिड़ाःपंथ/पंथहूँ पेखुं।३१

नैसर्गिक सौंदर्य को डॉ. अग्रवालजी ने अपने हाइकुओं में प्रतिबिंबित किया है यहाँ पर सूर्य की महिमा का वर्णन है -

सदियाँ बीतीं/कभी मेलान हुआ/चिट्टा सूरज ।३२

सूर्य की ही महानता को अलौकित करते हुए स्नेहरश्मि जी कहते हैं की महान लोग मिटते-मिटते भी अपनी उपयोगिता सिद्ध कर जाते हैं ।इस संदर्भ का हाइकुहै-

आथमें भाणुः/सांज एकली पड़ीः/डोकायो चन्द्र ।३३

कथ्य और शिल्प की दृष्टि से डॉ. भगवतशरण अग्रवाल के हाइकु और स्नेहरश्मि के हाइकुओं समानताएँ और विषमताएँ हैं परंतु विषय की दृष्टि से दोनों कवियों के हाइकुओं में कुछ वैषम्य भी है।

यहाँ पर हम कुछ बिंदुओं को इस तरह से देख सकते है-

प्रकृतिः- डॉ.भगवतशरण अग्रवाल के हाइकुमें ऋतु-बोधक पदों का उल्लेख ज्यादा हुआ है। जैसे- वसंत, ग्रीष्म,

वर्षा,शरद आदि। लेकिन स्नेहरश्मि के हाइकु में प्रकृति की यह अनिवार्यता नहीं जुड़ी है। उन्होंने प्रकृति से जुड़ी ज्यादातर रचनाएँ पेड़, फूल, पत्तियाँ, सूर्य, चंद्र आदि को लेकर की है।

ऐतिहासिकताः- डॉ. भगवतशरण अग्रवाल के हाइकु में भारतीयता और भारतीय संस्कृति की झलक मिलती है, लेकिन स्नेहरश्मि के हाइकु में संस्कृति से जुड़ी रचनाएँ नहीं है। उनकी ज्यादातर रचनाएँ प्रकृति संबंधी है।

अतः हम संक्षिप्त में कह सकते हैं कि डॉ. भगवतशरण अग्रवालजी हिन्दी हाइकु रचना करने वालों में सबसे अग्रणीय व्यक्ति है। इस तरह गुजराती साहित्य में झीणाभाई देसाई 'स्नेहरश्मि' गुजराती हाइकु कवियों में प्रथम सिद्धहस्त हाइकुकार है। आम तौर पर देखा जाता है कि डॉ. अग्रवालजी तथा स्नेहरश्मि जी के हाइकु में ज्यादातर समानताएँ है। लेकिन दोनों के हाइकु में कुछ विषमताएँ भी है।

संदर्भ सूची

१. टुकड़े -टुकड़े आकाश, डॉ. भगवतशरण अग्रवाल, साहित्य-भारती प्रकाशन, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण,१९८७,पृ.६

२. सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज, स्नेहरश्मि,विद्याविहार प्रकाशन अहमदाबाद, प्रथम संस्करण-१९६७,पृ.१४०

३. शाश्वत क्षितिज, डॉ. भगवतशरण अग्रवाल,चिन्ता प्रकाशन, शकरपुर - दिल्ली, प्रथम संस्करण-१९८५,पृ.४९

४. वही,वही, पृ.३०

५. वही,वही, पृ.३२

६. वही,वही, पृ.३३

७. वही, वही, पृ.६४

८. वही, वही, पृ.४२

९. वही, वही, पृ.७८

१०. वही, वही, पृ.२४

११. वही, वही, पृ.१५

१२. वही, वही, पृ.५६

१३. सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज, स्नेहरश्मि, विद्याविहार प्रकाशन-अहमदाबाद, प्रथम संस्करण-१९६७,पृ.३१

१४. वही, वही, पृ.४५

१५. वही, वही, पृ.२

१६. वही, वही, पृ.३६

१७. वही, वही, पृ.३२

१८. वही, वही, पृ.३८

१९. वही, वही, पृ.३४

२०. वही, वही, पृ.७५

२१. वही, वही, पृ.६९

२२. वही, वही, पृ.६७

२३. वही, वही, पृ.२८

२४. वही, वही, पृ.१९

२५. शाश्वत क्षितिज, डॉ.भगवतशरण अग्रवाल, चिन्ता प्रकाशन, शकरपुर -दिल्ली, प्रथम संस्करण-१९८५,पृ.३९

२६. सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज, स्नेहरश्मि, विद्याविहार प्रकाशन- अहमदाबाद, प्रथम संस्करण-१९६७,पृ.४३

२७. शाश्वत क्षितिज, डॉ. भगवतशरण अग्रवाल, चिन्ता प्रकाशन, शकरपुर -दिल्ली, प्रथम संस्करण -१९८५,पृ.३२

२८. सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज, स्नेहरश्मि, विद्याविहार प्रकाशन -अहमदाबाद, प्रथम संस्करण-१९६७,पृ.७५

२९. शाश्वत क्षितिज, डॉ. भगवतशरण अग्रवाल, चिन्ता प्रकाशन, शकरपुर -दिल्ली, प्रथम संस्करण -१९८५,पृ.५४

३०. सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज, स्नेहरश्मि, विद्याविहार प्रकाशन -अहमदाबाद, प्रथम संस्करण-१९६७,पृ.६४

३१. शाश्वत क्षितिज,डॉ. भगवतशरण अग्रवाल, चिन्ता प्रकाशन, शकरपुर -दिल्ली,प्रथमसंस्करण-१९८५,पृ.५२

३२. सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज, स्नेहरश्मि, विद्याविहार प्रकाशन -अहमदाबाद, प्रथम संस्करण-१९६७,पृ.१७

३३. शाश्वत क्षितिज,डॉ.भगवतशरण अग्रवाल, चिन्ता प्रकाशन, शकरपुर -दिल्ली, प्रथम संस्करण-१९८५,पृ.७५

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी ग़ज़ल

इति शिवहरे

शोधार्थी
दयालबाग़ शिक्षण संस्थान,
आगरा

ग़ज़ल, संक्षिप्तता में व्यापकता समेटे हुए तीव्र भावानुभूति कराने वाली उर्दू काव्य की महत्वपूर्ण एवं अत्यधिक लोकप्रिय विधा है। ग़ज़ल परंपरा फारसी-अरबी से प्रारंभ होती हुई हिन्दी में आई है।

प्रारंभ में उर्दू ग़ज़लें दरबारों की शोभा बढ़ाती थी और विलासिता में लिप्त पाईं जाती थी, किंतु हिन्दी ग़ज़लकारों ने युगांतर से चली आ रही इस परंपरा में परिवर्तन करके कालांतर में हिन्दी ग़ज़ल को चेतना से जोड़कर सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रों में सुधार लाने का संभव प्रयास किया है। अब ग़ज़ल शयन-कक्ष की कल्पनाओं से निकलकर यथार्थ के धरातल तक आ गई हैं।

'ग़ज़ल आधुनिक युग में सामंती युग की बेज़ुबान दरबारी रखैल नर्तकी नहीं है, बल्कि आधुनिक आज़ाद औरत की तरह अदब की अन्य विधाओं की अग्रिम कतार में जन-जन की मुक्ति का परचम उठाए इंकलाब की घोषणा कर रही है।'१

हिन्दी ग़ज़ल से अवगत कराने एवं संभावनाओं को आकाश देने के क्रम में अमीर खुसरो का नाम सबसे पहले आता है, तत्पश्चात कबीर, भारतेन्दु, निराला, हरिऔध आदि कवियों ने भी अपनी अभिव्यक्ति को स्वर देने का माध्यम ग़ज़ल को बनाया।

इक्कीसवीं सदी के ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल को नया आयाम देने का प्रयास किया। उसे चेतना से समृद्ध करके भुखमरी, गरीबी, लाचारी, बेरोजगारी, शोषण, दमन मजदूरी, मजबूरी आदि पर अपना विद्रोहमयी स्वर अपनाकर सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अमीर खुसरो से प्रारंभ होने वाली हिन्दी ग़ज़ल की विकास-यात्रा में चंद्रसेन विराट, कुँवर बेचैन, अदम गोंडवी, शरद मिश्र, सूर्यभानु गुप्त आदि ग़ज़लकारों के नाम आते हैं, जिन्होंने हिन्दी ग़ज़ल परंपरा के यज्ञ में अपनी भावनाओं को मंत्र रूपी स्वर लेकर शोषण- दमन के विद्रोह में क्रांति की चिंगारी पैदा करके अंधकारमय समाज को देदीप्यमान करने का प्रयास किया है।

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से भारतीय समाज में व्याप्त अराजकता, मूल्यहीनता, सामाजिक -राजनैतिक विषमता, शोषित, पीड़ित, वंचित एवं सर्वहारा वर्ग की दबी हुई आवाज को मुखर किया है। राजनैतिक व्यवस्था पर चोट करते हुए

जनता से झूठे वादे करने वाली सुषुप्त शासन प्रणाली में चेतना भरने का प्रयास किया है-

तुम्हारी मेज़ चांदी की तुम्हारे जाम सोने के
यहाँ जुम्मन के घर में आज भी फूटी रक़ाबी है।२

आज भी एक ओर जहाँ नारी को पूजनीय समझा जाता है, वहीं दूसरी ओर उसे भोग्या की संज्ञा की दी जाती है। कुछ तो इन्हें मनोरंजन का साधन भर समझने से नहीं चूँकते।

चिंतनीय है कि इक्कीसवीं सदी में भी नारी की स्थिति में बहुत ज़्यादा सुधार नहीं हुआ है।

औरत तुम्हारी पाँव की जूती की तरह है,
जो बोरियत महसूस हो घर से निकाल दो।३

हिन्दी ग़ज़ल, चेतना को जागृत करने की ओर सदैव अग्रसर रही है। उसकी सामाजिक - सांस्कृतिक जन चेतना से जोड़ने में भी अहम भूमिका रही है। वर्तमान में संस्कृति का निरंतर क्षरण, बिगड़ती परंपराएँ, पुरातन और अधुनातन के बीच समन्वय में आई कमी एवं नग्नताओं, विद्रूपताओं आदि ने अपना जोर पकड़ा है, प्रयास के बावजूद योजनाएँ, आंदोलन, विमर्श कई बार अप्रभावकारी रहे हैं। स्थितियां जस की तस रही हैं । इससे आहत होकर ग़ज़लकार लिखता है -

'इतने बरस के बाद भी कुछ दृश्य मुल्क में,
यूँ देखना नहीं था, मगर देखना पड़ा।'४

भौतिकवादी युग में पलायनवादी प्रवृत्ति अधिक बड़ी है। भावनात्मकता का स्थान अब प्रयोगात्मकता ने ले लिया है। सम्बन्ध, स्वार्थ तक ही सीमित रह गए हैं। शिखर की चाह में अब मनुष्य किसी के भी चरण-चुंबन तक से नहीं चूँकता है।

लोभ के मोह में व्यक्ति कुछ भी करने को तैयार है। तब चंद्रसेन विराट लिखते हैं -

स्वर स्वरों में मिलाने लगे।
लोग गुणगान गाने लगे।
हाथ जो मुठ्ठियां तानते,
आज माला पिन्हाने लगे।
भाव ऊँचा चढ़ा देखकर
लोग रिश्ते भुनाने लगे।

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी ग़ज़लों ने विसंगतियों पर सदैव चोट की हैं। इनके केंद्र में भोग-विलास में लिप्त राजाओं के कसीदे नहीं रहे अपितु गाँव के किसी कोने में कर्ज, शोषण, गरीबी, लाचारी, बेगारी आदि से जूझते पात्र हैं। आम आदमी की व्यथा का वर्णन इन्होंने अपनी ग़ज़लों में किया है। डॉ० कुंअर बेचैन भी इस सदी के प्रसिद्ध गज़लकार रहे हैं। 'शामियाने काँच के' एवं 'महावर इंतजारों का' इनके प्रमुख ग़ज़ल संग्रह हैं। कुंअर बेचैन अपनी ग़ज़लों को अभिव्यक्त का सशक्त माध्यम बनाते हुए सर्वहारा वर्ग के यथार्थ का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि-

कैसे बताएँ हम तुम्हें क्या-क्या है रामफल,
आँसू के एक गाँव का मुखिया है रामफल।
मारा है जिसको रोज महाजन के ब्याज ने
बेबस से उस गरीब का रुपया है रामफल।
मत उसको खींच -खींच के बाहर निकालिए
सीता-सती के पाँव का बिछिया है रामफल।५

मानवीय मूल्यों में आई गिरावट, पूँजीपतियों की संवेदनहीनता सर्वहारा वर्ग लिए चुनौती बनकर खड़ी है। यह वर्ग-भेद पीड़ा के द्वार खोल रहा है। अतः स्पष्ट है कि-

जहाँ इंसान की औकात से दौलत बड़ी होगी।
महल तनकर खड़े होंगे, झुकी हर झोपड़ी होगी।६

इन गजलकारों की धारदार शैली ने जहाँ सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है वहीं नई पीढ़ी में अपनी संस्कृति से भटकाव को स्पष्ट उजागर

करते बेबाकी से अपनी कलम चलाई है। यहाँ एक व्यक्ति कई-कई मुखौटे पहने हुए है। इससे यह तय पाना मुश्किल है कि उसका वास्तविक स्वरूप रूप क्या है? भाषणों में नारी चेतना, नारी शक्ति को बढ़ावा देने वाले उन्हीं भद्र पुरुष के कमरे में असहाय, बेबस स्त्रियां अपने सम्मान की भीख माँगती नजर आती हैं। जो दृष्टि बाहर गंगाजल सी पावन दिखाई देती है उसी दृष्टि में बंद कमरे में वासना की लौ भी चमक सकती है।

'गाँव की ताज़ी चिड़िया भून के प्लेट में रखी जाती है
फिर गिद्धों की दावत चलती पुरुषोत्तम के कमरे में। '७

एक ओर जहाँ आक्रोश का स्वर दिखाई पड़ता है वहीं दूसरी ओर उसमें सौम्यता एवं व्यंग्य का पुट भी मिलता है ?। तंज का सहारा लेकर भी इन गज़लकारों ने अपनी बात रखी है। हिन्दी ग़ज़ल व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत रही है। सामाजिक व्यवस्था प्रणाली पर व्यंग्य करते हुए शरद मिश्र लिखते हैं -

' कंटकों के दुःख तजें, जलजात की बातें करें।
चल नदी में डूबकर, बरसात की बातें करें।
कोठियों के लान में है घास की इक झोपड़ी,
उसमें मेहमानों के सँग देहात की बातें करें।'८

जिस प्रकार उर्दू ग़ज़ल में बहर,रदीफ, काफिया आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है उसी प्रकार हिन्दी गजलकारों ने भी अपनी ग़ज़ल में शिल्प, संवेदना, लय, समान्त-पदान्त आदि का ध्यान रखते हुए उसे छंदबद्व तरीके से लिखा है। सर्वप्रथम हिंदी ग़ज़ल दोहा छंद में लिखी गई तत्पश्चात चौपाई, हरगीतिका, पंचचामर, पीयूष वर्षा आदि छंदों में भी हिन्दी ग़ज़ल का स्वरूप उभरकर आया है।

इसी क्रम में चौपाई छंद का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

अधरों पर जितने छाले हैं।
सबके सब देखे-भाले हैं।
जिनका नाम घोटालों में था
फिर मुखिया होने वाले हैं।

इन गज़लकारों ने अपनी रचनाधर्मिता को आधार बनाकर समाज के हर अछूते पहलू को उठाया है। औद्योगीकरण, शहरीकरण, आधुनिकीकरण, भ्रष्टाचार, नक्सलवाद, आतंकवाद, अमानवीयता, आरक्षण आदि विषयों पर अपनी कलम चलाई है।

लछमिनिया थी चुनी गई परधान मगर
उसका पति प्रधान देखकर आया हूँ।९

बदलते परिवेश में आधुनिकता की अंधी दौड़ में स्वत्व से समझौता कर लेना एवं उसी गति में शामिल होकर सही-गलत का भेद न कर पाने की क्षमता मानवीय संवेदनाओं को कहीं विकलांग न कर दे। अर्थवादी एवं बाजारवादी व्यवस्था ने सब-कुछ व्यापार की वस्तु बना दी है। आज के बाजार में देह के साथ रूह तक की सौदेबाजी की जा सकती है।

तब गज़लकार उर्मिलेश कहना पड़ा-

ये खबर भी छापिएगा आज के अखबार में।
रूह भी बिकने लगी है जिस्म के बाजार में।
देखकर बच्चों के फैशन वो भी नंगा हो गया,
ये इजाफा भी हुआ इस दौर की रफ्तार में।

इक्कीसवीं सदी में महिलाओं ने भी अपने विचारों को व्यक्त करने का माध्यम ग़ज़ल को बनाया है। अब रूढ़ियों के किले पर कीलें ठोकने के लिए महिलाएँ आगे आने लगी हैं। अब वे कोमल ललनाएँ नहीं रहीं बल्कि अपने हक के लिए रण क्षेत्र में वीभत्स रूप में उतरने वाली चंडी भी बन चुकी हैं।

अपने अधिकार के लिए आवाज उठाने वाली महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती हुई महिला गज़लकार

मीनाक्षी जिजीविषा लिखती हैं कि-

अब तो दो तुम उसको जायज हक उसका,
घर की तख्ती के इस पत्थर से आगे। १०

वहीं विनीता गुप्ता लिखती हैं कि -

डिबिया में है धूप का टुकड़ा वक्त पड़ेगा खोलूंगी।
आसमान जब घर आएगा, मैं अपने पर तोलूंगी।

कंचन, कमनीय काया के काल्पनिक शेर से बाहर निकलकर महिला गजलकार यथार्थवाद की ओर उन्मुख हुई हैं। उन्होंने भोगी हुई पीड़ा पर बल देते हुए समाज में स्त्रियों के सम्मान के नाम पर व्याप्त ढोंग का पर्दाफाश करती हुई डॉ. भावना लिखती हैं-

बहुत ही खोखली लगती वहाँ सम्मान की बातें,
जहाँ औरत की हर चर्चा बदन पर आके रुकती है।११

इक्कीसवीं सदी के गज़लकारों ने जिस संवेदना को जिया है, महसूस किया है उसे ज्यों का त्यों लिखकर प्रस्तुत किया है। बेरोज़गारी और गरीबी का प्रभाव न सिर्फ परिवार के मुखिया पर ही पड़ता है बल्कि बच्चे भी इसकी चपेट में आते हैं। परिस्थितियों के कारण ये बच्चे अपने बचपन से सीधा

प्रौढ़ावस्था में प्रवेश कर जाते हैं। शरारत करने की उम्र में इनमें समझदारी आ जाती है। इसी भावना-संवेदना के चरमोत्कर्ष पर गज़लकार राजेश रेड्डी कहते हैं -

शाम को जिस वक्त खाली हाथ घर जाता हूँ मैं,
मुस्कुरा देते हैं बच्चे, और मर जाता हूँ मैं।

आज एक ओर जहाँ कुछ बच्चे खुशहाल जीवन जी रहे वहीं दूसरी ओर कुछ बच्चे प्रतिकूल परिस्थितियों में काम पर जा रहे हैं। नन्हे-नन्हे हाथों से बड़े-बड़े काम करते इन नौनिहालों की पीड़ा अपने शब्दों में व्यक्त करते हुए गज़लकार वशिष्ठ अनूप जी लिखते हैं कि -

होटलों की प्लेट में तकदीर अपनी खोजता
बेवजह पिटता हुआ मनहूस सा बचपन मिला

ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन गज़लकारों ने सिर्फ समस्या को ही नहीं दिखाया बल्कि उसका समाधान प्रस्तुत करने की कोशिश भी की है। यहाँ कल्पना के साथ शब्दों में जोड़-तोड़ नहीं है बल्कि वास्तविकता के धरातल पर उभरा हुआ स्वर है।उदाहरण के लिए वशिष्ठ अनूप के ही एक शेर की रवानगी देखिए-

मेरा हर शब्द है सच बयानी
कल्पना की बुनाई नहीं है।
मेरी कविता बगावत बिगुल है,
निर्बलों की दुहाई नहीं है।१२

आज उपभोक्तावादी संस्कृति ने जहाँ धर्म एवं ईमान से लेकर लेखनी तक को व्यावसायिक कर दिया है। ऐसे में इन गज़लकारों ने स्वाभिमान से समझौता न करके अपने उसूलों पर अड़े रहकर सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक मूल्यों का विकास करने में जो महत्वपूर्ण योगदान दिया है वह अविस्मरणीय रहेगा। गज़लकार मेजर आदित्य त्रिपाठी ने लिखा -

मोल कितना लगाओ बिकेगी नहीं,
कृष्ण की बांसुरी और कवि की कलम।
युद्ध में आज हैं आमने-सामने,
वृत्तियां आसुरी और कवि की कलम।

वहीं विघटन की स्थिति में आशावादिता एवं सकारात्मक विचारों ने समाज को एक नई दिशा देने का काम किया है। समता में समभाव सहेजने की दृष्टि रखते हुए डॉ गोविंद द्विवेदी लिखते हैं -

अलगावों के राग अलापने तुमने हम
मिलने के प्रस्ताव सहेजे जीते हैं।
उन्हें एक करने की कोशिश है बस जो
युग- युग से बिखराव सहेजे जीते हैं।

हिन्दी ग़ज़ल के सन्दर्भ में जियाउर रहमान जाफरी का कथन है कि-' हिन्दी ग़ज़ल मनुष्य को प्रेम, उल्लास और सुकून से जीने की हिमायत करती है। वह उस हर बँटवारे के खिलाफ है जो मनुष्य को ज़ालिम, कठोर भीडतंत्र का हिस्सा बना देती है।'१३ हिन्दी ग़ज़ल समाज में व्याप्त भेद-भाव, कुरीतियों के विरुद्ध जन-जागृति की चेष्टा लेकर चली है।

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी ग़ज़ल कारों के रूप में हमारे सामने कई नाम आते हैं जिसमें जहीर कुरैशी, अलोक श्रीवास्तव, नचिकेता, देवमणि पांडेय, दरवेश भारती, अशोक अंजुम, दीप्ति मिश्र, डॉ उर्मिलेश, ज्ञान प्रकाश विवेक आदि हैं।

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी गजलकारों से तात्पर्य किसी लिपि विशेष से नहीं है बल्कि इससे है कि हिन्दी ग़ज़लें आम आदमी के जीवन में होने वाली घटनाओं को लेकर चली हैं।

हिन्दी ग़ज़ल को अभिव्यक्त करते हुए ग़ज़ल के प्रथम शोधकर्ता रोहिताश्व अस्थाना ने लिखा है कि -

'दर्द का इतिहास है हिन्दी ग़ज़ल।
एक शाश्वत प्यास है हिन्दी ग़ज़ल।
प्रेम मदिरा रूप साकी से सजा,
अब नहीं रनिवास है हिन्दी ग़ज़ल।'

सन्दर्भः

१ प्रभा दीक्षित : 'हिन्दी ग़ज़ल : जन-पक्षधर जीवनानुभवों का ताप', हिन्दी ग़ज़ल का परिदृश्य (सं. मधु खराटे), विद्या प्रकाशन, कानपुर, २०१८, पृ. ११८

२ समय से मुठभेड़ः अदम गोंडवी

३ धरती की सतह पर : अदम गोंडवी, अनुज प्रकाशन,

४ आस्था के अमलतासः चंद्रसेन विराट, पृ.१२

५ शामियाने काँच केः कुंअर बेचैन, पृ.५०

६ शामियाने काँच केः कुंअर बेचैन, पृ.४३

७ डी.एम. मिश्रः आईना दर आईना, पृ.२६

८ शरद मिश्रः शरद सर्जना खण्ड तीन

९ डी. एम. मिश्र : आईना दर आईना, नई दिल्ली, २०१६, पृ. २९

१० गद्य कोश : समकालीन ग़ज़ल में स्त्री/भावना

११ अविनाश भारतीः समकालीन हिंदी ग़ज़ल में अस्मितामूलक विमर्श

१२ शशिबिंदु नारायण मिश्रः गीतकार/गज़लकार डॉ वशिष्ठ अनूप का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

१३ जियाउर रहमान जाफरी : 'हिन्दी के समकालीन ग़ज़लकारों की मूल संवेदना', अक्षरवार्ता इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल, मई २००८

विकास की अवधारणा और पर्यावरणीय चिंतन

देवाशीष कुमार

शोधार्थी
हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी,
अलीगढ़
E.Mail: devashishjaiswal72@gmail.com
Mob.: 7318281074

पता- देवाशीष म/द रंजना मिश्रा, १६७३
सिविल लाइंस, थाना-दोधपुर, अलीगढ़-२०२००१

शोध सार - हम यह मानते हैं कि प्रकृति स्वयं में पूर्ण, सृजनकारी और सहज रूप को धारण किए हुए है। उसका प्रत्येक जीव-जन्तुओं से एक अभिन्न एवं गहन संबंध है, जो उसके आस-पास निवास करते हैं। यदि यह कहा जाए कि उसके अस्तित्व से ही सभी जीवों का अस्तित्व बना हुआ है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आदि काल से ही मनुष्य सभ्यता के विकास में प्रत्यक्ष रूप से प्रकृति का महत्वपूर्ण योगदान है, जिसे किसी भी मूल्य पर नकारा नहीं जा सकता है। आदिमानव ने अपने आरंभिक चरण में प्रकृति के संरक्षण में रहते हुए स्वयं को अन्य जीव-जंतुओं से बेहतर बनाया। प्रकृति से सीखते हुए उसने आग का आविष्कार कर अपना भरण-पोषण संतुलित रूप से करना सीखा। उसने स्वयं के रहने के लिए जंगल से लकड़ियों को तोड़ कर अपने लिए निवास बनाया तथा पेट भरने के लिए कंद-मूल से लेकर मांस-भक्षण तक सारी सुविधाएं स्वयं के अनुरूप बनाई। इस तरह इस प्रकृति ने मनुष्य की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति की। भारतीय एवं पश्चिमी दृष्टिकोण में भी औद्योगिक क्रांति से पहले अनेक दार्शनिकों एवं ऋषि-मुनियों ने प्रकृति को पूजनीय माना और उनसे सामान्य जनता को उतना ही लेने का आग्रह किया गया; जितनी उन्हें जरूरत हो। समय तेजी से बदला और मनुष्य ने समय के साथ सामंजस्य बिठाते हुए प्रकृति से संघर्ष करने के साथ ही साथ कदमताल करने का प्रयास किया। उसने औद्योगिक क्रांति के साथ समाज का आधुनिकीकरण किया जिससे वैज्ञानिक चेतना का विकास एवं विस्तार आरंभ हुआ। मनुष्य जीवन को और अधिक सुविधाजनक बनाया जा इसके लिए उसने उसने औद्योगिक कारखाने विकसित किए; जिससे कम मानव श्रम में अधिक से अधिक उत्पादन हो। मगर इस भौतिक विकास की प्रक्रिया में वह आत्मकेंद्रिता की ओर बढ़ता गया जिसका परिणाम आज यह हुआ कि वह प्राकृतिक पर्यावरण और उनमें उपस्थित उससे स्वतंत्र जीवों की ओर ध्यान ही नहीं दे सका। दुनिया की आधी से अधिक आबादी तक तो यह विकास और जीवन जीने के लिए सुविधाएं पहुँच ही नहीं रही हैं। सवाल यह उठता है कि जब आधुनिक समय में प्रत्येक व्यक्ति के विकास के लक्ष्य से इतने सारे उद्योग बनाए गए, इतने वैज्ञानिक आविष्कार हुए तो अभी तक दुनिया भर में मनुष्य की एक बड़ी आबादी भूखी क्यों सो रही है? वह शिक्षा, स्वास्थ्य और अनेक बुनियादी सुविधाओं से आज भी वंचित क्यों है?

आधुनिक मनुष्य ने विकास के जिस पैमाने से स्वयं के जीवन को उत्तम बनाने का प्रयास किया है क्या वह उसमें सफल हो सका है? तब हमारा स्वयं के द्वारा विकसित इस विकास की अवधारणा पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि विकास की इस अंतहीन दौड़ में मनुष्य अपने जीवन को विनाश की तरफ ले जा रहा है। यह भी विचारणीय है कि अपने साथ-साथ इस पृथ्वी तथा इस पर निवास कर रहे अन्य जीव-जंतुओं का अंत कैसे करेगा इसका उत्तर काफी निराशाजनक हो सकता है।

बीज शब्द - पर्यावरण, विकास, मानव, अवधारणा

आलेख - प्रकृति; मनुष्य तथा सभी जीव-जंतुओं से निर्मित वह बाहरी आवरण है, जो इस पृथ्वी के भौतिक परिवेश को पूरी तरह से घेरे हुए है। पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व तभी आया जब इसका वातावरण इसके अनुकूल हुआ, पृथ्वी के इस प्राकृतिक वातावरण को बनने में भी कई बिलियन वर्ष लगे हैं। बहुत समय पहले, लगभग बीस लाख वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों का मनुष्य-जाति के रूप में उदय हुआ। आरंभिक समय में मानव तथा प्रकृति का अविच्छिन्न संबंध रहा है। 'जैसे ही नवप्रस्तर क्रांति का आरंभ हुआ, मनुष्य ने खेती-बारी करना और जानवरों को पालन शुरू कर दिया। उन्होंने अनजाने ही कदम-ब-कदम उस प्राकृतिक पर्यावरण को कई तरह से बदलना शुरू कर दिया, जिसमें वे रह रहे थे। उसके बाद, उद्योगों के उदय और जीवाश्म-जनित ईंधन और घटक हथियारों का आधुनिक युग प्रारंभ हुआ। परिणामस्वरूप मनुष्य भौतिक पर्यावरण के लिए एक गंभीर संकट के रूप में सामने आया है।'१

समय बदला और धीरे-धीरे मनुष्य अपनी आदिम सभ्यता से आधुनिक सभ्यता की ओर बढ़ता गया यानि कि वह आदिमानव से आधुनिक मानव बनता गया। साथ ही प्रकृति से संघर्ष भी बढ़ता गया जिसमें मनुष्य को अपने अस्तित्व और विकसित करने को भावना प्रबल होती गई। डार्विन का विकासवाद इसकी पुष्टि भी करता है कि जो भी जीव प्रकृति के साथ संघर्ष में जीवित रह पायेगा वही आगे भी अपनी जाति के अस्तित्व को बरकरार रख सकेगा। इसे 'योग्यतम की उत्तरजीविता का सिद्धांत' से परिभाषित किया गया। आज भी आधुनिक पूंजीवादी सभ्यता ने मनुष्य को न सिर्फ प्रकृति विरोधी बनाया; बल्कि वह अपनी ही जाति का दुश्मन बन बैठा है। आज पूंजीवाद ने स्वामी और गुलाम की धारणा को पहले से अधिक पुष्ट किया है जिसमें वह आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग का शोषण कर अपने को समृद्ध कर रहा है। इस आधुनिक मनुष्य एवं वर्तमान सभ्यता के संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी महत्वपूर्ण बात कही है- ''ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जाएगी त्यों-त्यों कवियों के लिए यह काम बढ़ता जाएगा। मनुष्य के हृदय की वृत्तियों से सीधा संबंध रखने वाले रूपों और व्यापारों को प्रत्यक्ष करने के लिए बहुत-से परदों को हटाना पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के नए-नए आवरण चढ़ते जाएंगे त्यों-त्यों एक ओर तो कविता की आवश्यकता बढ़ती जाएगी, दूसरी ओर कवि-कर्म कठिन होता जाएगा।'२ आधुनिक सभ्यता ने उसे प्रकृति से, साहित्य से कला से भी दूर कर दिया जिससे वह नितांत खाली एवं अकेला महसूस करने लगा।

वह प्रकृति जिससे हमने सहज ही सब कुछ पाया है आज हम मानव उसका विनाश करने पर क्यों तुले हुए हैं? आज की भोगवादी संस्कृति ने मनुष्य को लोभी और महत्वाकांक्षी बना दिया है। वह तथाकथित विकास के चक्र में फँसकर दिशाहीन हो चुका है। 'आज अपने ही हित में वह सबको नकारने के लिए विवश है, जिसे उसने प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करके, वनों और वन्य-जीवों को नष्ट करके तथा वायु और जल को प्रदूषित करके अपने हित में प्रकृति के साथ किया था।'३

सन् १९९० के बाद के दौर में जब हम नव उदारवाद की तरफ बढ़ रहे थे उस समय सारे देशों द्वारा वैश्वीकरण के रूप में एक संयुक्त विकास की अवधारणा रखी गयी, जिसके केंद्र में पश्चिम में पूंजीवादी मॉडल को लेकर चल रहे देशों का आर्थिक हित अधिक था। कालांतर में इस वैश्वीकरण से अमेरिका जैसे देशों का लाभ अधिक हुआ और आज इन देशों ने खुद को पूंजी और परमाणु जैसे तंत्र को विकसित कर स्वयं को महाशक्ति के रूप में दिखाकर सम्पूर्ण विश्व पर वर्चस्व कायम किया और सभी देशों में बाजार से लेकर सामाजिक, सांस्कृतिक रूप से अमेरिका की मैक्डोनल वाली संस्कृति थोपी जाने लगी। सन् १९९२ में संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा पर्यावरण और विकास

के मुद्दे को लेकर एक सम्मेलन आयोजित किया जाता है जिसमें डेढ़ सौ से अधिक देश एवं अनेक स्वयंसेवी संगठन भाग लेते हैं। सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य विकसित देशों द्वारा कार्बन उत्सर्जन को कम करने को लेकर योजनाओं का निर्माण होता है और उस पर अमल करने का प्रण भी लिया जाता है। इस सम्मेलन से पहले सन् १९८७ में 'अवर कॉमन फ्यूचर' शीर्षक से एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी जिसमें कहा गया था कि आर्थिक विकास के सस्ते तौर-तरीके से आगे बहुत नुकसान होगा। जाहिर है कि विश्व के दक्षिणी हिस्से यानि उत्तरी गोलार्द्ध पर स्थित धनी और विकसित देशों में विकास की मांग ज्यादा प्रबल है; जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध पर स्थित गरीब तथा विकासशील देशों में बहुत धीमी गति से विकास हो रहा है तथा उन्हें साथ-साथ पर्यावरण को संतुलित रखने का भी दबाव है। यह जगजाहिर है कि हमारे पास संसाधन बहुत सीमित हैं तो इन्हीं विकसित देशों की यह राजनीति रही है कि वह उन गरीब देशों को अपना उपनिवेश बना कर उनके संसाधनों को लूटकर अपने देश को समृद्ध करना है। पूंजीवादी व्यवस्था यही करती है। यहाँ रोजा लक्जेमबर्ग का उद्धरण देना अप्रासंगिक न होगा। उन्होंने कहा है- 'पूंजीवाद को अपने विकास के लिए गैर-पूंजीवादी अर्थतन्त्रों की ज़रूरत होती है। जिन देशों में पूंजीवादी अर्थतन्त्र की मौजूदगी नहीं होती उनके शोषण के बिना पूंजीवादी देशों में समृद्धि कैसे आएगी!'४ हालांकि इस समस्या की जड़ें उपनिवेशवादी समय तक जाती हैं, जब अंग्रेजों ने अपने देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए तीसरी दुनिया के देशों को अपना उपनिवेश बनाया और वहाँ से सारे प्राकृतिक संसाधनों को लूटकर अपने देश में ले गए। भारत में भी इन अंग्रेजों द्वारा यहाँ के प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा कर इसे उपनिवेश बनाकर शोषण करने के चरण में प्रथम कदम सन् १८६५ में भारतीय वन अधिनियम बनाकर शुरू किया गया। इसके बाद अनेक वन नीतियाँ बनाकर वनों को अपने अधिकार क्षेत्र में लेकर वहाँ रह रहे आदिवासियों को जबरदस्ती विस्थापित किया गया जो आज भी बदस्तूर जारी है।

आज सम्पूर्ण विश्व पर पूंजीवादी सभ्यता हावी है। इस आधुनिक सभ्यता ने मनुष्य से मनुष्यता छीनकर उसे बेतहाशा लोभ से भरकर भोगवादी बना दिया है। इसी प्रभाव में वह प्रकृति को लूटता जा रहा है। 'पुराने समाज में जिस तरह मनुष्य ने अपनी कल्पना से ईश्वर को जन्म देने के बाद उसकी अधीनता को स्वीकार कर लिया था उसी तरह पूंजी के इस युग में उसका नया ईश्वर पैसा बन बैठता है।'५ आज विकास के दो आयाम दिखते हैं- पहला, जिसमें मनुष्य विकास के नाम पर सभी प्राकृतिक संसाधनों से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्मांड पर अधिकार कर अपना वर्चस्व एवं अपनी श्रेष्ठता स्थापित करना चाहता है। वह विज्ञान को माध्यम बनाकर सब कुछ पर विजय प्राप्त कर लेना चाहता है। जबकि साहित्य का विकास इस तथाकथित विकास के विरुद्ध खड़ा है। जिसमें विजय की नहीं, सहयोग की भावना है; अधिकार की नहीं, सबकी आज़ादी की भावना है। वह सभी की स्वतंत्रता, अस्तित्व तथा समानता का ख्याल करता है। साहित्य ही है, जो हमारे अंदर की पाशविक प्रवृति को नियंत्रित कर सकता है। हमें ठहरकर सोचने के लिए विवश करता है कि हम जिस विकास के मार्ग की तरफ अग्रसर हो रहे हैं वह दूसरों के लिए विनाशकारी तो है ही; मगर हम खुद भी संकट में हैं। अतः विकास की इस अवधारणा पर पुनर्विचार करना चाहिए, मनुष्य को केवल स्वयं को केंद्र में न रखकर अपने से भिन्न जीवों को अन्य से अनन्य की भावना लेकर चलते हुए नीति-नियमों का पुनर्निर्माण करने की आवश्यकता है। हमारे लिए नैतिक, संवेदनात्मक और मूल्यपरक विकास नगण्य बन गया है उसके स्थान पर आर्थिक विकास केंद्र में आ चुका है। 'आज जीवन के प्रति जो दृष्टिकोण बन गया है और विकास का जैसा नज़रिया प्रचलित हो चुका है उसे बदला जाना ज़रूरी है।'६

विकास की अवधारणा पर बात करते हुए पूरन चंद्र जोशी का एक कथन उल्लेखनीय है। वह पश्चिम के विकसित देशों के संदर्भ में बात करते हुए कहते हैं कि, '१९३० में ग्रेट डिप्रेशन के समय उन्नत और विकसित देशों के समक्ष एक विचित्र स्थिति सामने आई। एक तरफ उनकी आर्थिक स्थिति बढ़ी हुई थी, उत्पादन का आधिक्य था और दूसरी तरफ क्रयशक्ति के अभाव में लोग चीजें खरीद नहीं सकते थे। वह एक ऐसा अति उत्पादन और कम खपत का घोर संकट था जिसमें यह जानते हुए भी कि लोग भूखे हैं, आर्थिक संतुलन बनाने के लिए अन्न, कॉफी, चाय, संतरे आदि खाद्य सामग्री को नष्ट किया जा रहा

था। ठीक इस ग्रेट डिप्रेशन के जमाने में जब इतना भयानक आर्थिक संकट और असंतुलन था, सारा अर्थशास्त्र सिद्धांत के स्तर पर इस अवधारणा से प्रतिबद्ध था कि व्यवस्था के भीतर स्वयं को संकटमुक्त करने की क्षमता है और उसे किसी बाहरी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। हमारी अर्थव्यवस्था असंतुलित और संकटग्रस्त हो गई, वह स्वयं को सुधारने में असमर्थ है और उसे राज्य के हस्तक्षेप की जरूरत है, इस बात पर सबसे पहले ध्यान किसी अर्थशास्त्री का नहीं, पत्रकारों का गया क्योंकि पत्रकार जीवन के साथ सीधा ज्यादा सीधा संबंध रखते हैं।'७ इसी प्रकार साहित्य का समृद्ध इतिहास बताता है कि वह मनुष्य की संवेदनाओं को दर्ज करने के साथ-साथ ही जीवन के साथ गहराई से जुड़ा होने कारण जीवन को समृद्ध भी करता आ रहा है।

प्रकृति ने मानव-जीवन का भौतिक विकास ही नहीं अपितु उसकी आंतरिक चेतनाओं का विकास करने में भी महती योगदान दिया। फलस्वरूप मनुष्य ने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के रूप में साहित्य एवं कला का सृजन किया। प्रकृति से मनुष्य की रागात्मक संबंध की अभिव्यक्ति साहित्य में हमें स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। संस्कृत के महान कवि कालिदास और उनके समकालीन कवियों की रचनाओं से लेकर आधुनिक साहित्यकारों द्वारा प्रकृति एवं मनुष्य के मध्य रागात्मक संबंधों को चित्रित किया गया है। भक्तकवि सूरदास के यहाँ प्रकृति जीवन के प्रत्येक उत्सव में शामिल हैं। 'उनके यहाँ मनुष्य सृष्टि के साथ ताल, लय, गति, प्राण, अनुभूति सभी दृष्टियों से एकमेक हो गया है।'८ मनुष्य ने प्रकृति के साहचर्य में रहते हुए ही अपने लिए मौलिक भाषा, संस्कृति का निर्माण किया यही वजह है कि विभिन्न भौगोलिक क्षेत्र में रहते हुए मनुष्यों की अपनी-अपनी भाषाएँ एवं संस्कृतियां विकसित हुईं।

पिछले कई दशकों से पर्यावरण के प्रति जो चिंता दिखाई दे रही है वही साहित्य के केंद्र में भी स्थापित होती गई है। आज वर्तमान दशक में प्रत्येक भाषा के साहित्य में पर्यावरण केंद्रित रचनाएं प्रमुखता से लिखी जा रही हैं। सत्ता और पूंजी की साँठ-गाठ से जो नुकसान प्राकृतिक पर्यावरण को हो रहा है उसे साहित्य बखूबी दर्ज कर रहा है। आज का औद्योगिक जगत स्वयं के विस्तार के लिए गरीब मजदूरों के घरों को उजाड़ कर खुद को हर जगह स्थापित कर लिया है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जिन्होंने अपने विभिन्न उत्पादों से, ऐड्वर्टाइज़िंग को माध्यम बना कर प्रत्येक मध्यम से लेकर गरीब व्यक्तियों को भी अपने उत्पादों की जरूरत महसूस करा कर उन्हें बेचा और उस लाभ से कुछेक धनी लोगों को लाभ पहुंचाने का काम बखूबी किया है। इस खुली अर्थव्यवस्था ने किस कदर असमानता लायी है, इन सबकी आलोचना अलका सरावगी के उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' में मिलता है। आज विकास के नाम पर प्रत्येक गतिविधि को उचित ठहराया जा रहा है। आधुनिक सभ्यता ने मनुष्य के अंदर वैज्ञानिक चेतना का विकास किया मगर उसे यह एहसास नहीं कराया कि विकसित औद्योगिक और विज्ञान आज कुछ लोगों के स्वार्थों की पूर्ति का औजार भर है। संजीव का उपन्यास 'रह गईं दिशाएं इसी पार' इसी विज्ञान की गाथा कहती है जो कॉर्पोरेट जगत के प्रख्यात पूंजीपति 'बिस्नू बिजारिया' के हाथों की कठपुतली है। वह विज्ञान और पूंजी के माध्यम से अपना एक प्रतिसंसार रचना चाहता है। वह टेस्ट-ट्यूब बेबी और भी अनेक कृत्रिम प्रयोग कर उनमें कुछ हद तक सफल भी होता है; मगर उनमें वह जीवन-उत्सव नहीं पैदा कर पाता जो हमें प्रकृति से सहज रूप में मिले हैं। हमने प्रकृति के उन क्षेत्रों को अपनी प्रयोगशाला बना दिया है जिससे निरंतर प्राकृतिक आपदाएं आ रही हैं और मासूम और बेकसूर मनुष्य और जीव- जन्तु इसका नुकसान उठा रहा है। वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने भी कहा था कि वैज्ञानिक पूर्णतः आर्थिक सहायता पर निर्भर करते हैं। ऐसे बहुत कम वैज्ञानिक हुए हैं, जिन्हें अर्थोपार्जन के साथ-साथ सामाजिक जिम्मेदारी का भी एहसास हो। पर्यावरण की संस्कृति में शुभू पटवा कहते हैं- 'आज हम यह मानने लगे हैं कि मनुष्य की आवश्यकताएं अनंत हैं। लेकिन इसको प्राप्त करने में आधुनिक विकास कभी सक्षम नहीं हो सकेगा- यह अब सर्वमान्य तथ्य समझा जाने लगा है। अनंत की प्राप्ति केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में संभव है जो भारतीय परंपरा और संस्कृति में हमें देखने को मिलती है। आधुनिक विकास ने भोगवादी संस्कृति को पनपाया है। उसे ही बलशाली बनाया है। इसी भोगवादी संस्कृति ने प्रकृति को अपना शत्रु मान लिया है। मनुष्य प्रकृति का स्वामी बन बैठा है और प्रौद्योगिकी का जो जाल उसने फैलाया है उसमें प्रकृति का शोषण प्रमुख लक्ष्य है।'९

इस प्रकार आधुनिक विकास जिसमें अधिक से अधिक उत्पादन को महत्व दिया गया तथा आर्थिक और भौतिक उन्नति ही हमारे लिए प्रमुख उद्देश्य बन गया। यह उत्पादन भी अमीर तबके के लिए किया गया उत्पादन और उनका ही विकास है। मशीनों के आगमन से यह तबका जरूरत से अधिक संसाधनों का दुरुपयोग कर रहा है। 'संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था 'खाद्य एवं कृषि संगठन' का अनुमान है कि विश्व में कुल उत्पादित खाद्य पदार्थ का एक तिमाही हिस्सा पैदावार, संग्रहण, परिवहन और उपभोग के स्तर पर नष्ट हो जाता है। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण विकसित देशों की विलासपूर्ण जीवन-शैली है।'१० अमेरिका जैसे बड़ी अर्थव्यवस्था वाले देशों के कारण गरीब और अमीर के बीच का अंतर बढ़ता जा रहा है। अमीर और अमीर होता जा रहा जबकि गरीब कंगाल होता जा रहा। यह वैश्वीकरण के तहत आर्थिक स्वरूप का परिणाम है जिससे भारत जैसे तीसरी दुनिया के देश भी प्रभावित हैं। जिससे दुनिया में प्रत्येक कोने से इस व्यवस्था के प्रति असंतुष्टि बढ़ रही है जो जन-प्रतिरोधों को जन्म दे रही है। इन आंदोलनों में आम आदमी इस व्यवस्था से संघर्षरत है। वह प्रकृति के हित के साथ बड़े पैमाने पर आम आदमी के अधिकारों एवं अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है।

विज्ञान और प्रकृति में सामंजस्य होगा तभी पृथ्वी पर निवास कर रहे सभी जीव-जंतुओं और पेड़ पौधों, नदियों अस्तित्व बना रहेगा। 'पर्यावरण की दृष्टि स्व-संतुलक, स्व-समायोजक और स्व-शोधक होनी चाहिए। प्रकृति में तो यह खूबी सहज विद्यमान है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी में यह दृष्टि सहज विद्यमान नहीं हो सकती। तब यह तय करना ज़रूरी है कि वैज्ञानिक अनुसंधानों की दिशा ऐसी होनी चाहिए जो मानव को हंसा की बनिस्बत अहिंसा की ओर ले जाए और प्रकृति के साथ नाहक संघर्ष की जगह उसके साथ सहयोग एवं सामंजस्य की भावना विद्यमान होनी चाहिए।'११ मनुष्य को मशीन पर निर्भर न रहकर उसे अपने शारीरिक श्रम को भी उपयोग में लाना बेहतर होगा साथ ही इसमें प्रत्येक वर्ग, जाति, धर्म और लिंग की बराबर सहभागिता होनी चाहिए, क्योंकि मनुष्य स्वयं के श्रम द्वारा ही अपने अंदर विद्यमान सहिष्णुता, करुणा और संवेदना का विकास करता है। जब यह भावनाएं विकसित नहीं होंगी तो इसका असर समाज पर विपरीत दिशा में होता है और इसका नुकसान हम वर्तमान में आपसी द्वेष, निराशा और क्रूरता के बढ़ते रूप को देख रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

१. हबीब, इरफान, मनुष्य और पर्यावरणः भारत का पारिस्थितिकीय इतिहास, राजकमल प्रकाशन, २०१५, पृष्ठ सं-२८

२. शुक्ल, रामचन्द्र, चिंतामणि- १, अद्वैत प्रकाशन, दिल्ली, २०२१, पृष्ठ सं-९८

३. हबीब, इरफान, मनुष्य और पर्यावरण- भारत का पारिस्थितिकीय इतिहास, राजकमल प्रकाशन, २०१५, पृष्ठ सं-९

४. प्रधान, गोपाल, वर्तमान सदी में मार्क्सवाद, आकार बुक्स, दिल्ली, २०१८, पृष्ठ सं-१२७

५. वही, पृष्ठ सं-१२६

६. पटवा, शुभू, पर्यावरण की संस्कृति, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान, १९८९, पृष्ठ सं-७

७. जोशी, पूरन चंद्र, अवधारणाओं का संकट, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम आवृत्ति, २००८, पृष्ठ संख्या- १८

८. त्रिपाठी, विश्वनाथ, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१९, पृष्ठ सं-४९

९. पटवा, शुभू, पर्यावरण की संस्कृति, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान, १९८९, पृष्ठ सं-१५

१०. सिंह, पुष्पपाल, २१वीं शती का हिन्दी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, २०१५, पृष्ठ सं-१५

११. पटवा, शुभू, पर्यावरण की संस्कृति, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, राजस्थान, १९८९, पृष्ठ सं-२९

कुलपति प्रो. संगीता श्रीवास्तव ने कहा : कार्टूनिस्ट की सृजनशीलता अद्भुत, एकांत के क्षणों में करती है मनोरंजन

कार्टूनिस्ट की सृजनशीलता अद्भुत होती है। वह एकांत के क्षणों में आपका मनोरंजन करती है। साथ ही देश और दुनिया के बारे में चल रही घटनाओं पर व्यंग्य के जरिए प्रकाश भी डालती है। मैं आज भी एकांत में टॉम एंड जेरी के कार्टून देखती हूं। कार्टून ने तो बच्चों को बहुत कुछ सिखाया है। पोपेई नाम के कार्टून ने बच्चों को पालक खाना सिखा दिया। ये बातें इलाहाबाद विश्वविद्यालय की कुलपति प्रो. संगीता श्रीवास्तव ने दृश्य कला विभाग में स्व. शिक्षार्थी स्मृति कार्टून चित्र की प्रदर्शनी में कहीं।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के दृश्य कला विभाग एवं केंद्रीय सांस्कृतिक समिति के संयुक्त तत्वावधान में शनिवार को साहित्यकार और कार्टूनिस्ट स्व. शिक्षार्थी जी की स्मृति में कार्यशाला, कार्टून चित्र प्रदर्शनी, पुस्तक विमोचन व सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता कुलपति प्रो. संगीता श्रीवास्तव ने किया। मुख्य अतिथि प्रसिद्ध कार्टूनिस्ट पत्रकार ,पर्यावरणविद् और नाटककार आबिद सुरती रहे। जिनके बनाए गए कार्टून और चरित्र भी प्रदर्शनी में शामिल थे। यह कार्टून दृश्यकला विभाग में आयोजित कार्यशाला के दौरान निर्मित हुआ था।

आबिद सुरती ने कहा कि मैं दृश्य कला विभाग की यह प्रदर्शनी देखकर अभिभूत हूं। मैंने बहुत प्रदर्शनियों का उद्घाटन देखा है, लेकिन यह अभूतपूर्व है। प्रो. संगीता श्रीवास्तव ने व्यंग्य चित्रों की संदेश देने की ताकत के बारे में बात की। कहा कि इस सृजनशीलता से वह कुछ सीखें। धर्मयुग के दिनों को याद करते हुए कहा कि वह ढब्बू जी के कारण पत्रिका का पिछला पन्ना पहले पढ़ती थीं। कार्यक्रम में स्व. शिक्षार्थी की कार्टून पुस्तिका का विमोचन भी हुआ।

दृश्य कला विभाग और सांस्कृतिक समिति के अध्यक्ष प्रो. अजय जेटली ने कहा कि आज की प्रदर्शनी और कार्यक्रम देख कर उन्हें संतोष हो रहा है कि वह विभाग को जिस तरह सजाने का सपना देख रहे थे वह साकार होता लगा रहा है। इस मौके पर कुलसचिव प्रो. एनके शुक्ला, प्रो. संजय सक्सेना, प्रो. जया कपूर चड्ढा, प्रो. बेचन शर्मा, प्रो. केएन. उत्तम, प्रो. अनुपम पांडेय, प्रो. शबनम हमीद, प्रो. अनीता गोपेश के साथ शिक्षार्थी परिवार से भावना शिक्षार्थी, अनुभव शिक्षार्थी आदि मौजूद रहे। कार्यक्रम का संचालन अमितेश कुमार ने किया।

स्वागत वक्तव्य मोना अग्निहोत्री ने दिया। धन्यवाद विशाल जैन ने ज्ञापित किया। केंद्रीय सांस्कृतिक समिति के सदस्यों अमित सिंह, विशाल विजय, अमृता, के साथ दृश्य कला विभाग के अध्यापक सचिन, शौमिक के साथ शोधार्थी और छात्र भी अच्छी संख्या में मौजूद थे।

साभार
अमर उजालाा
समचार पत्र

सूचना

'साहित्य मेघ' हिंदी की एक साहित्यिक पत्रिका है, जो प्रत्येक माह अनिवार्य रूप से प्रकाशित होती है। हमारी इस पत्रिका में साहित्य संबंधी आलेख को प्रधानता दी जाती है जिसमें आलोचनात्मक, समीक्षात्मक एवं रचनात्मक आलेख आदि शामिल हैं। हम साहित्य संबंधी नवीन खोजों को प्रकाशित करने हेतु प्रतिबद्ध हैं। यह पत्रिका प्राध्यापकों, शोध छात्रों के साथ-साथ सामान्य लोगों के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। यदि आपका आलेख कहीं पहले प्रकाशित न हुआ हो तो आप अपना आलेख हमें भेज सकते हैं। हमें आपके आलेख को प्रकाशित करने में बड़ी प्रसन्नता होगी। बिना संदर्भ वाले आलेखों पर कोई विचार नहीं किया जाएगा।

डॉ. दानिश (प्रधान संपादक)